मिथिला की सांस्कृतिक लोक चित्रकला



लक्ष्मीनाथ झा

थिला की सांस्कृतिक
लोक चित्रकला

लक्ष्मीनाथ झा



मिथिला की सांस्कृतिक लोकचित्रकला

लेखक : चित्रकार
लक्ष्मीनाथ झा

Mithilā Kī Sāṁskṛtika Loka Citrakalā
By
Lakshminath Jha

मूल्य : ₹ 1500/- (एक हजार पांच सौ), भारत में
$ 100/- विदेशों में

संस्करण 2021

आईएसबीएन : **978-81-951235-4-4**

प्रकाशकद्वय : किशोर विद्या निकेतन, बी-2/236-ए, भदैनी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
email- **kvnpublisher@gmail.com**, contact- + 91-9415996512

डॉ0 मित्रनाथ झा
ग्राम : सरिसब
पत्रालय : सरिसब पाही (मधुबनी)
बिहार-847424, (भारत)

वर्तमान पता-
बद्रीनारायण रोड, न्यू कॉलोनी, शुभंकरपुर,
दरभंगा-846006, बिहार, (भारत)
सम्पर्क : +91 8409769408/8210435951
email : dr.mnjha2020@gmail.com

मुद्रक : sjrg
एस0 जे0 आर0 जी0 सर्विसेस एंड सप्लायर्स
5-बी/5-ए, विवेकानन्दपुरम् आदित्यनगर, वाराणसी-221005, उत्तर प्रदेश, भारत



लक्ष्मीनाथ झा
(अवतरण : 14 फरवरी 1917 - महाप्रयाण : 06 अगस्त 1990)



भारतीय प्राचीन चित्रकला
के
उपासकों एवं मर्मज्ञों
के
कर-कमलों में सादर .....







RASHTRAPATI BHAVAN
NEW DELHI-4
राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली-4
September 7, 1962.

A valuable and interesting account of the Folk Art of Mithila. I hope the book will be widely read.

S. Radhakrishnan

(S. Radhakrishnan)







BIHAR GOVERNOR'S CAMP
Patna, November 5, 1962

I had the pleasure of seeing some of the paintings of Shri Lakshmi Nath Jha of Mithila and the book that he is preparing in depiction of Mithila folk art. In the on-rush of materialistic civilization, much of the art may disappear in course of time. He is, therefore, doing a service by making a collection of all the paintings in a compendious volume and in giving descriptions against each of these pictures of what they represent. The selection of the pictures is representative, and various aspects of life have been well portrayed. The book is still in the process of completion. Shri Lakshmi Nath Jha deserves encouragement.

(M. Ananthasayanam Ayyangar)



राजेन्द्र प्रसाद

छज्जू बाग, पटना
अक्तूबर ७, १९६२

श्री लक्ष्मीनाथ झा लिखित 'मिथिला की सांस्कृतिक लोक-चित्रकला' को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। यह दु:ख का विषय है कि नयी सभ्यता के मोह में पड़कर हम जनजीवन में प्याप्त चित्रकला को भूलते-से जा रहे हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति को जीवित रखने के लिए सभी कलाओं का सङ्कलन किया जाना आवश्यक है। श्री झा का प्रयास सराहनीय है। मेरी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं।

राजेन्द्र प्रसाद

(राजेन्द्र प्रसाद)



MINISTER,
SCIENTIFIC RESEARCH AND CULTURAL AFFAIRS, INDIA,
NEW DELHI
August 5, 1960



I was gald to meet Shri Lakshmi Nath Jha and glance through the manuscript of his work on Maithili Folk Art. He has collected the many motifs and designs that are prevalent in this area and written interesting notes to explain their historic and social significance. Mithila has been for ages a centre of intellectual and artistic achievement. Janak lived here and so did in a later age Vidyapati. Here also developed some of the most subtle forms of logical analysis that the world has known. This combination of intellectual subtlety and artistic sensitiveness makes the study of all forms of art in Mithila of special value. I congratulate Shri Lakshmi Nath Jha for the care and devotion with which he has carried out a difficult task.

Humayun Kabir

(Humayun Kabir)



MINISTER
PARLIAMENTARY AFFAIRS
नई दिल्ली, सितम्बर, 8, 1962

परम्परागत मिथिला की स्त्रियों के जिम्मे युग-युगान्तर से आई हुई लोक-चित्रकला की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक व्याख्या के संग राजनीतिक तथा वैज्ञानिक रूप-रेखा का दिग्दर्शन इस पुस्तक में करा, श्री लक्ष्मीनाथ झा ने प्रथम बार विश्व के जनसाधारण के समक्ष उसे उपस्थित किया है।

श्री झा का यह प्रयास सफल हुआ है।

मुझे आशा है, कला-मर्मज्ञ तथा हिन्दी-प्रेमियों के लिये यह कृति उपयोगी तथा मनोरंजक सिद्ध होगी।

मेरी शुभकामनायें इनके साथ हैं।

(सत्यनारायण सिंह)



शिक्षा-मंत्री
भारत
नई दिल्ली,
१८ सितम्बर, १९६२

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि श्री लक्ष्मीनाथ झा कुछ समय पहले, अपनी पुस्तक जिसमें उन्होंने मिथिला की सांस्कृतिक लोक-चित्रकला का संकलन किया है, मुझे दिखाने आये थे। मैंने इस पुस्तक को देखा और जो प्रयत्न श्री झा ने किया है उसे बड़ा सराहनीय पाया। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि अब यह पुस्तक प्रकाशित होने जा रही है।

मिथिला संस्कृति का केन्द्र रही है और हजारों वर्षों तक यहाँ संस्कृति और कला का विकास हुआ है। उद्योगीकरण के कारण हमारी बहुत सारी कलायें नष्ट हो रही हैं और उनके बिलकुल विलोप होने का भय है। इसलिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि सभी कलाओं का सङ्कलन किया जाय। इस दृष्टि से श्री झा का प्रयास अनुकरणीय है और मैं आशा करता हूँ कि देश के अन्य भागों में भी इस तरह के सङ्कलन का अनुकरण किया जायेगा।

(का० श्रीमाली)



मुख्य मंत्री
बिहार



No. 1079 GMS
10 x 1.62

मिथिला की लोक-चित्रकला के सम्बन्ध में "मिथिला की सांस्कृतिक लोक-चित्रकला" नामक पुस्तक लिखकर श्री लक्ष्मीनाथ झा ने सांस्कृतिक क्षेत्र में एक मौलिक शोध का काम किया है। इनका यह कार्य हार्दिक सराहना के योग्य है। भले ही इनका क्षेत्र मिथिला के जन-जीवन तक ही सीमित हो परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि लोक-संस्कृति में ऐसी कलायें हर जगह हैं और धीरे-धीरे हमारे जीवन से बिसरती जा रही हैं। बदलते जमाने में जब हम हर दिशा में प्रगति के नये चरण उठा रहे हैं तो लोक-जीवन में रत ऐसी कलाओं का संकलन हमें अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के प्रति पूर्ण जागरूक बनाये रखने में बड़ा ही सहायक सिद्ध होगा।

श्री लक्ष्मीनाथ झा इसी तरह के कार्यों में आगे भी सफलता पाते जायें, इसके लिये मेरी शुभकामना है।

(विनोदानन्द झा)





Darbhanga House,
Mansingh Road,
New Dehli

दिनांक ४-९-१९६२

प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों की विलक्षण प्रतिभा और हस्त-पटुता का परिचायक-याज्ञिक युग से अब तक निरन्तर वर्तमान ऋग्वेदोक्त रेखाकृति, न केवल भारतीयों के अपितु समस्त मतिमानों के मनन योग्य हैं। मिथिला की सांस्कृतिक लोक-चित्रकला इसी वैदिक रेखाकृति के आधार पर कालान्तर से शक्तिपरक तन्त्र-शास्त्र का अनुगत, सम्मत और संस्कृत सम्बर्द्धित रूप है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अब तक अक्षुण्ण रखने में भारतीय लोककला की जो विशेषता है उसमें लोक-चित्रकला का स्थान प्रमुख है। चित्रकला के ही सहारे भूली सभ्यता, बिसरे चित्र मुझ भारतीयों के मानस पटल पर अंकित होते हैं।

किसी समय मिथिला के जनजीवन में व्याप्त, क्रमश: लुप्तप्राय लोक-चित्रकला को, पं० श्री लक्ष्मीनाथ झा के संकलन ने मात्र जीवन प्रदान ही नहीं किया है, प्रत्युत मैं तो कहूँगा कि भारतीय ऐतिहासिक तथ्यों के पाण्डित्यपूर्ण विवेचन से नवजीवन प्रदान किया है। इनके अनुसन्धान ने इस लोक-कृति को-मैथिली सीता-कालिक भित्तिचित्र और भूचित्र का तत्त्व-संग्रह आदि अनेक अन्वेषणपूर्ण टिप्पणियों से युक्त कर भारतीय संस्कृति के सूत्ररूप में पुन: प्रतिष्ठापित किया है।

अन्वेषण के साथ-साथ आपका चित्रकला-कौशल भी मैथिल-शैलियों से ओत-प्रोत सर्वथा प्रशंसनीय है।

इस प्रकार के कलाकारों को प्रोत्साहन देकर भारत अपनी चित्रकला को अपने पूर्वरूप में प्रतिष्ठापित देख सकता है। मिथिला की तूलिकाशैली को अपने पूर्वरूप में प्रस्तुत करने में पं० झा का प्रयास सर्वथा स्तुत्य है।

(महाराजाधिराज, दरभंगा)



पण्डित श्रीलक्ष्मीनाथ झा-रचित 'मिथिला की सांस्कृतिक लोकचित्रकला' का अवलोकन कर नितान्त प्रसन्न हूँ। इस ग्रन्थ में मिथिला में प्रचलित चित्रों का विवरण सहित सन्निवेश मनोरम क्रम से किया गया है, जिससे मिथिला की प्राचीन सभ्यता का द्योतन होता है।

निगमकाल में सर्वतोभद्रादिमण्डलरूप में, आगमकाल में त्रिकोणादिरूप में, और वर्तमानकाल में गृहीतप्रतिबिम्बरूप में चित्र देश की संस्कृति परम्परा का प्रकाशन अवश्य करता है।

मिथिला की प्राचीन सभ्यता का स्मारक इस ग्रन्थ का सर्वत्र प्रचार मैं हृदय से चाहता हूँ।

इति

सरिसव
आश्विन अमा २०१९
२८-९-६२

बदरीनाथ झा



का शी हि न्दू वि श्व वि द्या ल य

भारत कला भवन

हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-5

फोन : 577
सं0

श्री लक्ष्मीनाथ झा को मैं उस समय से जानता हूँ जब वह एक उदीयमान चित्रकार के रूप में सामने आ रहे थे। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग एक बहुत ही प्रशंसनीय कार्य में किया है।

संस्कृत का आलेपन शब्द हिन्दी में अइपन, मैथिली में अरिपन और बंगला में अल्पना रूप ग्रहण करता है, जिसका प्रचार केवल इन्हीं तीन प्रदेशों में नहीं, अपितु भारतवर्ष भर में घर-घर है, और इसमें इतने प्रकार के आलेखन हैं कि यदि सबका संग्रह किया जाय तो वह असंख्य हो जाएं।

श्री लक्ष्मीनाथ जी ने इस शुभ अवसर वाले मैथिल मण्डनों का संग्रह बहुत ही परिश्रम से किया है, जो देश भर के कलाकारों के लिये अनुकरणीय है। मैं उनका साधुवाद करता हूँ और उनके परिश्रम के मूर्त रूप– "मिथिला की सांस्कृतिक लोक-चित्रकला" का हार्दिक स्वागत।

कृष्णदास

(राय कृष्णदास)





प्राक्कथन

इतिहास-पुराणों में सुप्रसिद्ध चौंसठ कलाओं में से आलेपन (आलिम्पन), मिथिला में अरिपन भी कला का स्वरूप माना जाता है, जिसे चित्रकला अथवा शिल्पकला कह सकते हैं।

यह अरिपन गृह्यसूत्रों, शास्त्रों तथा निबन्धों में 'मण्डल' शब्द से प्रसिद्ध है। कर्मकाण्ड के शुभकर्मों में 'सर्वतोभद्र', 'स्वस्तिक', 'षोडशदल', 'अष्टदल' आदि इसी के प्रभेद हैं। सर्वतोभद्र 'स्वस्तिक' की प्रथा तो यागादि क्रियाओं में वैदिक युग से ही प्रसिद्ध है।

अब नीचे कुछ शास्त्रीय प्रमाण इस सम्बन्ध में उद्धृत किये जाते हैं—

'विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु।
निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ तथोद्वेगाद्भुतेषु च।।
वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः।
सुभाषितैरिन्द्रजालैर्भूमिशोभाभिरेव च।।'(ब्र पु० १८।२१)

इस वचन के 'भूमिशोभा' शब्द से इसी अरिपन (आलेपन) का ग्रहण किया गया है।

''लग्नाहे मातृकाः पूज्याः पूज्या गौरी हरान्विता।
पीठे वै तदलाभे तु सुश्लक्ष्णे तण्डुलान्विते।।
पङ्कजं कारयित्वा तु तत्र गौरीहरौ यजेत्।।''
(भट्टगोपीनाथकृत संस्काररत्नमाला)

इसमें 'सुश्लक्ष्ण', 'तण्डुलान्वित' इन दोनों पदों से चावल-पिष्टक को घोलकर उसका अरिपन (आलेपन) करना साफ कहा गया है। इसी प्रकरण में आगे लिखा है-

''संस्थाप्य गणपं गौरीं काञ्चनीं काञ्चने गजे।
कृत्वोपवासनियमं गजं गौरीञ्च पूजयेत्।।''



इस प्रकार स्वर्णनिर्मित गज के ऊपर गौरी और गणपति के पूजन के प्रसङ्ग में भविष्योत्तरपुराण में आया है-

''मण्डलञ्च ततः कृत्वा सर्वतोभद्रमेव च।
व्रतोपनयने चूडे शान्तिरेवमुदाहृता।।
विवाहादौ लिखेन्नित्यं तिलकं नाम मण्डलम्।'' (विवा० प०)

''वर्त्तुलं भास्करं विद्यादर्द्धचन्द्रं निशाकरम्।'' (वर्षकृ० प०)

'आवाहयामि देवि त्वां मृण्मये श्रीफले तथा।
त्रिशूले कलशे खड्गे मण्डले चित्र एव च।। अथवा
मण्डले मृण्मये कुम्भे त्रिशूले खड्ग एव च।
तथा चित्रपटे वापि नृमुण्डे वह्निमण्डले।।'' (दुर्गापूजा प० वर्षकृ०)

''मण्डलेषु समस्तेषु सान्निध्यमुपकल्पयन्।
कारयेद्विधिवद्देवीं मण्डलस्य चपूजनम्।।''
(हरिताली व्रतोद्यापन, दुर्गा० प०)

''गोचर्ममात्रं संलिप्य मध्ये मण्डलमाचरेत्।
मण्डले स्थापयेत्कुम्भं ताम्रं वा मृण्मयं शुचिम्।।''
(कृष्णाष्टमी व्रतोद्यापन)

इसका आशय यह है कि गोचर्म के परिमित भूमि को लीप कर उसके मध्य में मण्डल-आलेपन 'अरिपन' करे और उस पर ताम्बे अथवा मिट्टी का पवित्र (नया) घट स्थापित करे।

कृत्यरत्नाकर में महामहोपाध्याय चण्डेश्वर लिखते हैं-

''पूजयेन्मङ्गलां तत्र मण्डले विधिवत्सदा।''

अर्थ- उस मण्डल (अरिपन) पर सदा मङ्गला देवी की विधिपूर्वक पूजा करे। और भी- ''कमलोपरि रेखादिना कमलाकारवति पात्रे सर्वदेवपूजा आगमादिप्रसिद्ध'' ऐसा लिखा है। वीरमित्र मिश्र कृत पूजाप्रकाश में लिखा है-

''पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिका केसरोज्ज्वलम्।
उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मध्ये तूभयसिद्धये।।''



''यन्त्राधारमाश्रित्यैव पूजा विहिता'' ऐसा पूजाप्रदीप में गोविन्द ठक्कुर लिखते हैं।

रेवन्तपूजापद्धति में आया है-

''अश्वबन्धनस्थाने वप्रत्रयाऽऽवृतं तण्डुलचूर्णमुपकल्प्य तदुपरि चन्दनादिना मण्डलद्वयं विधाय तत्र रेवन्तमुच्चैःश्रवसञ्च पूजयेत्।''

''शालाप्रागुत्तरे भागे स्थण्डिलं कारयेद् बुधः।
चतुर्द्वारं चतुर्हस्तं मण्डलन्तु सुशोभनम्।।
तत्राब्जं षोडशदलं निर्मातव्यं सकर्णिकम्।
तिलतण्डुलचूर्णेन प्रयत्नेन मनीषिणा।।''

''चतुरस्रं पीठं निर्माय तत्राष्टदलं रक्तचन्दनेन विलिख्य पञ्चदेवताः सम्पूज्य'' इत्यादि रूप से गजपूजापद्धति में आया है। अर्थ स्पष्ट ही है।

देवीतन्त्रादि में उल्लिखित प्रमाण देखिये-

''यः करोति नरो भक्त्या चन्द्राकारन्तु मण्डलम्।
चण्डिकायाः पुरो राजन् चण्डिकायाश्च मन्दिरे।।
स दिव्यं यानमारूढो रमते वैष्णवे पुरे।
पद्माकृतिं तु यः कुर्यान्मण्डलञ्चण्डिकापुरः।। (रे)।।''

और भी देखिये-

''शक्रादिमथ वज्रादिं लिखेद्विन्दुगतापि वा।
मुक्ताफलप्रबालोत्था पद्मरागकृतोरगा।।
सितकुङ्कमरागैर्वा नीलैर्मरकतैरपि।
शालिपिष्टकचूर्णैर्वा यवगोधूमजाऽपि वा।।''

यहाँ 'शालिपिष्टकचूर्ण' या 'यवगोधूम से बने हुए' ऐसा कहने से पिठार से बनाया गया अरिपन स्पष्ट प्रतीत होता है।

ये सब अरिपन पर्वभेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, जिन्हें मिथिला के घरों की स्त्रियाँ भली भाँति जानती हैं। यह विलक्षणता यहाँ की आम स्त्रियों में अपनी चिरन्तन संस्कृति के प्रभाव से पायी जाती है। कुछ उदाहरणस्वरूप- जैसे विवाहोत्तर मौहक (महुअक) के अवसर पर ऐसा दो



पुरनी के पत्तों का आकार जिनमें एक पत्ते के साथ दूसरे पत्ते का परस्पर सम्बन्ध दरसाया जाता है, जो वर-वधू युगल का अविच्छिन्न सम्बन्ध-द्योतक है। इसी प्रकार कोजागरा में श्रीलक्ष्मीपूजा के सम्बन्ध का अरिपन मखाने के तीन पत्तों के आकार का। पृथिवीपूजा में त्रिकोणयन्त्राकार। देवोत्थान (प्रबोधिनी) का अरिपन। तुलसीपूजा का अरिपन। साँझ (सायंकालिक) अरिपन 'मन्दिराकार'। विवाह के अनन्तर एक वर्ष तक प्रतिदिन किया जानेवाला अरिपन। सुखरात्रि का अरिपन। इनके अतिरिक्त षड्दल, अष्टदल आदि, जिनका उल्लेख मैंने आरम्भ में कर दिया है, अनेकानेक हैं। अरिपन के चित्रकार हमारे श्री लक्ष्मीनाथ बाबू के मूल लेख द्वारा सबका अलग-अलग विवरण और चित्र पाठक देखें।

मेरे लेख का सारांश यह है कि वर्ष भर में होने वाले प्राय: सभी पर्वों पर अलग-अलग भिन्न-भिन्न प्रकार के अरिपन लिखने की परिपाटी मिथिला की स्त्रियों में संस्कृति रूप से चली आ रही है। सत्यनारायण की पूजा के अवसर पर चतुर्भुज भगवान् का द्योतक 'चौशङ्ख' अरिपन भी मार्मिक है। इसी प्रकार षष्ठी देवी की आराधना के लिए लिखे जाने वाले कमलाकार अरिपन में भी बहुत कुछ मार्मिकता है।

कोजागरा के अवसर पर कैसा अरिपन (आलेपन वा मण्डल) लिखना चाहिये- इस सम्बन्ध में लक्ष्मीपूजा पद्धति में लिखा है-

''मण्डलानि विचित्राणि नानापिष्टैः कृतानि च।''

देवोत्थान (प्रबोधिनी) एकादशी के सम्बन्ध में महामहोपाध्याय चण्डेश्वर कहते हैं-

''वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः।
सुभाषितैरिन्द्रजालैर्भूमिशोभाभिरेव च।।''

इसमें 'भूमिशोभा' से अरिपन का ही ग्रहण किया गया है।

कुलदेवतापूजा के सम्बन्ध में कुलदेवतापद्धति में अनेकानेक प्रमाणों के आधार पर महामहोपाध्याय रुद्रधर लिखते हैं-

''ततः कृतैकभुक्ता ब्राह्मणी तण्डुलचूर्णेनोपलेपनं विधाय तत्समीपे पूर्वभागोपरि फलके पट्टके वा तथैवोपलेपयेत्। ..... एवं सुन्दरं महावेदिमण्डलं कृत्वैशान्यां ग्रहवेद्यां श्वेतवर्णिकयाऽऽष्टादशदलं पद्मं विलिख्य'' इत्यादि।



मेरुतन्त्र के वशीकरणप्रकरण में आया है-

''तण्डुलोद्भवपिष्टेन विद्यार्थी तु सहस्रकम्।''

महामहोपाध्याय हेमाद्रि ने हेमाद्रिनिबन्ध के कीर्त्तिसंक्रान्तिव्रत के प्रकरण में लिखा है-

''संक्रान्तिवासरं प्राप्य रविबिम्बं लिखेद्भुवि।
तस्य मध्ये स्थितं देवं पूजयेत्सर्वमन्त्रतः।।
करोति स्वस्तिकादीनि तस्य पुण्यं निशामय।
यावत्यः कर्णिका भूमौ लिप्ता रविकुलोद्भवं।।'' इत्यादि।

तथा **''यः कुर्याद्दीपनञ्चास्य शालिपिष्टादिभिर्नृप।''**

इसमें अरिपन का उल्लेख स्पष्ट रूप से आ गया है।

श्रीहर्षरचित नैषधीयचरित महाकाव्य में भी अरिपन का उल्लेख आया है। देखिये-

''धृतलाञ्छनगोमयाञ्चनं विधुमालेपनपाण्डरं विधिः।
भ्रमयत्युचितं विदर्भजाऽऽननीराजनवर्द्धमानकम्।।''

(नै० च० स०, २६ श्लोक)

इसकी नारायणी टीका में पण्डित नारायण लिखते हैं- ''आलेपनम् = पिष्टोदकम् - 'अईपण' इति लोके प्रसिद्धम्'' और भी-

''क्वचित्तदालेपनदानपण्डिता
कमप्यहङ्कारमगात्पुरस्कृता।
अलम्भि तुङ्गासनसन्निवेशना-
दपूपनिर्माणविदग्धयादरः।।''

इसकी टीका में वे ही टीकाकार पण्डित नारायण लिखते हैं-

''चतुष्कोणनिर्माणार्थं हरिद्राचूर्णमिश्रितं तण्डुलपिष्टं तस्य दाने = आलेपकरणे पण्डिताः =चतुराः।''

हरिद्रामिश्रण (हल्दी का मिलाना) दाक्षिणात्यों के व्यवहार से लिखा है, मिथिला-व्यवहार में हरिद्रा के साथ सिन्दूर-मिश्रण की भी प्रथा है।

विवाह के सप्तपदीक्रमण के प्रसङ्ग में गृह्यसूत्रकारों और उन गृह्यसूत्रों के भाष्यकारों (कर्क-हलायुध-हरिहर-महीधर आदि विद्वानों) ने आलेपन (अरिपन) लिखकर उसके द्वारा



सप्तपदीक्रमण के लिए सात गृहों के आकार का निर्माण एक प्रकार से सिद्ध किया है, जिसके आधार पर ''तत आलेपनेनोत्तरोत्तरक्रमेण'' इत्यादि रूप से विवाह-पद्धति में पद्धतिकार ने उद्धृत किया है। इसी सप्तपदीक्रमण के प्रकरण में महानिर्वाणतन्त्र की व्याख्या करते हुए वङ्गीय पूर्णानन्दगिरि लिखते हैं-

''ताहार पर क्रमशः सम्मुख भागे जलसिक्ततण्डुलचूर्ण (पीठूलिगोलिया) सातटि गोलाकार मण्डल परे अङ्कित करिते हइबे''। जो कुछ हो, इन्हीं अरिपन से अङ्कित सात गृहों का (पदाक्रमण) नवविवाहिता वधू द्वारा वर कराता है- 'ओम् एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु' 'ओम् द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु', 'ओम् त्रीणि रायस्पोषाणि विष्णुस्त्वा नयतु' इत्यादि सात मन्त्रों से।

आज से लगभग छः सौ वर्ष पूर्वकालिक कविकुलकोकिल महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर लिखते हैं-

''लता तरुअर मण्डप जीति, निरमल ससधर धवलए भीति।
हरि जब आओब गोकुलपुर, घरे-घरे नगरे बाजए जय तूर।
अलिपन देओब मोतिमहार, मङ्गल कलस करब कुचहार।''

उस समय तक 'आलेपन' संस्कृत का 'आलिंपन' या 'अलिपन' मैथिली भाषा में व्यवहृत हो रहा था। पीछे धीरे-धीरे 'अरिपन','अड़िपन', 'ऐपन' इत्यादि उसके पर्याय-शब्द मिथिला के प्रान्तभेद से भिन्न-भिन्न रूप में व्यवहृत होने लग गये।

'आलेपन' शब्द की व्याख्या करते हुए शब्दार्थचिन्तामणि, शब्दकल्पद्रुम आदि अभिधानग्रन्थों में लिखा है-

''तण्डुलचूर्णमिश्रितोदकेन मङ्गलार्थं दीयमान आलिम्पने''
''तण्डुलादिचूर्णमिश्रितजलेन गृहादौ चित्रकारलेपनभेदे''

पारस्करगृह्यसूत्र की श्राद्धनवकण्डिका में गदाधर लिखते हैं-

''मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैःशुभैः।
शालिपिष्टकचूर्णैर्वा यवगोधूमजैश्च वा।।''

यही कथा आगमोक्त दुर्गापूजाप्रकरण में भी इसी रूप में आयी है। महानुष्ठानप्रकाश में लिखा है-



''भद्रेण पूजनाशक्तौ कार्यमष्टदलं शुभम्।
गोधूमान्नेन तत्कार्यं तण्डुलेनाथवा पुनः।।''

इसी प्रकार शुभकर्मनिर्णय आदि ग्रन्थों में इस अरिपन के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है। यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र मैंने कराया है। पाठक समझें कि अरिपन लिखने की परम्परा संस्कृत के मौलिक ग्रन्थों के आश्रित होने से मिथिला की एक प्रकार की विलक्षण संस्कृति है।

अत्यन्त प्राचीन शुद्ध वैदिक युग में केवल सर्वतोभद्र आदि मण्डलों पर ही गार्हस्थ्य माङ्गलिक सभी कार्य किये जाते थे और उसके पश्चात् तान्त्रिक युग आने पर देवतात्मक यन्त्रस्वरूप यह अरिपन किसी-न-किसी रूप में भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में लिखने की परिपाटी है, परन्तु हरिद्रा-कुङकुम-केसर आदि के साथ, सिन्दूर-बिन्दुओं और श्वेत-बिन्दुओं के साथ बिहार, उसमें भी मिथिला में ही है। मिथिला के पुरुषों को इस अरिपन-कला का वह अनुभव नहीं है, किन्तु स्त्रियों को जन्मसिद्ध यह कला ठोस रूप से आबालवृद्ध अभ्यस्त है। कोई भी पर्व या त्यौहार उपस्थित होने पर, उस पर्व या त्यौहार के अनुरूप अरिपन लिखने में भी यहाँ (मिथिला) की कोई भी स्त्री झट से प्रस्तुत हो जाती है और आसानी से कर बैठती है।

मिथिला के किसी भी कोने में आप जायँ, ऊँचे घराने की स्त्रियों में इस अरिपन-लेख-कला का परिचय आप उसी रूप में पायेंगे जैसे मैं ऊपर लिख आया हूँ। इस अरिपन-लेख का प्रचलन किसी-न-किसी रूप में भारतवर्ष के कोने-कोने में आज भी विद्यमान है।

अभी-अभी मिथिलेश महाराजाधिराज के साथ जो मैं अखिल भारतीय मैथिल-महासभा में अजमेर गया था तो वहाँ के व्रजस्थ कुछ मैथिल ब्राह्मणों द्वारा पता लगा कि उस प्रदेश में भी शुभ कर्मों के अवसर पर हरिद्रा (हल्दी) के चूर्ण के साथ जलमिश्रित पिष्टक-चूर्ण से अरिपन लिखने की प्रथा है, जिसे 'स्वस्तिक' अथवा 'अरिपण' कहते हैं। पंजाब में 'स्वस्तिका' शब्द से इसका प्रचुर प्रचार देखने में आया है।

'मिथिला में इस अरिपन-लेख का प्रचार कब से है' यह कहना व अनुमान करना सहज नहीं है, तो भी राजा जनक ने अपनी पुत्री सती सीता के शुभविवाह के अवसर पर इस अरिपन की वर्त्तमान परिपाटी को चलाया, ऐसी किंवदन्ती है। हो सकता है, जैसे वर्त्तमान दरभंगाधीश मिथिलेश के पूर्वज के चलाने पर मिथिला में व्यापक रूप से भाद्रपद शुक्ल चौठ चन्द्रपूजा-पर्वोत्सव घर-घर सोल्लास मनाया जा रहा है, जिस चौठ चन्द्र को इसी भारत के विभिन्न प्रान्तीय लोग 'पथरचौठ' कहा करते हैं और उस चन्द्र को लक्ष्य कर ईंट-पत्थर फेंका करते हैं। अस्तु।

इतना तो मैं कह सकता हूँ कि स्वस्तिक, आलेपन, सर्वतोभद्र, मण्डल आदि शब्दों से



कहे जाने वाले इस अरिपन की परिपाटी के प्रसार का मूल आधार मिथिला ही है। वह किसी राजा अथवा आप्त विद्वान् की प्रेरणा से हुआ हो।

अनुभव कहता है, कोई समय रहा होगा जब मिथिला की संस्कृति और सभ्यता वेदविहित यज्ञप्रक्रिया के आधार पर अवलम्बित थी, उस समय याज्ञिक सर्वतोभद्र के प्रसार से तन्मूलक इस अरिपन-लेख-प्रथा की छाप बढ़ते-बढ़ते भारत के कोने-कोने में फैल गयी या उस समय के किसी राजा ने अथवा महर्षि ने इस परम्परा को फैलाने की भरपूर चेष्टा की। जो हो।

इस प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से प्रत्येक अरिपन का अलग-अलग चित्र और उस पर अपना गम्भीर-से-गम्भीर गवेषणापूर्ण विचारधारा का परिदर्शन, अरिपन-चित्र-निर्माता मिथिला (दरभंगा) के श्रोत्रिय-कुलभूषण खौआल वंशोद्भव पं० पुण्यनाथ झा (बाबू) के तृतीय पुत्र पं० श्री लक्ष्मीनाथ झा (बाबू) सरिसब ग्राम-निवासी ने स्वयं कर दिया है। मिथिला की इस अतीत अमूल्य संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिए आपके इस अथक परिश्रम तथा पूरी लगन की मैं मुक्तकण्ठ श्लाघा करता हूँ। मिथिला के निमित्त ही नहीं, प्रत्युत अन्य देशों के निमित्त भी आपकी यह बड़ी देन सदा के लिए अमर देन रहेगी। आप केवल चित्रकार ही नहीं, वास्तव में कलाकार हैं। तभी तो अरिपन-कला की ऐसी सूझ दृष्टिकोण में आयी। इस अरिपन-कला में यदि और गहराई में उतर कर बारीक नजर से देखें तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस कला के भीतर वैज्ञानिक तत्त्व की पूर्णता भरी पड़ी मिल सकेगी। इसमें संशय नहीं।

'इस प्रसङ्ग में उपर्युक्त अरिपन-चित्रकार महोदय के लेख से अनुभव प्राप्त करें', पाठकों से मेरा यही अनुरोध है और साथ यह भी कि मिथिला की इस प्राचीन संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिए मूल चित्रकार बाबू श्री लक्ष्मीनाथ झा जी को आगे भी इस प्रकार के कार्यों में हार्दिक सहयोग आप लोग देते रहें।

'नग्नक्षपणके देशे रजकः किं करिष्यति।'

प्रधानाचार्य श्री त्रिलोकनाथ मिश्र

आवासोपदेशक

मिथिला संस्कृत विद्यापीठ

(रिसर्च इन्स्टीच्यूट)

दरभंगा





२

भूमिका

श्री लक्ष्मीनाथ झा के द्वारा संगृहीत मैथिल लोकचित्रकला के नमूनों का यह प्रकाशन हमारे देश की सद्यः प्रस्फुटित सांस्कृतिक चेतना में एक नये मोड़ का परिचायक है।

सन् १९६० में जब श्री झा ने ये चित्र मुझे दिखाये तो मैं विभोर हो गया। किन अछूती कल्पनाओं, किन अपरिचित आह्लादों, किन अज्ञात-कौशल-सम्पन्न अंगुलियों के सहारे उतर कर रेखाओं और रंगों की ये अप्सरियाँ प्रांगणों, देहलियों और कोठरियों में, युगों से नर्त्तन करती रही हैं? क्या इन्हें छापाखाने के निर्मम पथ द्वारा प्रकाशन के उस चौराहे पर ला खड़ा करना उचित होगा, जहाँ अभिजात-कला के पोषक मर्मज्ञों एवं आलोचकों की वक्रदृष्टि और आधुनिक जीवनचर्या की उपेक्षा-दृष्टि उन्हें अनावृत कर सके? असूर्यम्पश्य राजदाराओं-सी ये अलंकृत विभूतियाँ पथ के ठीकरों की भाँति छिन्न तो न हो जायेंगी, युग के प्रखर और निर्मम प्रकाश के नीचे? इस शंका से कुछ दिन मैं डगमगाता रहा। बहुत कुछ सोचने के बाद मैंने श्री झा को सलाह दी कि वे इस संग्रह को अवश्य प्रकाशित करें, और कुछ समय बाद इसके अंग्रेजी संस्करण के प्रकाशन की भी व्यवस्था करें। आज उनके प्रयास के प्रथम सोपान को पूरा होते देख कर मुझे विशेष संतोष का अनुभव हो रहा है।

आधुनिक कला गुमराह हो या न हो, इतना हो स्पष्ट ही है कि वह नई दिशाओं, नयी आयाम की खोज में है। इसीलिए भारतवर्ष का तरुण कलाकार परम्परागत अभिजात शैलियों से मुकर कर पेरिस और मेक्सिको की अतिरंजनाओं और असम्बद्धताओं में आत्मीयता खोजता है। अजंता और मुगल-शैली की रमणीयता उसे स्त्रैण लगती है; एकेडेमिक शैली का यथातथ्य उसे फोटोग्राफी जान पड़ती है। प्रभाववादियों का रंगसौष्ठव उसे बचकाना प्रतीत होता है। ऐसी



परिस्थिति में, भारतवर्ष की ही धरती में उपजी कोई ऐसी कला-प्रवृत्ति, जो शास्त्र के भार से मुक्त हो, टेक्निकल-सिद्धान्तों और विवादों से परे हो, और वाक्य कल्पना के स्तर से उतर कर सामान्य जीवन में रमती रही हो, शायद भारतीय चितेरों की नई पीढ़ी को अनुप्राणित कर सके। मिथिला की लोक-चित्रकला के इन नमूनों में जहाँ एक निराली सादगी और भोलापन है, वहाँ आधुनिकतम कला की दो प्रमुख विशिष्टतायें भी अनायास ही मुखर हैं। एक तो वृत्त, त्रिकोण, आयत आदि आकारों का संतुलन, डिजाइन एवं अलंकरण के उन प्रयोगों का आभास देता है जिन पर ऐसे आधुनिक कलाकार भी निछावर हो जाते हैं जो अर्द्धचेतना (सब-कांशस) के गह्वरों के निवासी हैं। दूसरे, मिथिला के ये लोकचित्र संकेतों के कलात्मक वाहन हैं। श्री झा की टिप्पणियों के अनुसार ये संकेत स्थूल जीवन के क्रियाकलापों और पदार्थों को ही नहीं बताते, सूक्ष्म अनुभूतियों एवं आध्यात्मिक धाराओं को भी प्रदर्शित करते हैं। ये चित्र भंगिमायें हैं विस्मय, क्षोभ एवं आनन्द की उन प्रतिक्रियाओं की, जो प्रकृति एवं समाज के सम्पर्क में मिथिला के स्त्री-पुरुषों के अंतस्तल में प्रदीप्त होती हैं। संकेतों की ऐसी मणिप्रवाल-संयुक्त वाणी की आजकल के कलाकार को विशेष चाह है। शायद यह संग्रह आधुनिक संकेतों की भाषा के अन्वेषकों को कुछ मदद दे सके।

ऐसे प्रकाशनों का दूसरा उपयोग सामाजिक नवनिर्माण में हो सकता है। मिथिला के इन चित्रों को लोक-कला की संज्ञा दी जाय अथवा गृहकला की, यह प्रश्न मेरे मन में अकसर उठा है। जो भी हो, ये चित्र एक ऐसे सामाजिक जीवन के अंग हैं जिसमें गृहकृत्य और गृहोत्सवों की कक्षा (ऑर्बिट) में, व्यक्ति उपग्रहों की भाँति घूमते रहते हैं। आज ये कक्षाएँ तिरोहित हो चली हैं। कुटुम्ब के सूत्र छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। अगणित स्वतंत्र पथों में विचरता हुआ व्यक्ति संयुक्त परिवार के बन्धनों से मुक्त होकर भी नई जंजीरों में बँध रहा है। इस विशृंखलता का एक परिणाम यह हुआ है कि गृह-जीवन में रमी हुई रसप्रवाहिनी आनन्ददायिनी कला भी निर्जीव हो चली है और नये सामाजिक विधान में वह निष्प्रयोजनीय जान पड़ती है। मिथिला के उस गृह-जीवन का पुनर्निर्माण, जिसकी धड़कन इन चित्रों में व्याप्त है, अब तो असम्भव प्रतीत होता है। किन्तु उस गृह-जीवन के कई ऐसे पहलू हैं, कुछ ऐसे चिरनवीन क्रियाकलाप हैं, जो नये समाज में न केवल शामिल किये जा सकते हैं, बल्कि उसे बहुरंगी सज्जा और विविध स्वरपूर्ण वाणी से समृद्ध कर सकते हैं। जिन कुमारियों के हाथों से मिथिला के गृहोत्सव सम्पन्न होते थे और ये आकर्षक आलेपन और चित्र घरों में बनाये जाते थे, आज वे पाठशालाओं, विद्यालयों और क्लबों में साधना और मनोरंजन उपलब्ध करती हैं। क्या यह सम्भव नहीं कि पाठशालाओं और अन्य सामाजिक केन्द्रों के कार्यक्रमों में उनमें से



कुछ उत्सव संक्षिप्त रूप में ही सही, सम्मिलित कर लिये जायँ? शिक्षालय ही वर्तमान युग के गृह-देवता के निवास हैं, उन्हीं में कोहबर का मधुर चांचल्य है, मंडपों और प्रांगणों की चहल-पहल है, और सीख और अनुकरण की वे सुविधाएँ हैं जिनसे आजकल का परिवार नितांत शून्य है। क्या ही अच्छा हो, यदि स्कूलों और पाठशालाओं में कन्याओं को कला-शिक्षा दी जाय। मिथिला के उन उत्सवों के सम्मिलित आयोजनों द्वारा (ग्रुप एक्टिविटी), जिनमें इन आलेपनों और भित्तिचित्रों इत्यादि का विशेष स्थान होगा, पाठशालायें जगमग हो उठेंगी और कला एक आकर्षक विषय होगी, न कि आजकल की ड्राइंग और मैनुएल वर्क की भाँति शुष्क। इसी तरह सामाजिक केन्द्रों, क्लबों, महिला-मंडलों में लेक्चरबाजी और मशीन पर दर्जीगिरी का काम होने के साथ-साथ यदि इन उत्सवों को परिष्कृत रूप में मनाया जाय और उनके माध्यम से इस मनमोहक कला को चालू और विकसित करने का अवसर मिले, तो हमारा नवीन सामाजिक जीवन ऐसा नीरस नहीं होगा जैसी आशंका है।

श्री झा के इस चित्र-संग्रह का विशेष महत्त्व नृतत्त्व-विशारदों और समाजविज्ञान के अध्येताओं के लिए है। मिथिला की लोकसंस्कृति आदिम जातियों की संस्कृतियों की भाँति सहजज्ञान (इंस्टिंक्ट), मूलवासनाओं, भय और उल्लास का प्रकटीकरण ही नहीं है। वह तो वस्तुतः सनातन काल से प्रवाहित ज्ञानधाराओं, मध्ययुग में उत्कर्ष प्राप्त कलाओं और साहित्य-समुच्चय तथा विधि, नियम तथा कर्मकाण्डों में निबद्ध जीवनचर्या, इन सभी से अनुप्राणित भी है और सुसज्जित भी। इसीलिए मिथिला और ब्रजमंडल की संस्कृतियों में उन्मुक्त भावनाओं एवं परिष्कृत शैलियों, नैसर्गिक अभिव्यंजना तथा नागरिक सुरुचि का जो समन्वय दीख पड़ता है, वह शायद ही अन्य किसी लोकसंस्कृति में मिले। मिथिला के साहित्य और इतिहास के तो अनेक अध्ययन किये जा चुके हैं, किन्तु वहाँ की चित्रकला, संगीत, नाटक तथा रीतिरिवाजों का विभिन्न वर्गों की जीवनचर्या से क्या सम्बन्ध है, इसके विवेचन की बहुत आवश्यकता है। प्रस्तुत चित्रसंग्रह की टिप्पणियों में रीतिरिवाजों, विश्वासों और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के बारे में बहुत कुछ ऐसी सामग्री दी गई है, जो इससे पूर्व कभी प्रकाश में नहीं आयी है।

उपसंहार में लेखक ने जिन निष्कर्षों का उल्लेख किया है, उनसे सहमत न होते हुए भी यह तो माना ही जा सकता है कि आलेपन एवं भित्तिचित्र मिथिला की महिलाओं के लिए शास्त्रज्ञान तथा अध्यात्म-प्रेरणा के माध्यम थे।

हिन्दी में आलेपन और भित्तिचित्र की कलाओं के विषय में यह शायद पहला ग्रन्थ है। यदि



इससे प्रेरणा पाकर अन्य क्षेत्रों की लोकचित्रकला के ऐसे संग्रह तैयार किये जायँ तो निस्सन्देह वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य का एक नया प्रकरण उपलब्ध हो जायेगा। श्री झा ने अकेले ही इस जटिल कार्य को सम्पन्न किया है; इसलिए उनका यह प्रयास विशेषत: स्तुत्य है। उनकी तूलिका इन चित्रों के लिए सक्षम और कुशल है। किन्तु, लेखनकला में यह उनका सर्वप्रथम प्रयोग है और इसलिए टिप्पणियों में कहीं-कहीं शैली दुरूह और पंडिताऊ हो गयी है। तथापि इन टिप्पणियों में इतनी प्रचुर और विविध सामग्री प्रस्तुत की गयी है कि प्रसाद-गुण का अभाव मनस्वी पाठक को नहीं अखरता।

मुझे आशा है कि यह चित्र-संग्रह हिन्दी पाठकों का मनोरंजन कर और विशेषज्ञों को उपयोगी सामग्री देकर उन्हें कृतार्थ करेगा।

जगदीश चन्द्र माथुर

जगदीश चन्द्र माथुर
नई दिल्ली
९-९-१९६२





लेखक की ओर से

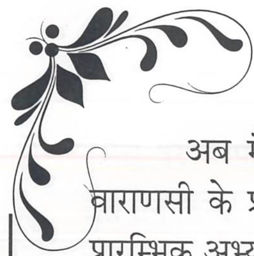


'माँ मैथिली' के चरणकमलों में सादर वन्दना के पश्चात् सर्वप्रथम मैं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ, जिनकी तपस्या के फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ।

फिर मिथिला के भूतपूर्व महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बहादुर के आकस्मिक स्वर्गवास पर शोक प्रकट कर श्रद्धापुष्प अर्पण करता हुआ परमपिता से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें! अब 'भारत-सरकार' की कर्त्तव्यपरायणता तथा कलाप्रियता की सराहना करते हुए उसका कृतज्ञ हूँ, जिसने मेरी आवाज सुन लुप्तप्राय मिथिला के महत्त्वपूर्ण प्राचीन सांस्कृतिक लोकचित्रों को फिर से आलोकित करने में मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है और उसी के फलस्वरूप आज मेरी यह रचना 'मिथिला की सांस्कृतिक लोकचित्रकला' प्रकाशित हो रही है।

इस अवसर पर संसदीय कार्य-मन्त्री माननीय श्रीयुत् सत्यनारायण जी सिंह से मैं विशेष उपकृत हूँ, जिन्होंने कृपापूर्वक मेरी आवाज सरकार तक पहुँचाने का कष्ट ग्रहण किया। इस कारण मैं उनका आजीवन आभारी रहूँगा।

अब मैं किसी अन्य विषय की चर्चा करने से पूर्व इस पुस्तक के प्राक्कथन लिखने वाले विविध शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् स्वर्गीय पण्डित त्रिलोकनाथ मिश्र जी के आकस्मिक निधन पर खेद प्रकट करता हुआ परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी महान् आत्मा, जिन्होंने जीवन के अन्तिम काल तक मिथिला संस्कृत विद्यापीठ (मिथिला रिसर्च इंस्टिट्यूट) दरभंगा के आवासोपदेशक का पद सुशोभित कर विद्या-दान के द्वारा देश तथा जन की सेवा कर अपनी कीर्ति उज्ज्वल की, उनकी दिवंगत आत्मा को चिर-शान्ति प्रदान करें!



अब मैं पाठकों के समक्ष इस पुस्तक से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख कर रहा हूँ। वाराणसी के प्रख्यात चित्रकार श्रद्धेय पण्डित श्री केदारनाथ शर्मा के संरक्षण में चित्रकला का प्रारम्भिक अभ्यास तथा कला की महत्ता का दर्शन करने के पश्चात् अपने जीवन के करीब पच्चीस वर्षों तक इस कला की आराधना और साधना करने के उपरान्त मिथिला के रहस्यपूर्ण सांस्कृतिक लोक-चित्रों के सम्बन्ध में परम्परागत लोकोक्तियों का संकलन कर यहाँ के वयोवृद्ध वृद्धविज्ञ तथा प्राचीन पंडितों की सहायता से चित्रों के संग उनकी व्याख्या इस पुस्तक की रचना के द्वारा जनसाधारण के समक्ष रखने जा रहा हूँ, जिसकी यथार्थता के सम्बन्ध में मिथिलानिवासी अथवा यहाँ की संस्कृति से सम्पर्क रखने वाले बुधजन ही बता सकेंगे। इस पुस्तक में चित्रित चित्रों को मैंने यहाँ की वयोवृद्धाओं, जिनका मैं सदा आभार मानता हूँ, की सहायता से यथासाध्य शुद्ध रूप, रेखा तथा बिन्दु के संग चित्रित कर छोटे आकार में जनसाधारण को दर्शाने की चेष्टा की है, जो अपने-अपने उचित अवसरों पर बड़े-बड़े आकार में मिथिलाभूमि की शोभा बढ़ाती हैं। इस पुस्तक के द्वारा मैंने यहाँ के चित्रों की सांस्कृतिक तथा व्यावहारिक सत्ता, शास्त्रीय युक्तिमत्ता, राजनीतिक गूढ़ता और सामाजिक बुद्धिमत्ता का निरूपण किया है।

इस पुस्तक की रचना की प्रेरणा मुझे प्राचीन कला के मर्मज्ञ तथा पृष्ठपोषक श्रीयुत् जगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस० से मिली, जब वे बिहार राज्य सरकार के शिक्षासचिव थे। इस अवसर पर माननीय पण्डित श्रीयुत् हरिनाथ मिश्र तथा माननीय श्रीयुत् कुमार गंगानन्द सिंह ने इस ओर मुझे अग्रसर होने को प्रोत्साहित किया, जिसके लिए मैं इनका आभार मानता हूँ।

वर्षों की खोज तथा कठिन परिश्रम के बाद इस पुस्तक की पाण्डुलिपि सन् १९६० ई० में प्रस्तुत हुई। प्रथम इसकी रचना मैंने अपनी मातृभाषा मैथिली में की, परन्तु इन चित्रों को भारत के जनसाधारण के समक्ष रखने के विचार से अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी में फिर लिपिबद्ध कर प्रकाश में लाने की चेष्टा कर रहा हूँ। मुझे आशा और विश्वास है कि कला-पारखी पाठक इन चित्रों की गूढ़ता पर ध्यान दे इन्हें अवश्य अपनायेंगे।

इसकी पाण्डुलिपि पूर्ण होने पर इसके प्रकाशन के निमित्त कई हजारों के व्यय की समस्या के समाधान में चिन्तित देख इस पुस्तक को भारत-सरकार के दृष्टिपथ में लाने की सूझ तथा मुझे दिल्ली की ओर अग्रसर करने का श्रेय मिथिला के स्वर्गीय महाराज माधव सिंह के वंशज 'चन्द्रधारी मिथिला कॉलेज' तथा राजकीय 'चन्द्रधारी संग्रहालय' दरभंगा के संस्थापक श्रीयुत् चन्द्रधारी सिंह तथा उनके दोनों सुपुत्र श्री शशिधारी सिंह और श्री रत्नधारी सिंह को है, जिनके प्रोत्साहित करने पर मैंने सर्वप्रथम भारत-सरकार के समक्ष इस पुस्तक को प्रस्तुत करने के विचार से दिल्ली-मन्त्रालय में वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा सांस्कृतिक मन्त्री माननीय प्रो० श्री हुमायूँ कबीर से मिलकर उनके समक्ष इसकी पाण्डुलिपि रखी और जिन्होंने एक कला-पारखी की तरह इसकी



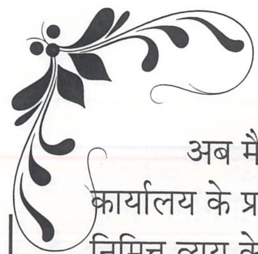
महत्ता को समझ इस पुस्तक को प्रस्तुत करने के विचार कुछ पंक्तियों में व्यक्त कर मुझे अनुगृहीत किया, जो इस पुस्तक में संलग्न है। फिर मिथिला की संस्कृति से पूर्ण परिचित माननीय मन्त्री श्रीयुत् सत्यनारायण सिंह द्वारा शिक्षामन्त्रालय के समक्ष इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए सहायतार्थ द्रव्य प्रदान करने के निमित्त आवेदन देने पर 'पुस्तक' के परीक्षणोपरान्त शिक्षामन्त्री माननीय डॉ० श्रीयुत् का० श्रीमाली द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन के व्यय में आंशिक पूर्ति के निमित्त प्रकाशन के बाद पुस्तक की कुछ प्रतियों के प्रतिबदलस्वरूप जो ८००० आठ हजार रुपये की रकम भारत सरकार ने प्रदान कर अपनी उदारता, कर्त्तव्यपरायणता तथा कला-प्रियता का परिचय दिया है, उसके लिये मिथिला-निवासी भारत-सरकार के प्रति कृतज्ञ रहेंगे। उस समय 'लोकसभा' के सदस्य श्रीयुत् श्रीनारायण दास, श्री अनिरुद्ध सिंह और रामेश्वर शाह धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने दिल्ली-मन्त्रालय के पथप्रदर्शन में अपना अमूल्य समय प्रदान कर मेरा साथ दिया।

इस पुस्तक के प्रकाशन के व्यय में बिहार-राज्य-सरकार ने भी काफी योगदान दिया है। भारत-सरकार की सहायता मिलने के उपरान्त भी प्रकाशन की पूर्वनिश्चित रूपरेखा में कतिपय परिवर्तन होने के कारण, करीब छः-सात हजार रुपये की रकम इस व्यय में अपनी ओर से लगाने की समस्या मेरे सामने खड़ी थी, जिसके लिये मुझे परेशानी उठानी पड़ती। परन्तु बिहार-राज्य के मुख्यमंत्री माननीय पण्डित श्री विनोदानन्द जी झा के यहाँ आवेदन दे अपनी कठिनाई निवेदन करने पर उन्होंने बिहार-राज्य के पुस्तकालयों के निमित्त, प्रकाशन के पश्चात् कुछ पुस्तक की प्रतियों के मूल्यस्वरूप पूर्व ही ७००० सात हजार रुपये की रकम शिक्षा-मन्त्रालय के पुस्तकालय-विभाग द्वारा मुझे प्रदान करने का कृपापूर्वक आदेश दे अनुगृहीत किया। प्रकाशन के निमित्त आर्थिक चिन्ताओं से सर्वथा मुक्त करने की कृपा के लिए मैं माननीय मुख्यमन्त्री जी का सदा आभारी रहूँगा।

इस अवसर पर मैं बिहार-राज्य के शिक्षामन्त्री माननीय श्रीयुत् सत्येन्द्रनारायण जी सिंह से भी उपकृत हूँ, जिन्होंने शीघ्र यह रकम देने की आज्ञा प्रदान कर इस कार्य में हाथ बटा मुझे आभारी बनाया।

अब मैं बिहार-राज्य के उपमन्त्री श्रीयुत् लोकेशनाथ जी झा को धन्यवाद दूँगा, जिन्होंने हमेशा मेरे प्रति हार्दिक सहानुभूति रखी और एक कुशल कला-गुण-ग्राही की तरह इस पुस्तक की उपयोगिता समझ इसके प्रकाशन-कार्य को आगे बढ़ाने की अनवरत चेष्टा कर मुझे योगदान दिया। इसके लिए मेरी शुभकामनाएँ बराबर उनके साथ रहेंगी।

इस कार्य में बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग के सहनिर्देशक श्री नवलकिशोर गौड़ तथा बिहार-राज्य के पुस्तकालय अधीक्षक पं० श्री जयदेव मिश्र का भी पूर्ण सहयोग रहा।



अब मैं बिहार के सर्वमान्य दैनिक पत्र 'इण्डियन नेशन' तथा 'आर्य्यावर्त' पत्रों के राँची के कार्यालय के प्रतिनिधि श्री बोधनाथ झा को भी धन्यवाद दूँगा, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन के निमित्त व्यय के शेष द्रव्य के लिए बिहार-राज्य के मुख्यमंत्री जी के यहाँ अपनी समस्या उपस्थित करने की सूझ प्रदान की।

'मिथिला की सांस्कृतिक लोकचित्रकला' की रचना के समय मुजफ्फरपुर-धर्मसमाज-संस्कृत-कालेज के अवकाश प्राप्त साहित्य के प्रधानाचार्य अनेक संस्कृत और मैथिली-ग्रंथ, काव्य तथा महाकाव्य के रचयिता वयोवृद्ध कविशेखर पण्डित श्रीयुत् बदरीनाथ झा जी ने मेरी शंकाओं का समाधान कर मुझे प्रकाश दिखाया तथा मुजफ्फरपुर-लंगटसिंह कालेज के अवकाशप्राप्त संस्कृत के प्रधानाचार्य, इस समय महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह कालेज, सरिसब के श्रमदानी प्राचार्य, मिथिला की प्राचीन संस्कृति के प्रतीक पण्डित श्रीयुत् उमानाथ झा जी ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ने तथा उसकी त्रुटियों की ओर संकेत करने का कष्ट ग्रहण कर मुझे उपकृत किया।

इस अवसर पर अपने जन्मस्थान 'सरिसब ग्राम' के सम्बन्ध में उल्लेख कर उसकी प्राचीनता और महत्ता का दिग्दर्शन कराना भी आवश्यक प्रतीत होता है, जहाँ की आबोहवा में पलकर मैंने इस पुस्तक की रचना की है, जहाँ प्राचीन संस्कृति इस बीसवीं शताब्दी में भी बहुत अंशों में विद्यमान है।

'सरिसब ग्राम' बिहार राज्य में 'जनक' की भूमि मिथिला के मध्य दरभंगा-जिलान्तर्गत इस समय के मिथिला रिसर्च इन्स्टीच्यूट-दरभंगा के व्यवस्थापक तथा 'कामेश्वर संस्कृत विश्वविद्यालय' के लिए अपने निवास का राजप्रासाद दान करने वाले दानवीर स्व० महाराजाधिराज कर्नल सर कामेश्वर सिंह बहादुर की भूतपूर्व जमींदारी के भीतर मनीगाछी रेलवे स्टेशन से दो मील उत्तर-पूर्व की दिशा में स्थित है, जिसके पूरब कमला नदी कुछ वर्ष पूर्व तक अपनी प्रबल धारा के संग प्रवाहित थी, और जल के प्रवाह का रुख दूसरी ओर मुड़ जाने के कारण पतली धारा के संग अब भी मौजूद है।

सरिसब एक ऐतिहासिक गाँव है। यहाँ प्राचीन समय के कुछ चिह्न इस समय भी इसके पुरातन होने का साक्ष्य दे रहे हैं। 'सिद्धेश्वर नाथ' महादेव का प्राचीन शिव-लिंग जो गाँव में स्थित है, महाभारत के समय अपनी तीर्थयात्रा प्रसंग से मिथिला-निवास करते हुए भगवान् श्री बलभद्र द्वारा स्थापित माना जाता है। इसी तरह गाँव के बीच एक प्राचीन नदी की रेखा, पुरातन समय में जिसके किनारे 'अमरावती नगर' होने की चर्चा म० म० पण्डित परमेश्वर झा रचित 'मिथिला तत्त्व विमर्श' में की गयी है, इस गाँव की प्राचीनता का इतिहास बता रही है।

इस समय करीब तीन-चार मील में फैला हुआ यह गाँव कई टोलों में विभक्त है, जिसके



पूर्वी टोले का नाम 'पाही', उत्तरी टोले का नाम 'बिट्ठो' और पश्चिमी टोले का नाम 'नवटोल' है।

सरिसब ग्राम में कन्द-मूल से उदर-पोषण कर देश-देशान्तर से आये सहस्त्रों शिक्षार्थियों को विद्या-दान देने वाले तथा किसी से याचना न करने का प्रण रखने वाले महामहोपाध्याय पं० भवनाथ मिश्र ने जन्म लिया। उस समय उनके यहाँ इतने विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे कि पुत्र-प्राप्ति की कामना से एक वर्ष तक 'हरिवंश पुराण' की हस्तलिखित एक प्रति नित्य दान करने वाले मिथिला के राजा भैरव सिंह ने, जिनके वंशज सुगौना गाँव स्थित 'ओइनिवार' वंश में, जो इस समय भी मौजूद है, किसी कारणवश एक दिन दान के लिए 'हरिवंश' की हस्तलिपि न रहने के कारण पूर्व दिन सन्ध्या समय 'अयाची' के यहाँ दूत भेजा और उन्होंने अपने शिष्यों के द्वारा सिर्फ डेढ़ घण्टे में ही अट्ठारह हजार श्लोकों का 'हरिवंश पुराण' जिसमें ४०० पृष्ठ हैं, लिखवाकर दूसरे दिन सूर्य्योदय के पूर्व राजा को पहुँचवा दिया। इस बात का उल्लेख दरभंगाराज-लाइब्रेरी में उक्त हस्तलिखित पुराण में मौजूद है।

यामार्द्धेनैव यत्राभूदेतत्पत्रशतद्वयम्।
अहो सर्षपसाम्राज्यमिदं पश्यन्तु सज्जना:।।

पण्डितवर भवनाथ मिश्र के सम्बन्ध में यह भी लोकोक्ति है कि उनकी स्त्री जो नित्य मृत्तिका का पार्थिव लिंग बनाकर पति के पूजास्थान के समीप रख देती थीं, एक दिन गर्भवती होने के कारण आलस्यवश प्रदोष-पूजा के समय पार्थिव लिंग बनाकर रखना भूल गईं और इस बात पर ध्यान दिये बिना ही मिश्र जी ने शिवजी के आवाहन के निमित्त अभिमन्त्रित हाथ का अक्षत भूमि पर ही डाल दिया। तत्काल एक शिवलिंग वहाँ प्रस्फुटित हो गया, जिसकी मिश्र जी ने पूजा की और विसर्जन के पश्चात् वह फिर भूमि में समा गया। उनकी डीह पर जहाँ इस समय 'शंकर दर्शन विद्यालय' स्थापित है, वह स्थान अब भी लिपा-पुता 'मंगल महेश' के नाम से पूजित है। गाँव के बालक या बालिकाओं के माङ्गलिक संस्कार के समय अपने बच्चे को उस स्थान का दर्शन कराना ग्रामीण अब भी आवश्यक मानते हैं, जो प्रथा उसी समय से चली आ रही है। इस गाँव में स्थित श्री १०८ सिद्धेश्वरी भगवती की प्राचीन मूर्त्ति, जो अयाची के वंशजों की कुल-देवता हैं और जिनको ग्रामवासी 'ग्राम-देवता' के रूप में मानते आये हैं, के सम्बन्ध में यह कथा परम्परा से प्रचलित है कि 'अयाची' के कनिष्ठ महोपाध्याय देवनाथ मिश्र भगवान् श्री बलभद्र की इष्टदेवी 'सिद्धेश्वरी' के अनन्य भक्त थे और इस कारण वे मथुरा नगरी में जहाँ सिद्धेश्वरी भगवती का मन्दिर था, निवास कर उनकी आराधना कर रहे थे। गाँव से गये वर्षों बीतने पर एक दिन अकस्मात् पति-विरह से व्याकुल अपने कनिष्ठदेव की पत्नी को धूलि-धूसरित अवस्था में देख 'अयाची' ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा आकर्षण कर भगवती की प्रस्तर मूर्ति के संग अपने अनुज को एक रात में ही घर मंगवा लिया। उसी दिन से यह 'सिद्धेश्वरी भगवती' की मूर्त्ति स्थापित है और उनके वंशजों



की 'कुल-देवता' मानी जाती हैं।

महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर भवनाथ मिश्र की प्रकाशित रचना 'नयविवेक' के अध्ययन से उनकी विद्वत्ता का परिचय प्राप्त होता है ।

महामहोपाध्याय भवनाथ मिश्र के पुत्र महामहोपाध्याय शंकर मिश्र थे, जिन्हें मिथिला-निवासी साक्षात् शंकर भगवान् का ही अवतार मानते हैं। जब इनका पाँचवाँ वर्ष भी पूर्ण नहीं हुआ था, रास्ता के किनारे धूल में लिपटे बदन खेलते समय ही इन्होंने गाँव के रास्ते से गुजरते हुए राजा भैरव सिंह के प्रश्न करने पर स्वरचित श्लोक-

'बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्रयम्।'

सुनाया था जो आज भी तुतली बोली बोलने वाले यहाँ के दो-ढाई साल के बच्चों के मुँह से सुनने को मिलता है। इसके अलावा आधा स्वरचित और आधा पररचित श्लोक सुनाने के भू-पति के आग्रह पर जिन्होंने-

'चलितश्चकितश्छन्नः प्रयाणे तव भूपते।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।।'

सुनाया था, जिसे सुन बालक की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हो राजा ने यथेच्छ स्वर्णमुद्राएँ बालक को उपहारस्वरूप प्रदान की थीं। उस द्रव्य से खुदवाया हुआ तालाब जीर्ण अवस्था में यहाँ इस समय भी 'चमैनियाँ डाबर' के नाम से प्रसिद्ध है। इस डबर के सम्बन्ध में यह कथा है कि शंकर मिश्र के जन्म के समय दरिद्रता के कारण उनकी माता जन्मजात शिशु का नाल काटने के पारितोषिक स्वरूप उस समय नाल काटनेवाली चमारिन को कुछ न दे सकी, परन्तु प्रसन्नतावश वचन दिया कि इस लड़के की पहली उपार्जित सम्पत्ति जो होगी उस पर तुम्हारा ही अधिकार होगा। इस वचन के अनुसार राजा से प्राप्त अशर्फियाँ उसको मिलीं, जिस द्रव्य से उस चमारिन ने यह पोखरा खुदवाया (चमारिन को मिथिला भाषा में चमैनि कहते हैं, इसीलिए यह पोखरा 'चमैनियाँ डाबर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।)।

श्रोत्रियकुलभूषण महान् दार्शनिक महामहोपाध्याय शंकर मिश्र की संस्कृत-रचना 'खण्डन-खण्ड-खाद्य' की टीका, 'रसार्णव' आदि अनेक ग्रन्थ इस समय प्रकाशित हैं, जिनके अध्ययन से उनके पाण्डित्य का परिचय मिलता है। श्रोत्रियों में इनका वंश 'सोदरपुरिए सरिसब' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके कनिष्ठ महोपाध्याय महादेव मिश्र हुए जिनके पुत्र 'महामोद'-कर्त्ता गुणेश्वर मिश्र थे। गुणेश्वर के लड़के भानुदत्त मिश्र हुए, जिनके संस्कृत-रचना में प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ-रसमञ्जरी, रसतरङ्गिणी, रसपारिजात, कुमारभार्गवीय, गीतगौरीपति आदि प्रकाशित हैं। भानु मिश्र के पौत्री-पुत्र थे महाकवि गंगानन्द, जिनकी रचनाओं में प्रकाशित ग्रन्थ-शृङ्गारवनमाला, भृङ्गदूत,



कर्णभूषण तथा काव्यडाकिनी हैं।

इस वंश में परम्परा से अनेकों विद्वान् होते आये हैं, यथा अर्वाचीन भूतपूर्व विद्वानों में नैयायिक पण्डित षष्ठिनाथ मिश्र, उनके अनुज पण्डित पुण्यनाथ मिश्र तथा पण्डित गोप्तृनाथ मिश्र और वैयाकरण पण्डित अर्कनाथ मिश्र । इसके अतिरिक्त शंकर दर्शन विद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक पण्डित जगदीश मिश्र और प्रकाशित ग्रन्थ समासशक्तिवाद, व्यञ्जनावाद के रचयिता तथा हाल में ही वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'पदवाक्यरत्नाकर' के टीकाकार श्रद्धेय पण्डित यदुनाथ मिश्र का नाम उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त 'हरियम्मय वंश' के पाहीटोल-निवासी महामहोपाध्याय सचल मिश्र हैं, जिनका उपनाम भवानीनाथ मिश्र है, जिन्होंने अपने समय में पूना के महाराज बाला जी बाजीराव पेशवा के दरबार में पहुँच वहाँ के पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपनी कीर्तिध्वजा फहरायी, फलस्वरूप प्रसन्न हो पेशवा ने एक लाख रुपये पारितोषिक के संग कई गाँवों की जागीर जब्बलपुर में उन्हें प्रदान की, जिसका उपभोग उनके वंशज इस समय भी कर रहे हैं। पेशवा के यहाँ से प्राप्त ताम्रपत्र इनके संग मौजूद है।

महामहोपाध्याय सचल मिश्र की संस्कृत-रचना 'आर्य्यासप्तशतीटीका' है, जिसकी भूमिका महामहोपाध्याय डॉ० सर गंगानाथ झा ने लिखी है।

सचल मिश्र के छोटे भाई महामहोपाध्याय मोहन मिश्र थे, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता दिखाकर उसी पेशवा को फिर प्रभावित किया और पारितोषिक के रूप में एक लाख में एक रुपया कम की रकम मिलने के कारण स्वाभिमान की रक्षा के लिए उस द्रव्य को लेना अस्वीकार कर वहाँ से चले आये। उस समय पेशवा की ओर से कहे जाने पर कि इतने रुपये पारितोषिक देने वाला इस समय शायद दूसरा कोई नहीं मिलेगा, उन्होंने उत्तर में कहा था कि एक रुपये के लिए एक लाख रुपये को छोड़कर जाने वाला भी शायद ही पेशवा को दूसरा मिलेगा। इनकी प्रकाशित रचना 'राधानयनद्विशती' है, जिसकी टीका महामहोपाध्याय पण्डित बालकृष्ण मिश्र ने की।

सरिसब के उत्तरी टोला बिट्ठो के निवासी पण्डितवर हरिहर उपाध्याय हैं, जिनकी प्रकाशित रचना संस्कृत में 'भर्तृहरि-निर्वेद' नाटक तथा 'हरिहरसुभाषित' हैं। इनके कनिष्ठ ज्योतिर्विद् सिद्धपुरुष नीलकण्ठ उपाध्याय हुए। इसी वंश के जगन्नाथ उपाध्याय के पुत्र महाकवि वेणीदत्त उपाध्याय थे, जिनकी रचना में संस्कृत-ग्रन्थ रसकौस्तुभ, अलंकारमञ्जरी तथा माधवविरुदावली प्रकाशित हैं।

इसके अतिरिक्त सरिसब के दक्षिणी सीमा पर स्थित भट्टपुरा गाँव है, जिसे 'श्लोकवार्त्तिक' तथा 'तन्त्रवार्त्तिक' नामक संस्कृत ग्रन्थ के रचयिता विश्वविख्यात सनातन धर्माचार्य



पण्डितशिरोमणि कुमारिल भट्ट का जन्म-स्थान कहा जाता है और जिनके सम्बन्ध में ऐतिह्य है कि 'सनातन धर्म' के पक्ष में 'बौद्ध-मत' का खण्डन करने के निमित्त बौद्धों के शास्त्र का अध्ययन करने के लिए बौद्ध-मत को स्वीकार कर अध्ययन के पश्चात् उसी मत का खण्डन कर बौद्धों से विश्वासघात करने के प्रायश्चितस्वरूप प्रयाग में चितारोहण कर शरीर त्याग करते समय शास्त्रार्थ के लिए उद्यत् जगद्गुरु शंकराचार्य को अपने साले तथा पट्टशिष्य माहिष्मती, जिसका अपभ्रंश नाम महिषी है, जो सहरषा रेलवे स्टेशन से करीब छ: मील की दूरी पर स्थित है और जहाँ की भगवती उग्रतारा मिथिला के भूतपूर्व स्वर्गीय महाराज माधव सिंह के बबुआन मधुबनी निवासी महाराजकुमार कीर्त्ति सिंह के वंशजों की आराध्य देवी हैं, के निवासी दुर्धर्ष विद्वान् महामहोपाध्याय मण्डल मिश्र के पास शास्त्रीय चर्चा के लिए भेजा था, जहाँ पहुँचने पर शंकराचार्य को मण्डन मिश्र के निवास-स्थान के परिचय में मिथिला के पनघट पर की ग्रामीण स्त्रियों के द्वारा -

'स्वत: प्रमाणं परत: प्रमाणं शुकाङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम।।'

सुनने को मिला था। संस्कृत नव्यन्याय के प्रकाशित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अनुमानपरिच्छेद' तथा 'अनुमानप्रकाश' के रचयिता पण्डितवर पक्षधर मिश्र, जिनका उपनाम जयदेव मिश्र था, यहीं के वासी थे।

सरिसब ग्राम के माहात्म्य में जनश्रुति है कि प्राचीन काल में यह ग्राम भारत के प्रत्येक भाग के विद्वानों के शिक्षाग्रहण करने का केन्द्र था, जहाँ देश के भिन्न-भिन्न भागों से विविध शास्त्रों के शिक्षार्थी आकर वर्षों निवास करते थे। इनके निवास का प्रबन्ध यहाँ के निकटस्थ गाँवों में रहता था। जैसे दण्डियों के रहने का प्रबन्ध भट्टपुरा के दक्षिणी सीमा पर स्थित ब्रह्मपुरा गाँव में, सांख्ययोग के विद्यार्थियों के लिए पाहीटोल के दक्षिण ओर स्थित सखबार गाँव में तथा षड्दर्शनों के जिज्ञासु का प्रबन्ध पाहीटोल से पूरब तथा कमला नदी के पश्चिम बसे खररख गाँव में किया गया था। तभी से ये गाँव इन नामों से पुकारे जाते हैं।

सरिसब के अर्वाचीन महापण्डितों में पाहीटोल निवासी श्रोत्रियकुल-कमल पलिवार 'महिसी'-वंशोद्भव संस्कृत तथा अँगरेजी भाषा के सम्मिलित धुरंधर विद्वान् स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉक्टर सर गंगानाथ झा का नाम कौन नहीं जानता, जिन्होंने उपनिषद् तथा अनेकों दर्शन की व्याख्या अँगरेजी भाषा में कर अपने पाण्डित्य की पताका विदेशों में भी लहराई और प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति का पद कई बार सुशोभित कर अपनी कार्य-कुशलता तथा योग्यता का परिचय दिया।

नवटोल-निवासी न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित बालकृष्ण मिश्र हुए जिन्होंने काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के प्राचार्य का पद आजीवन सुशोभित



किया।

फिर सरिसब के जयदेव मिश्र के वंशजों में महावैयाकरण, दुर्धर्ष नैयायिक पण्डितवर मार्कण्डेय मिश्र हुए, जिन्होंने उदयपुर में 'फतह भूपाल संस्कृत कॉलेज' के प्राचार्य का पद आजीवन सुशोभित किया।

यहीं के अनेक भाषाओं के संग अँगरेजी साहित्य के विश्वविख्यात दुर्धर्ष विद्वान् स्वनामधन्य डॉ० अमरनाथ झा थे, जो अपने पिता डॉ० सर गंगानाथ झा के बाद प्रयाग-विश्वविद्यालय के उपकुलपति का पद सुशोभित करने के पश्चात् आजीवन उत्तर प्रदेश तथा बिहार-राज्य में लोकसेवा-आयोग के सभापति-पद पर आसीन रहे। इनके अनुज पण्डित विभूतिनाथ, झा आई० सी० एस० हुए। फिर, सरिसब के दिवङ्गत विद्वानों में लक्ष्मीश्वर एकेडमी के भूतपूर्व प्रधानाध्यापक भवनाथ झा, एम० ए० का नाम स्मरणीय है।

इसके अतिरिक्त सरिसब की उत्तरी सीमा पर स्थित इसहपुर गाँव के निवासी लक्ष्मीवती संस्कृत विद्यालय, सरिसब के प्राचार्य महावैयाकरण पण्डितवर दीनबन्धु झा का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी रचनाओं में संस्कृत के 'रमेश्वरप्रतापोदय', 'रसिक-मनोरञ्जनी', 'वैयाकरणभूषणसार टीका', 'लिंगवचनविचार', 'बकारविवेक', 'कौमुदी टीका मूलार्थ विद्योतनी' तथा मिथिला भाषा के 'मैथिली व्याकरण', 'मिथिला भाषा विद्योतन', 'मिथिला भाषा कोष', 'अलंकार सागर' प्रकाशित हैं।

सरिसब ग्राम में संस्कृत की प्राचीन पद्धति द्वारा शिक्षाप्राप्त महापण्डितों में इस समय विद्यमान मुजफ्फरपुर धर्मसमाज संस्कृत कॉलेज के अवकाश प्राप्त साहित्य के प्रधानाध्यापक श्रोत्रिय 'खौआल'-कुल-कमल कविशेखर पण्डित श्री बदरीनाथ झा हैं, जिनकी प्रकाशित संस्कृत रचनाओं में 'प्रमोदलहरी' (संस्कृत-काव्य), 'राजस्थान प्रस्थान', 'भागवत-प्रदीप', 'राधापरिणय' (महाकाव्य), 'काश्यपकुलप्रशस्ति', 'अन्योक्ति साहस्री', 'साहित्य मीमांसा', 'शोकश्लोकशतक', 'गीत रत्नावली', 'गुणेश्वर चम्पू', 'कार्तिक शुक्ल द्वितीया कृत्यनिर्णय' तथा 'एकावली परिणय' (मैथिली), 'मैथिली काव्य विवेक' आदि अनेक ग्रन्थ तथा 'रसमञ्जरीसुरभि', 'ध्वन्यालोकदीधिति', 'रसगंगाधरचन्द्रिका' की टीका आदि हैं और जिनके द्वारा संपादित ग्रन्थ 'एकोद्दिष्ट सारणी', 'व्यञ्जनावाद', 'रसपारिजात', 'रसतरंगिणी', 'अलंकारमञ्जरी', 'काव्यप्रकाशविवरण', 'मैथिली गीत रत्नावली', 'मैथिलपद्यमाला' हैं।

इसके अतिरिक्त इस गाँव में तथा तीन-चार मील के भीतर बसी हुई बस्तियों में संस्कृत तथा अँगरेजी के सैकड़ों विद्वान् आचार्य, एम० ए० तथा पी-एच० डी० मौजूद हैं, जिनमें संस्कृत की प्राचीन पद्धति द्वारा शिक्षाप्राप्त महापण्डितों में मिथिला की स्वर्गीया महारानी लक्ष्मीवती के नाम पर स्थापित लक्ष्मीवती संस्कृत विद्यापीठ के प्रधानाध्यापक पं० श्री महेश झा, जनकपुर



जानकी मन्दिर के अध्यापक पं० श्री जीवनाथ झा, लोहना-विद्यापीठ के अध्यापक पं० श्री बुद्धिनाथ झा तथा बिट्ठोनिवासी पं० श्री कृष्णमाधव झा के नाम उल्लेखनीय हैं।

अँगरेजी शिक्षा प्राप्त विद्वानों में 'महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालय', सरिसब के प्राचार्य पण्डित श्री उमानाथ झा, एम० ए० बी० एल०, साहित्योपाध्याय, सर गंगानाथ झा के कनिष्ठ पुत्र पं० श्री आदित्य नाथ झा, आई.सी.एस., डॉ. श्री शचीनाथ झा, एम्.एस्.सी., पी–एच्. डी., पटना कॉलेज के आचार्य डॉ. श्री चेतकर झा, एम्० ए०, पी–एच्. डी., हिन्दी, मैथिली तथा अर्थशास्त्र के एम्० ए०, प्रो० श्री आनन्द मिश्र, चन्द्रधारी मिथिला कालेज के आचार्य श्री रमानाथ झा, एम्० ए० मैथिली कीचक-वध के रचयिता प्रो० श्री तन्त्रनाथ झा, एम्० ए०, प्रो० श्री शचीनाथ मिश्र, एम्० ए०, डॉ० श्री त्रिलोकनाथ झा, संस्कृत के स्वर्णपदक प्राप्त एम्० ए०,पी–एच्. डी., रामकृष्ण कॉजेज, मधुबनी के आचार्य संस्कृत के एम्.ए. तथा मैथिली के स्वर्ण पदक प्राप्त एम्. ए. प्रो. श्री महिनाथ झा हैं । इसके अतिरिक्त महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह कॉलेज के आचार्य प्रो० श्री पद्मनाथ झा, प्रो० श्री सदन मिश्र, एम० ए०, चन्द्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा के प्राध्यापक प्रो० श्री उषाकर झा, एम्० ए० और स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के नाम पर स्थापित लक्ष्मीश्वर एकादमी (सरिसब) के प्रधानाध्यापक श्री अम्बिका नाथ मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस गाँव में स्थानीय जनता के सहयोग से शिक्षा-प्रचार और कला की उन्नति के लिए स्वर्गीय म० म० डॉ० सर गंगानाथ झा के नाम पर स्थापित 'गंगानाथ वाचनालय' पुस्तकालय के रूप, राजनगर के भूतपूर्व राजाबहादुर स्व० विश्वेश्वर सिंह के नाम पर स्थापित 'श्री विश्वेश्वर कला-निकेतन' ललित कला का प्रशिक्षण केन्द्र बनाने के विचार से तथा 'मिथिला नाट्य-कला-परिषद्' अभिनय-कला को प्रोत्साहन देने के लिए स्थापित हैं।

इस छोटे-से गाँव में सरकारी सहायता तथा जनता के सहयोग से शंकर दर्शन विद्यालय, सचल विद्यालय, महारानी लक्ष्मीवती संस्कृत पाठशाला, कमला विद्यालय, महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह कॉलेज तथा प्रस्तावित 'लक्ष्मीश्वर एकेडमी', कन्या पाठशाला आदि संस्थाएँ स्थानीय जनता की शिक्षा की ओर अभिरुचि का संकेत दे रही हैं। इस समय सुयोग्य चिकित्सक श्री रमाकान्त चौधरी के अधीन सरकारी अस्पताल, कार्यदक्ष श्री पुष्पलाल झा के अधीन पोस्ट ऑफिस तथा हाल में ही सरकार द्वारा खोला गया सुव्यवस्थित 'टेक्निकल स्कूल' ग्रामीण जनता की सुविधाओं में चार चाँद लगा रहे हैं और गाँव में पक्की सड़क तथा बिजली का प्रकाश भारत-सरकार की योजनाओं में प्रगति का साक्ष्य दे रहे हैं। गाँव के मुखिया श्री दिवाकर झा के अधीन यह गाँव अभी तक सुव्यवस्थित है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मिथिला के मध्य सरिसब ग्राम की भूमि पर प्राचीन ऋषि-मुनियों जिनके आश्रमों के सम्बन्ध में 'मिथिला-तत्त्व-विमर्श' नामक मैथिली ग्रन्थ में उल्लेख है,

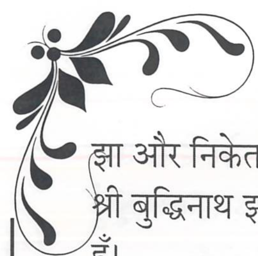


के समय से अब तक सरस्वती की विशेष कृपा बनी रही है और यही कारण है कि मेरे ऐसा एक साधारण व्यक्ति भी आज के इस नये युग की चमक में विलीन हो रहे मिथिला के इन रहस्यपूर्ण चित्रों का रहस्योद्घाटन करने में यथासम्भव समर्थ हो सका है।

अब एक कलाकार होने के नाते, महाराज-दरभंगा के बबुआन, 'बरही' के भूतपूर्व जमीन्दार, प्रस्तावित जगदीशनन्दन कॉलेज, बरही के व्यवस्थापक, कलापारखी श्री जगदीशनन्दन जी (सिंह) का मैं आभार मानता हूँ, जिनके संग एक अभिन्न मित्र की तरह सुखपूर्वक वर्षों बिता चित्रकला की आराधना की और जिन्होंने तन-मन-धन से मेरी इस साधना में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके अलावा मैं नई दिल्ली-कनॉट् प्लेस के न्यू इण्डिया एंस्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड के विकास अधिकारी श्री डी० एन० सिंह तथा दिल्ली-दरियागञ्ज के निवासी संस्कृत के स्वर्णपदक प्राप्त एम्० ए० तथा पी–एच्. डी. के अनुसन्धानक, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री त्रिलोक सिंह 'उजागर' को धन्यवाद देता हूँ जिनके साथ रहकर इस पुस्तक-प्रकाशन सम्बन्धी कार्य के सिलसिले में मैंने गाँव से दूर दिल्ली में बिना किसी असुविधा के काफी दिन बिताए।

मैं अपने अंतरंग मित्र पटना-विश्वविद्यालय के मैथिली-विभाग के प्राध्यापक, 'फेलो' तथा कला और साहित्य-प्रेमी, लोकप्रिय संगीतज्ञ, हिन्दी, अर्थशास्त्र तथा मैथिली के एम्० ए० प्रो० श्री आनन्द जी (मिश्र) और पटना से निकलने वाले प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'किशोर' के सम्पादक और सुप्रसिद्ध लेखक श्री जयनारायण पाण्डेय जी 'वाचाल बाँकीपुरी' को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस प्रकाशन के सिलसिले में मेरी काफी मदद की। साथ ही मैं हिन्दी के अनन्य नाटककार, अभिनेता तथा बी० एन० कालेज, पटना के हिन्दी प्राध्यापक प्रो० रामेश्वर सिंह कश्यप एवं आकाशवाणी, पटना के संगीतकार श्री ब्रह्मदेव नारायण सिंह को साधुवाद देता हूँ, जिनके साथ मेरा पटना-प्रवास सुखद रहा।

इस प्रकाशन के समय, पटना-विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष श्री दिवाकर झा, पटना-विश्वविद्यालय के राजनीति-विभाग के प्रोफेसर डॉ० श्री चेतकर झा और दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक प्रो० श्री अनिरुद्ध झा, पटना हाईकोर्ट के एडवोकेट श्री पद्मानन्द झा, श्री अजन्ता प्रेस के प्रधान-निर्देशक श्री जयनाथ मिश्र, पटना-ग्रन्थमाला-कार्यालय के प्रधान व्यवस्थापक तथा बाल-साहित्य के मूर्द्धन्य लेखक श्री अयोध्याप्रसाद झा, पटना-विश्वविद्यालय के राजनीति-विभाग के श्री नागेश झा तथा पटना-विश्वविद्यालय के एम० ए० के छात्र श्री भक्तिनाथ झा, और मैथिली के सुप्रसिद्ध लेखक पं० श्री गोविन्द झा, श्री गोपाल जी झा 'गोपेश' तथा श्री काशीनाथ मिश्र आदि ने सहयोग प्रदान किया है। इसलिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ। फिर अपने ग्रामीण सहयोगियों में मैं 'हितेन्द्र पुस्तकालय' सरिसब राजे के व्यवस्थापक तथा मन्त्री श्री जितेन्द्रनारायण झा, श्री विश्वेश्वर कला निकेतन (सरिसब) के मन्त्री तथा महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह कालेज के प्राध्यापक श्री अच्युतकर



झा और निकेतन के सदस्य मिथिला-भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक श्री मनमोहन झा, श्री जगन्नाथ झा, श्री बुद्धिनाथ झा, श्री हेतुकर झा, श्री योगाकार झा तथा श्री गोवर्धन झा, प्रभृति को धन्यवाद देता हूँ।

अब मैं पटना-वेनस-स्टूडियो के मालिक श्री सुचारुचन्द्र घोष को भी धन्यवाद दूँगा, जिन्होंने इस प्रकाशन में पड़ने वाले चित्रों के ब्लॉक के लिए मनोयोग के साथ शुद्ध डिजाइनें तैयार कीं। इस अवसर पर बिहार ब्लॉक वर्क्स, पटना ने भी काफी मेहनत के साथ शुद्ध रूपरेखा तथा बिन्दु के संग ब्लॉक बनाये हैं। इसके लिये उसके व्यवस्थापक और कार्यकर्ता धन्यवाद के पात्र हैं।

राष्ट्रभाषा में अपने ढंग का यह पहला ही ग्रन्थ होने के कारण छपाई में कतिपय त्रुटियाँ होने के बावजूद ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड लिमिटेड पटना के प्रबन्ध-निर्देशक श्री मदनमोहन पाण्डेय जी तथा प्रेस के अन्य कार्यकर्त्ता धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने भरसक परिश्रम कर इस प्रकाशन को सफल बनाने की चेष्टा की है।

कई एक कारणों से इस पुस्तक के प्रकाशन में कुछ विलम्ब हुआ, जिस कारण कला-प्रेमी पाठकों को प्रतीक्षा करनी पड़ी। आशा है, वे इसके लिये क्षमा करेंगे और अन्य त्रुटियों की ओर भी विशेष ध्यान न देंगे, क्योंकि लेखन-कला में मेरा यह प्रथम प्रयास है।

अन्त में फिर इस 'रचना' के प्रेरक प्राचीन कला के मर्मज्ञ तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक, 'भोर का तारा', 'ओ मेरे सपने', 'कोणार्क', 'नटखट', 'शारदीया' आदि पुस्तकों के रचयिता तिरहुत-डिवीजन के कमिश्नर श्री जगदीशचन्द्र माथुर, आइ० सी० एस० जिनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन ने मुझे इस पुस्तक की रचना की ओर अग्रसर किया तथा जिन्होंने अपना अमूल्य समय लगाकर इस पुस्तक की भूमिका लिखने का जो कष्ट ग्रहण किया है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अपने अन्य सहयोगियों को भी, जिनका नाम मैं स्मरण न कर सका, धन्यवाद देता हूँ।

पटना, दीपावली, १९६२



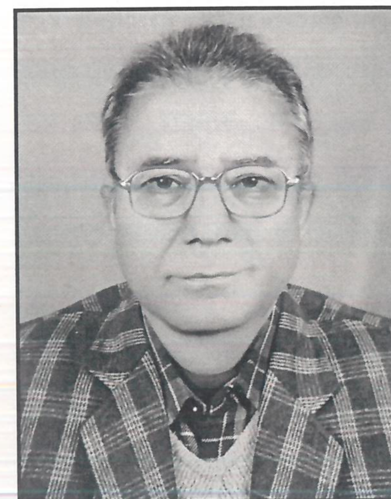
लक्ष्मीनाथ झा-
चित्रकार

लक्ष्मीनाथ झा

चित्रकार



पुनर्मुद्रण के अवसर पर



धर्म, दर्शन तथा संस्कृति की त्रिवेणी में कतिधा स्नात 'मिथिला' की समग्र सुषमा का मनोहारी अवलोकन तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक इस धर्म-क्षेत्र की लोकचित्रकला में सन्निहित गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों का गम्भीर अवगाहन न किया जाए।

राजर्षि जनक एवं महर्षि याज्ञवल्क्य की साधना-स्थली यह 'मिथिला' निश्चित रूप से अपनी सांस्कृतिक जड़ों को सुदृढ़तर बनाने की दिशा में जिस प्रकार का अनुकरणीय प्रयास करती आ रही है, यह विश्व की समग्र सांस्कृतिक चेतना के लिए अप्रतिम आदर्श स्थापित करता है।

आर्यावर्त के इस विशाल भूखण्ड पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कतिपय काल खण्डों में नाना प्रकार की कला शैलियों का उद्भव व विकास हुआ, परन्तु 'मिथिला चित्रकला' अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण आज सम्पूर्ण विश्व के कलामर्मज्ञों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बन चुकी है। किसी भी प्रकार की कलाशैली के उद्भव और विकास के मूल में उस क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। जगज्जननी जानकी की जन्मस्थली यह 'मिथिला' नाना प्रकार के ऐतिहासिक एवं भौगोलिक झंझावातों के भीषण प्रहारों को सहकर भी आजतक अपनी कला एवं संस्कृति को विकास के समुन्नत मार्ग पर अग्रसर करती रही है। इस क्षेत्र की समग्र कलाकृतियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसके मूल में एक विशेष प्रकार का भावनात्मक उद्रेक सन्निहित है जो अनुभूत अथवा अवलोकित अनुभवों को मूर्त रूप देने का सफल प्रयास है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को आजतक अक्षुण्ण रखने में इस देश की विभिन्न आञ्चलिक लोककलाओं की क्या भूमिका रही है, इससे समस्त सुधीजन सुपरिचित हैं, ऐसा



विश्वास करने में किसी प्रकार का संशय प्रतीत नहीं होता। इस विशाल देश की आञ्चलिक लोककलाओं में चित्रकला का विशेष महत्त्व रहा है। कतिपय अस्पृश्य कल्पनाओं, अपरिचित आह्लादों तथा अज्ञात कौशल सम्पन्न तूलिकाएँ पृथ्वी, दिवाल तथा प्रकृति के अन्य फलकों पर अपनी भावनाओं को उकेरती हुई रंगों एवं रेखाओं की मनमोहक अप्सराएँ न केवल घर के आँगन, दरवाजे तथा कोहबर के विशेष प्रकोष्ठों में, अपितु बाह्य प्रकृति के प्रांगण में अनेक युगों से नर्तन करती आ रही हैं।

मुख्य रूप से भूमिचित्र, भित्तिचित्र एवं चल-अचल पदार्थों पर बनाये गये चित्रों के तीन विभागों में विभक्त 'मिथिला चित्रकला' अपनी कतिपय मौलिक विलक्षणताओं के कारण आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ईर्ष्य ख्याति अर्जित कर चुकी है। अपने रूप, रंग, आकार, तथ्य एवं अन्यान्य शैलीगत विशेषताओं के कारण अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर अपनी कीर्ति वैजयन्ती विगत कई दशकों से फहरा रही यह चित्रकला आज विश्व के प्राय: सभी विकसित व विकासशील देशों में गहन शोध का विषय बन चुकी है।

प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों की विलक्षण प्रतिभा एवं हस्तपटुता का परिचायक, याज्ञिक युग से अब तक निरन्तर वर्त्तमान ऋग्वेदोक्त रेखाकृतियाँ न केवल भारतीयों के लिये अपितु समस्त विश्व के सारस्वत समुदाय के लिये गहन चिन्तन का विषय बनी हुई हैं। वैदिक युग से लेकर अभी तक यज्ञों की वेदियों एवं कर्मकाण्ड प्रधान प्रक्रियाओं में प्रकारान्तर से जिन रेखाओं एवं चित्रों का प्रयोग होता रहा है, उनके मूल में कहीं न कहीं 'मिथिला चित्रकला' का उत्स अन्तर्गर्भित है। 'मिथिला की लोकचित्रकला' इन्हीं वैदिक रेखाकृतियों के आधार पर कालान्तर से शक्तिपरक आगमशास्त्र का अनुगत, सम्मत तथा सम्बर्धित रूप है। किसी समय मिथिला के जनजीवन में व्याप्त प्रत्येक शुभ अथवा अशुभ-अवसर के लिये पृथक्-पृथक् रेखाकृतियों एवं चित्रों के निर्माण की समृद्ध परम्परा थी।

जनक एवं याज्ञवल्क्य की तपोभूमि मिथिला सदियों से संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रही है। हजारों वर्षो तक इस भूभाग में संस्कृति एवं कला के निरन्तर विकास से इस क्षेत्र का मानो प्रत्येक कण कला एवं संस्कृति का संवाहक बन गया है। यहाँ की लोक-चित्रकला में व्यवहृत बिन्दुओं, रेखाओं, मण्डलों एवं चक्रों में आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक अवधारणाओं के विशाल भंडार भरे-पड़े हैं। मिथिला की ललनाओं के उर्वर मस्तिष्क से प्रसूत युग-युगान्तर से सुरक्षित यह 'मिथिला चित्रकला' केवल सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक धरोहर ही नहीं है, अपितु स्थान-भेद से इस कला



के द्वारा राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों के दिग्दर्शन भी यदा कदा होते रहे हैं।

आज के इस औद्योगिक युग में मानव जीवन की तीव्र धारा में प्रतिपल सम्भावित परिवर्त्तन के कारण केवल मिथिला में ही नहीं, समस्त विश्व की विशाल एवं समृद्ध कला परम्परा के क्षितिज पर विनाशकारी बादलों का गर्जन कभी-कभी कलामर्मज्ञों तथा समर्पित कलाकारों के अन्त:करण को जड़ से हिला कर रख देता है। परिवर्त्तन का जो स्वरूप वर्तमान परिदृश्य में दृष्टिगोचर हो रहा है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कहीं ऐसी परिस्थितियाँ न उत्पन्न हो जाएं जो इस क्षेत्र की विशिष्ट कला-परम्परा को हमेशा-हमेशा के लिए लील जाएं।

विश्व की प्राय: किसी भी आञ्चलिक लोक कला की ऐसी सुव्यवस्थित तथा सुदीर्घ ऐतिहासिक भावभूमि नहीं रही है जैसी कि मिथिला की लोक चित्रकला की विशाल शास्त्रीय परम्परा दृष्टिगोचर होती है। वैदिक साहित्य एवं इतिहास-पुराणों में वर्णित चौंसठ कलाओं में 'आलेपन' अथवा 'आलिम्पन' को भी कला की संज्ञा से अभिहित किया गया है। वैदिक युगों के यही 'आलेपन' अथवा 'आलिम्पन' मिथिला में 'अरिपन' तथा बंगाल में 'अइपन' के नाम से विख्यात हैं। मिथिला की अरिपन कला को विश्व के कला मर्मज्ञ उन्नत कला की श्रेणी में गिनते आये हैं।

प्राचीन गृह्यसूत्र एवं अन्यान्य शास्त्रीय प्रबंधों में कतिपय स्थलों पर 'मण्डल' शब्द का जो प्रयोग मिलता है, उसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मिथिला में सदियों से व्यवहृत 'अरिपन' से है। कर्मकाण्डों के शुभ कर्मों में प्रयुक्त 'सर्वतोभद्र', 'स्वस्तिक', 'अष्टदल', 'षोडशदल' आदि रेखाकृतियों के गम्भीर अवलोकन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सभी आकृतियाँ प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप में मिथिला में व्यवहृत अरिपन के ही प्रकारान्तर हैं। सर्वतोभद्र स्वस्तिक के निर्माण की परम्परा तो वैदिक युग के कर्मकाण्ड प्रधान यज्ञादि क्रियाओं से प्रशस्त है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर मेरे पूज्य पिताजी पण्डित लक्ष्मीनाथ झा प्रसिद्ध 'खोखा बाबू' ने विगत सदी के सातवें दशक के पूर्वार्द्ध में 'मिथिला की सांस्कृतिक लोक चित्रकला' नामक पुस्तक का प्रणयन तथा प्रकाशन किया जो उस कालखण्ड में बहुत शीघ्र ही राष्ट्रिय तथा अन्ताराष्ट्रिय स्तर पर प्रख्यात हो गयी। इस पुस्तक का गंभीर अवगाहन सारसवत रसानुभूति के साथ ही कला के भौतिक, आध्यात्मिक, तांत्रिक एवं वैज्ञानिक पक्षों को सर्वाङ्गीण रूप से उजागर करता हुआ 'मिथिला चित्रकला' के सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहलुओं पर प्रभूत प्रकाश डालते



हुए मानव मस्तिष्क की बौद्धिक क्षमता व हस्तपटुता को एक साथ दिग्दर्शित करता हुआ कला-चेतना के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों के उद्‌घाटन के सफल प्रयास का एक अप्रतिम उदाहरण है।

यह पुस्तक अपनी गुणवत्ता एवं समकालीन प्रासंगिकता के कारण प्रकाशन के कुछ ही वर्षों के अभ्यन्तर अप्राप्य हो गई थी। मेरे पिताजी की हार्दिक इच्छा थी कि इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक का पुनर्मुद्रण यथाशीघ्र हो जाए, परन्तु कतिपय अपरिहार्य कारणों से यह उनके महाप्रयाण से पूर्व सम्भव नहीं हो सका। ९० के दशक में मैंने इस अनमोल कृति का पुनर्मुद्रण करवाया, परन्तु इसकी गुणवत्ता व लोकप्रियता के फलस्वरूप इसकी सारी प्रतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। देश-विदेश की कई संस्थाओं से इस पुस्तक की माँग निरन्तर बनी हुई है। इसी को ध्यान में रखकर मैंने इस अनुपम कृति के पुनर्मुद्रण का प्रयास किया। माँ जगदम्बा की असीम अनुकम्पा से पूर्णिया जिला के चम्पानगर ड्यौढ़ी के कुमार जयानन्द सिन्हा (सिंह) के सुपुत्र श्री योगानन्द सिन्हा प्रसिद्ध रघुजी ने संयोगवश इस पुस्तक को देखा तथा तत्क्षण इलाहाबाद स्थित 'कीर्ति ट्रस्ट' द्वारा इसके प्रकाशन के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी। श्री सिन्हा के चाचा श्री आद्यानन्द सिन्हा द्वारा स्थापित ट्रस्ट के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। चम्पानगर के डॉ० गिरिजानन्द सिन्हा (सिंह) प्रसिद्ध 'रमणजी' का मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने रघुजी से मुझे पहली बार मिलवाया।

मैं अपने अनुज प्रो० (डॉ०) पिनाकनाथ झा प्रसिद्ध 'धीरू बाबू', एम०बी०ए०, पीएच-डी, डी०लिट्, निदेशक, स्कूल ऑफ मैनेजमेन्ट साइन्सेज, वाराणसी को अपना स्नेहाशीष प्रदान करते हुए उनकी उत्तरोत्तर सफलता के लिए जगदम्बा से प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि इस सारस्वत अनुष्ठान में उन्होंने निरन्तर अपनी सकारात्मक जिज्ञासाओं से मेरा उत्साहवर्द्धन किया है।

विशेष रूप से ध्यातव्य है कि प्रस्तुत संस्करण में पिता जी की भावनाओं को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से उनके द्वारा लिखे गये **'लेखक की ओर से'**, को यथावत रखा गया है।

इस पुस्तक के पुनर्मुद्रण में वाराणसी स्थित प्रकाशन संस्था 'किशोर विद्या निकेतन' के संचालकद्वय डॉ० सन्तोष द्विवेदी व श्री आशुतोष द्विवेदी के साथ-साथ श्रीमती जयन्ती द्विवेदी के प्रति कतृज्ञ हूँ।

अन्त में मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रत्ना झा के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना नहीं भूलना चाहता, जिन्होंने पारिवारिक उलझनों से मुझे सदा दूर रखकर किसी भी प्रकार के सारस्वत अनुष्ठान में अपना सक्रिय सहयोग दिया है।



मित्रनाथ झा



मिथिला की सांस्कृतिक लोकचित्रकला

विषय-सूची

प्रथम खंड

(भूमि-चित्र)



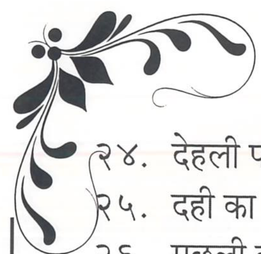
द्वितीय खंड
(भित्ति-चित्र)

तृतीय खंड
(चलपदार्थों पर चित्र)



चित्र-सूची
प्रथम खंड
भूमि-चित्र

द्वितीय खण्ड
(भित्ति-चित्र)



तृतीय खण्ड
(चलपदार्थों पर चित्र)





मिथिला की सांस्कृतिक लोक-चित्रकला
प्रथम खंड
१
रूपरेखा

'मिथिला' भारतराष्ट्र के अन्तर्गत बिहार राज्य का एक प्रधान अंग है, जहाँ 'विदेह-तनया' श्री जानकी जी का जन्म हुआ था।

यहाँ की संस्कृति बहुत ही प्राचीन है और उसका साथ देने वाली यहाँ की चित्रकला भी उससे कम प्राचीन नहीं है, क्योंकि यहाँ की संस्कृति का इस कला के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस समय भी प्रत्येक पर्व जो सामाजिक एकता और संगठन के रूप में मनाया जाता है, उसके अवसर पर मिथिला के मध्य अञ्चलों के गाँवों में निवास करने वाली स्त्रियाँ अपने-अपने हाथों से भूमि पर रेखा-चित्र का निर्माण करती हैं।

ये भूमि पर के रेखा-चित्र जो यहाँ 'अरिपन' के नाम से प्रसिद्ध हैं, अरवा चावल को सिले पर जल के साथ पीसकर पुनः पानी में घोलकर तथा किसी विशेष अवसर पर चावल के सूखे आँटे से हाथ की सिर्फ ३, २, या १ अंगुली से ही यहाँ की स्त्रियों के द्वारा मिनटों में ही बनाये जाते हैं। ये भूमि पर बहुत ही सुन्दर तथा कलात्मक प्रतीत होते हैं। शास्त्रों में इन्हें 'आलेपन' कहा गया है, और ये भित्ति-चित्र जो कई तरह के रंगों को बकरी के दूध में घोल कर, रूई के फाहे से अथवा कपड़े को लपेट उसकी तूलिका बनाकर ही घर की दीवारों पर लिखे जाते हैं, बड़े ही आकर्षक दृष्टिगोचर होते हैं।

दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व तक यहाँ की स्त्रियाँ रंगों का निर्माण स्वयं करती थीं- जैसे काले का, जौ को जला अथवा चिराग के धुएँ से बनी कजली में बेल का लस्सा और गोबर मिलाकर, पीले का चूने में बरगद के पत्ते का दूध मिला कर, नारंगी का पलास-फूल के पराग से, लाल का कुसुम के रस से और हरे का विल्वपत्र के अथवा सीम के पत्ते से इत्यादि।



यहाँ के चित्रों से आधुनिक युग के अच्छे-अच्छे कलाकार भी प्रभावित होते हैं और आश्चर्य करते हैं कि ये गाँव में रहने वाली स्त्रियाँ बिना किसी शिक्षा और साधन के कैसे इन सुन्दर और कलात्मक चित्रों का इतना शीघ्र निर्माण कर लेती हैं। विदेशी कलाकार भी इन चित्रों को आदर की दृष्टि से देखते हैं और समय-समय पर यहाँ आकर उनकी फोटो खींच अपने संग विदेश ले जाते हैं।

मिथिला की लोक-चित्रकला

मिथिला की यह चित्रकला प्राय: वैदिक-काल अथवा रामायण-काल से ही चली आ रही है, जिसका प्रमाण आगे के चित्रों के वर्णन से मिलेगा। मिथिला की यह 'लोक चित्रकला' अब धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है, परन्तु फिर भी यहाँ की कुलीन स्त्रियों के हाथ में अब तक जीवित है और पर्वों एवं वैदिक संस्कारों के अवसरों पर मिथिला के घरों में प्रचुर रूप से देखने को मिलती है। इस बीसवीं सदी में भी मिथला के लोग इसे मान्यता देते हैं, खास कर यहाँ के श्रोत्रिय तथा पञ्जीबद्ध वर्गों की स्त्रियाँ इन चित्रों को बहुत ही विशेष महत्त्व देती हैं और इनके बिना कोई भी पर्व या वैदिक संस्कार सम्पन्न नहीं होने देती हैं।

ये चित्र भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न रूप में बनाए जाते हैं। इनकी शैली में और जगहों की चित्र शैली से कुछ भिन्नता है। यहाँ की यह खास शैली है, जिसे हम 'मैथिल शैली' के नाम से लिखते हैं।

यहाँ की पिछड़ी जाति तथा हरिजनों के घरों में भी यह कला अब तक जीवित है, जिनके बनाए प्राय: अधिकांश वस्तुओं में इस चित्रकला का आभास पाया जाता है। तिनकों (सींकी) से बनी सामग्रियाँ, जो विदेशों में भी भेजी जाती हैं, तरह-तरह के रंगों से चित्रित रहती हैं। यहाँ ताल के पत्ते से बने छोटे बड़े आकार के पंखे जिन्हें विदेशी भी बड़े चाव से अपने साथ ले जाते हैं तरह-तरह के रंगों से चित्रित रहते हैं। यहाँ के हरिजनों के द्वारा बाँस की कमचियों से बने तरह-तरह के डलिये जो प्रत्येक पर्व अथवा सांस्कृतिक त्यौहार के अवसरों पर यहाँ व्यवहार में लाये जाते हैं, शुभप्रद रंगों के द्वारा कलात्मक चित्रों से चित्रित रहते हैं।

इसके अलावा यहाँ के कुम्भकार तथा मालियों के घरों में भी यह कला मौजूद है, जिनके बनाए 'सलहेस' या मिट्टी की अन्य मूर्तियों अथवा शिवमंदिर और देवस्थानों में चढ़ाये जाने वाले झाँप पर यह देखने को मिलती है।

'मैथिल शैली' के चित्र केवल भूमि को सजाने अथवा दीवार को सुन्दर बनाने के लिए ही



नहीं बनाए जाते हैं, बल्कि ये सब पुराण और शास्त्रों के गूढ़ तत्त्वों पर आधारित हैं। इनकी रेखाएँ, बिन्दु तथा रंग कोई-न-कोई विशेष तात्पर्य रखते हैं, जिनका वर्णन आगे किया जाएगा। रंगीन भित्ति-चित्र, जो खास कर कन्याओं तथा पुरुषों के विवाह के समय बनाए जाते हैं, विशेष महत्त्व रखते हैं। ये भिन्न-भिन्न तात्पर्यों से भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखे जाते हैं और इनके लिखने के वे स्थान भी पहले से निर्धारित हैं, जिनका भी कोई-न-कोई विशेष मतलब रहता है। यहाँ इस अवसर पर स्त्रियाँ अनेक रंगों से चित्रित कर मिट्टी की भी कुछ चीजें बनाती हैं, जिनके भी विशेष तात्पर्य होते हैं और उनको भी रखने के स्थान निर्धारित हैं।





भूमि चित्र

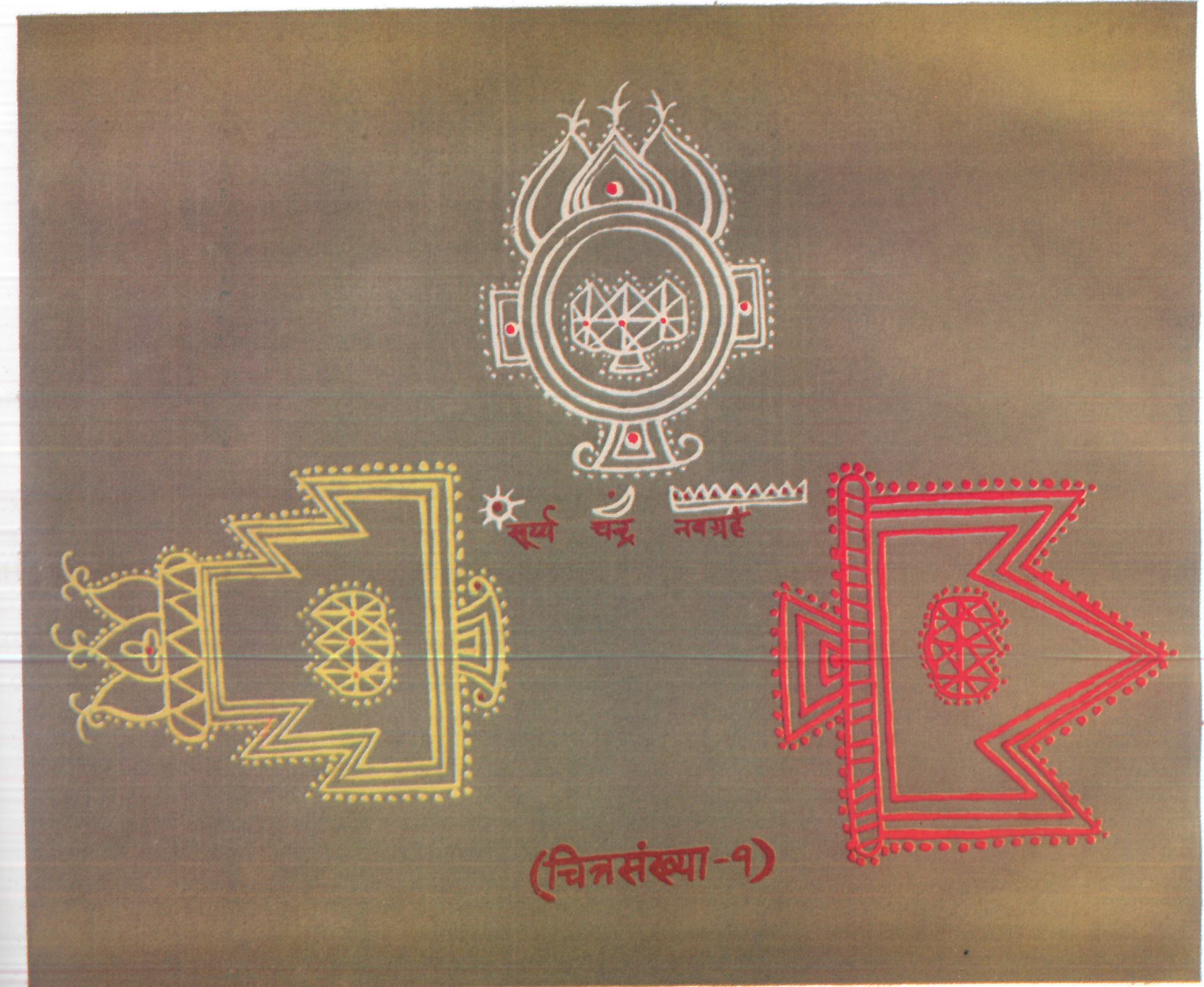
2

तुसारी पूजा का अरिपन

(चित्र संख्या १)

चित्र-संख्या १ तुसारी पूजा के समय मिथिला में स्त्रियों के द्वारा गोबर से उपलिप्त भूमि पर लिखने की प्रथा चली आ रही है, जिसमें सबसे ऊपर का अरिपन चावल के सफेद सूखे आँटे तथा नीचे का उसकी दाहिनी तरफ वाला पीला अरिपन हल्दी को चावल के साथ पीस कर उस आँटे से और उसकी बाँयी तरफ वाला लाल अरिपन चित्र चावल के आँटे में सिन्दूर मिलाकर सूखे आँटे को अंगुलियों के सहारे चुटकी से डालकर ही बनाने की परिपाटी चली आई है।

ये तीनों अरिपन चित्र मन्दिरों के रूप में चित्रित किए जाते हैं, जिनमें देवता की जगह भगवती गौरी का यंत्र लिखा जाता है। श्वेत और पीले रंग के मन्दिररूपी आलेपन में सबसे ऊपर मन्दिर के त्रिशूल के रूप तीन पत्तियों वाले दूर्बादल का चित्र जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिमूर्ति की त्रिशक्ति; जो सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण रूप सृष्टि, पालन और संहार के द्योतक हैं, दिया गया है; जिनका स्थान सर्वोपरि माना जाता है। इसके बाद मन्दिर के गुम्बज के रूप सुन्दर सुकोमल तथा सुगन्धियुक्त तीन पत्तियों वाला पुष्पों में सर्वश्रेष्ठ कमल का चित्र प्रात: मध्याह्न और सन्ध्या त्रिकाल के रूप में दिया गया है, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि व्याप्त है। इसके बाद श्वेत आलेपन में तीन वृत्ताकार क्षेत्र सृष्टि धारण करने वाले तीन भुवनों के रूप गर्भ मन्दिर की जगह बनाए गए हैं सृष्टि रूपी चारों तरफ के मन्दिर पर के दीपों के स्थान पर दिए गए बिन्दुओं से घिरे हैं। मन्दिर के बीच सृष्टि की आदि शक्ति के रूप रक्त बिन्दुओं से युक्त भगवती गौरी का यंत्र दिया गया है, जो सृष्टि में सब कामनाओं की सिद्धि देने वाली हैं। इस चित्र के नीचे वाले पीले अरिपन में गुम्बज के रूप तीन पद्म-पंखुड़ियों के नीचे मन्दिर के मुंडेरे की जगह के बीच पाँच त्रिकोण बनाए गए हैं जो पृथिवी, जल, वायु, आकाश तथा अग्निरूपी पाँच तत्त्वों के प्रतीक हैं। इस चित्र के बीच में भी गौरी का



तुसारी पूजा का अरिपन



यन्त्र बना है। इसके बाद लाल अरिपन, जिसमें मन्दिर के गुम्बज की जगह तीन रेखाओं से युक्त ऊपर के तीनों कोण तीन गुणों के साथ त्रिमूर्ति के द्योतक हैं और सृष्टि की उत्पत्ति शक्ति रूपी चारों तरफ बिन्दुओं से आवृत्त हैं- लिखे गये हैं। इसके मध्य में भी सर्व मंगलों को देने वाली गौरी का यन्त्र लिखा गया है।

इन तीनों अरिपनों के रंगभेदों में भी कोई विशेष तात्पर्य है। 'रसराजसुन्दर' के अनुसार 'श्वेत' जो ऊपर के चित्र का रंग है, ब्राह्मण वर्ण तथा उत्तम श्रेणी का है। यह शुक्र ग्रह को बहुत प्रिय है और सर्वसिद्धिप्रद है। 'पीला', जो नीचे उत्तर तरफ वाले चित्र का रंग है और हल्दी से बना है, वैश्य वर्ण अधम-श्रेणा का है, परन्तु धनप्रद है और गुरु बृहस्पति ग्रह को बहुत पसन्द है तथा 'लाल' जो दक्षिण तरफ वाले आलेपन का रंग है और सिन्दूर डालकर बना है, क्षत्रिय वर्ण- मध्यम श्रेणी का परन्तु व्याधि विध्वंसी है और रविग्रह को प्रिय है। हल्दी बहुत पवित्र मानी जाती हैं, इसमें अनेकों रासायनिक गुण भी हैं, इसलिए पवित्र कार्य के अवसर पर प्रायोग में लायी जाती है तथा सिन्दूर में गौरीशंकर की शक्ति मानी जाती है, इसलिए लाल रंग के स्थान में सदा सुहागिन रहने की कामना से यह प्रयोग किया जाता है।

यह तुसारी पूजा माघ मकर संक्रान्ति से फाल्गुन संक्रान्ति तक पूरे एक माह का कल्प बनाकर किया जाता है। यह पूजा 'ताराचरणचन्द्रिका' में दिए गए निम्नलिखित श्लोक के अनुसार 'तुषारप्रभा भगवती' का है, जो 'तुसारी पूजा' के नाम से मिथिला में विख्यात है।

तुषार-कर-पूर्णाङ्गी तुषार-कर-सुन्दरी।

तुषार-करतुल्यास्या तुषारांशु-समानना।।

यह पूजा अत्यूष भोर के समय ही की जाती है, इसमें काग की बोली सुनने तक पूजा का समाप्त न होना श्रेयस्कर नहीं माना जाता है। मिथिला में कन्या को कुमारी अवस्था में बाल्यकाल से ही यह पूजा प्रारंभ कराई जाती है और इसका निस्तार (अंत) विवाह होने के पश्चात् उसी वर्ष होता है, इसमें पूजा क्रम एक निश्चित मन्त्र के द्वारा श्वेत आलेपन पर सर्वगुण सम्पन्न वर मिलने की कामना से, पीले आलेपन पर धन की इच्छा से और लाल आलेपन पर प्रत्येक प्रकार के रोगों को नाश कर स्वस्थ रखने की भावना से किया जाता है। इस समय सूर्य, चन्द्र और नवग्रह की भी पूजा उनके अरिपनों को लिखकर की जाती है, जिनके पूर्ण विवरण के संग शुद्धचित्र 'कल्याणदेई' पूजा के अवसर पर चित्र-संख्या ४ में दिया जायेगा और गौण रूप से यहाँ भी यथास्थान चित्रित किया गया है। यह पूजा आँगन में ही घर के बाहर की जाती है और इस समय यहाँ की कुमारियों में एक



मास तक बड़ा उत्साह रहता है। ये सन्ध्या समय से ही पूजा की सामग्री इकट्ठा करने में तल्लीन रहती हैं और ठीक चार बजे भोर में पूजा करने के लिए अपने नित्यकर्मों से निवृत्त हो उद्यत हो जाती हैं। इस भीषण शीत काल में पूजा करवा कर इन कुमारियों को कई प्रकार की शिक्षायें दी जाती हैं। एक तो अत्यूष उठकर आँगन में बाहर निकलकर घूमने से प्रभात का स्वच्छ वायु-सेवन होता है जिससे कि शरीर स्वस्थ रहे। दूसरा इन कुमारियों के शरीर में आलस्य न आने पावे, ताकि मिथिला की संस्कृति के अनुकूल विवाह होने के पश्चात् संकोचशील बने रहने के लिए पति के शयनागार से सबेरे उठकर आने में आलस्य का अनुभव न करें और गृहस्थी के कार्यों में सबेरे से लग जायँ, ताकि पति-सेवा के किसी भी कार्य में विलम्ब न हो और भारत-रमणी के आदर्श पातिव्रत धर्म-पालन में कोई बाधा न पड़े; क्योंकि भारतीय संस्कृति में स्त्री के लिए पति-सेवा से बढ़कर कोई धर्म नहीं माना गया है। इसके प्रतीक स्वरूप जनकतनया मैथिली श्री जानकी हैं जिनको मिथिला सब बातों में अपना आदर्श मानती आई है। इन्हीं कारणों से मिथिला में तुसारी पूजा के द्वारा कन्याओं को ऐसी शिक्षा देना आवश्यक समझा जाता है जहाँ पूर्व वर्णित चित्र लिखना अत्यावश्यक माना जाता है।





पृथिवी अरिपन



3

पृथिवी अरिपन

(चित्र संख्या २)

चित्र संख्या २ के अरिपन चित्र मिथिला की स्त्रियों के द्वारा 'पृथिवी पूजा' के अवसर पर पिठार, जो पानी में पीसे हुए गीले चावल के आँटे को कहते हैं, के द्वारा उसे पानी में घोलकर अंगुलियों से लिखे जाते हैं, जो गोबर से उपलिप्त भूमि पर बड़े आकार के, देखने में अति आकर्षक प्रतीत होते हैं।

यह चित्र त्रिगुण रूपी तीन रेखाओं से घिरे पृथिवी के मुकुट-पर्वत के प्रतीक स्वरूप बनाया गया है,जिसकी महत्ता पृथिवी भी मानती है, जिसके सहारे देवताओं ने समुद्र-मन्थन कर पृथिवी से लक्ष्मी, ऐरावत, अमृतघट आदि अमूल्य सामग्रियाँ प्राप्त की थीं। यह चित्र त्रिकोणाकार है, जो पृथिवी रूपी मातृ शक्ति का बोधक है; क्योंकि त्रिकोण यन्त्र सृष्टि का द्वार माना जाता है, जिसके ऊपर सृष्टि के रूप हिम-कणों की तरह बिन्दु दिए गए हैं। इस अरिपन के मध्य में त्रिमूर्त्ति के रूप ऊपर के तीन कोणों से युक्त अनेक त्रिकोणों को जोड़कर सौभाग्य की देवी गिरिराजनन्दिनी 'गौरी', जिनकी पूजा जनकतनया श्री जानकी भी किया करती थीं, जिसका बृहत् वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में आया है, उनके यन्त्र के रूप में जो त्रिशक्ति के रूप बीच के तीन रक्त-बिन्दुओं ये युक्त हैं, दिया गया है- जैसे गिरिराज हिमालय के हृदय में अपनी प्रिय पुत्री गिरिजा का निवास हो और वह उनके प्राण स्वरूप हों। इन्हीं सब कारणों से यह चित्र पृथिवी-पूजा के अवसर पर लिखना मिथिला में आवश्यक माना जाता है।

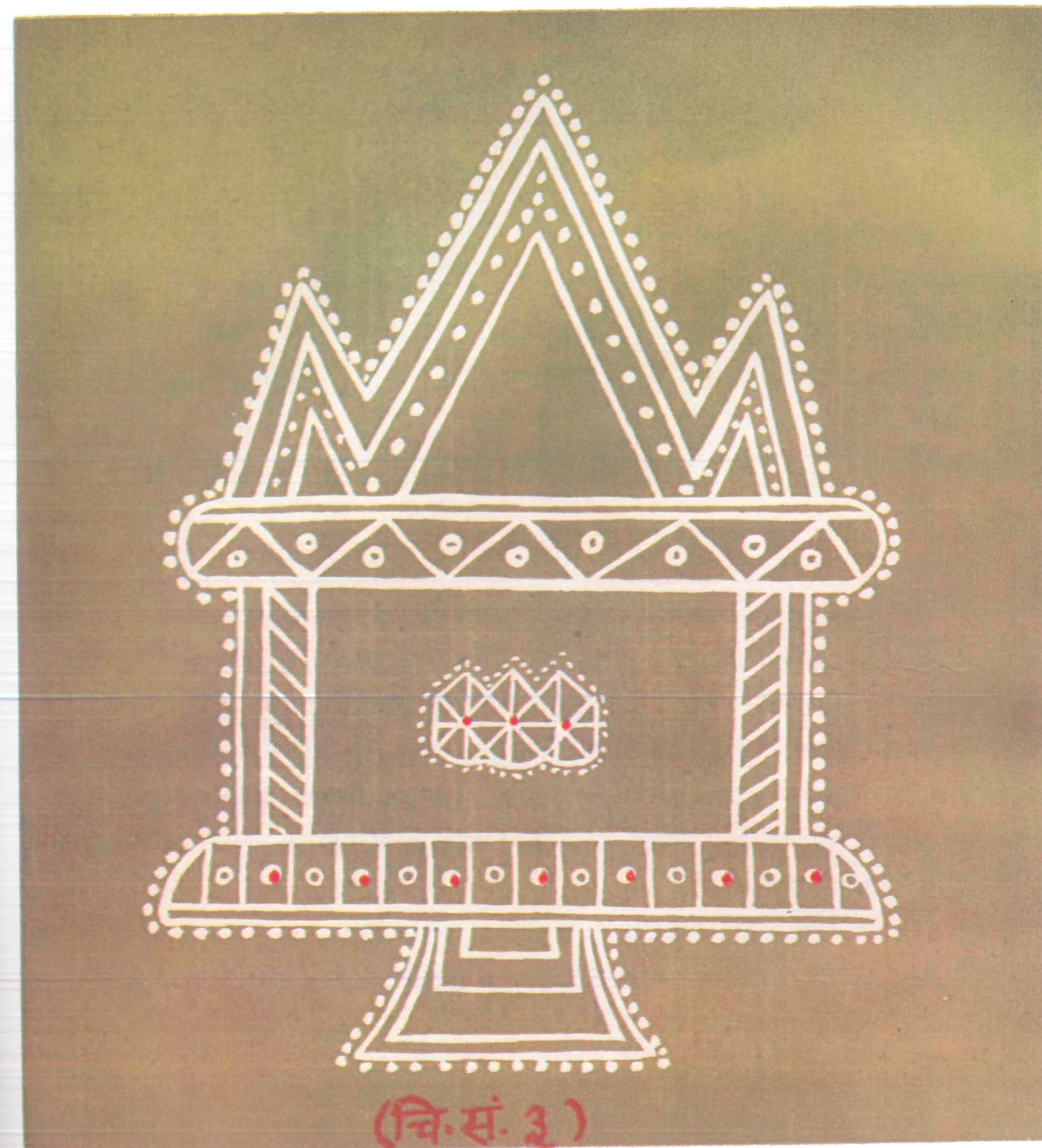
यह पृथिवी-पूजा किसी वर्ष के माघ की मकर संक्रान्ति से दूसरे वर्ष के माघ की मकर संक्रान्ति-पर्यन्त पूरे एक वर्ष का कल्प बना विवाह हो जाने के बाद यहाँ की स्त्रियों के द्वारा इस कामना से की जाती है कि पृथिवी माता अपनी पुत्री श्री जानकी जी की तरह हमें भी पतिव्रता, धर्मपरायण तथा कर्त्तव्यनिष्ठ बनावे और जिस तरह श्री जानकी जी ने कण्टकाकीर्ण जंगल में भी



अपने पति का साथ दे पति-सेवा की और जीवन भर श्री रामचन्द्र जी की कठोर-से-कठोर आज्ञाओं का पालन कर असह्य दुखों को सहन कर भी सती-धर्म की रक्षा की और अन्त में पति के चरणों के समीप मातृत्वरूप में पुत्ररत्न लव-कुश को प्रदानकर अपनी माता की गोद में समाकर स्त्रीत्व का आदर्श विश्व में छोड़ गईं उसी तरह हम भी जीवन भर पति सेवा कर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर पातिव्रत धर्म का पालन कर सकें और अपने-आपको पति की शुभेच्छाओं पर अर्पण कर कर्त्तव्यनिष्ठ तथा गुणवान् सन्तानों को जन्म देकर, माता का आदर्श प्राप्त कर सकें जिससे कि स्त्रीत्व का रूप विश्व में अमर रहे।

यह पूजा पृथिवी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाशरूपी पंचतत्त्व, जिनसे कि सृष्टि का निर्माण है, के प्रतीक चन्दन, जल, धूप, दीप तथा पुष्प आदि पूजा की सामग्रियों के द्वारा उदयोत्तर की जाती है।





साँझ अरिपन



४
साँझ-अरिपन

(चित्र संख्या ३)

चित्र संख्या ३ रूपी 'साँझ अरिपन' सन्ध्यादेवी की पूजा के समय मिथिला में स्त्रियों के द्वारा लिखे जाने की परिपाटी चली आ रही है, जिसमें इस अरिपन को ब्रह्माण्ड रूपी मन्दिर का चित्र बनाया गया है। इसमें सबसे ऊपर त्रिगुण रूपी तीन रेखाओं से घिरे त्रिमूर्ति का द्योतक मन्दिर के तीन गुम्बजों का रूप बनाया गया है जिसके बीच और ऊपर आकाश के नक्षत्रों के रूप मन्दिर के गुम्बजों पर दीपमाला रूपी बिन्दु दिए गए हैं तथा मन्दिर के गुम्बजों के आधारस्वरूप शिव और शक्ति के प्रतीक दो रेखाएँ मन्दिर के मुंडेरे के ऊपर के भाग में दी गई हैं और उसके नीचे की सामने वाली पट्टी में सूर्य, गणपति, अग्नि, दुर्गा और रुद्ररूपी पंच देवों के द्योतक पाँच त्रिकोण दिए गए हैं तथा रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन नौ ग्रहों के रूप नौ शून्याकार गोल पुष्प सजाए गए हैं जिनके आधार, आकाश के रूप, मुंडेरे की नीचेवाली रेखा दी गई है। इस तरह आकाश में मन्दिर के ऊपरी भाग का रूप-निर्माण किया गया है। इसके बाद मन्दिर के स्तम्भों की जगह वसन्त, हेमन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद् और शिशिर रूपी षट् ॠतुओं के प्रतीक दोनों तरफ की छः लम्बाकार रेखाएँ दी गई हैं, जो मन्दिर के आधार की जगह प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्यारूपी काल के प्रतीक तीन रेखाओं पर अवलम्बित हैं, जिसके बीच के सफेद और लाल शून्याकार पुष्परूपी बिन्दु दिवा और रात्रि के द्योतक हैं तथा छोटी-छोटी पन्द्रह रेखाएँ पन्द्रह दिवस निशाओं के पक्ष के प्रतीक हैं तथा इस चित्र में दी गई मन्दिर के नीचे भाग में अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूपी चार पुरुषार्थों के रूप तीन-तीन रेखाओं से घिरी मन्दिर की चार सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। इस विश्वरूपी मन्दिर के गुम्बजों से नीचे चारों तरफ के दीपों के स्थान बिन्दु विश्व की सृष्टि के रूप में दिए गए हैं। इस मन्दिर के भीतर तीन रक्त बिन्दुओं से युक्त सौभाग्य की देवी भगवती गौरी का यन्त्र, जिसका वर्णन पूर्व के चित्र में किया गया है, मन्दिर रूपी पुरुष के हृदय में आत्मा का प्रतीक स्वरूप बनाया गया है।



इन सब भावों से युक्त यह अरिपन मिथिला की भूमि पर बड़े आकार में लिखे जाने पर बहुत ही आकर्षक प्रतीत होता है।

यह पृथिवी पूजा सुहागिनों के द्वारा नित्य सन्ध्या समय की जाती है, जिसका तात्पर्य रहता है कि सन्ध्या देवी उनके पति-मिलन की सन्ध्याओं को सुखकर बनावे जिससे प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत हो और दाम्पत्य जीवन का यथार्थ अनुभव हो सके तथा वे सेवाओं से पति को सन्तुष्ट कर पति-भक्ति का आदर्श पालन कर सकें और गृहस्थाश्रम के सन्तान रूपी फलों को प्राप्त कर सकें।





कल्याणदेई पूजा का अरिपन



५

कल्याणदेई पूजा का अरिपन

(चित्र संख्या ४)

चित्र संख्या ४ के अरिपन कल्याण कारिका देवी तथा ग्रहों की पूजा, जिसे मिथिला में 'कल्याणदेई' पूजा कहते हैं, के अवसर पर स्त्रियों के द्वारा लिखे जाने की प्रथा चली आ रही है। इनमें ऊपर पहली पंक्ति में दाहिनी तरफ से सूर्य, चन्द्रमा, मठ तथा बीच वाली पंक्ति में गौर, साठि और सबसे नीचे तीसरी पंक्ति में नवग्रह का चित्र उनके प्रतीक स्वरूप बनाए गए हैं, जिसमें ऊपर की पंक्ति सूर्य की मुखाकृति के चित्र में दिए गए मुकुट के सबसे ऊपरी भाग में मोती की जगह तीन शून्याकार परमेश्वर के तीन त्रिमूर्ति के प्रतीक बनाए गये हैं जिनके नीचे शिव और शक्ति रूपी दो रेखाओं से बने मुकुट के तीनों कोण त्रिमूर्ति के आधारस्वरूप दिए गए हैं जिनके बीच त्रिकाल के द्योतक तीन पत्तियों वाला एक कमल के अग्रभाग का चित्र दिया गया है जैसे सूर्य के मस्तक पर यह फल चढ़ाया गया हो। इसके नीचे दोनों तरफ की दो कलियाँ तथा बीच का गोलाकार पुष्प तीन लोकों के प्रतीक स्वरूप दिए गये हैं, जो इनकी किरणों के तेज से प्रकाशित होते हैं। इसके नीचे मुकुट के रत्नों की जगह पाँच त्रिकोण पंच तत्त्वों के रूप बनाए गए हैं जिन से विश्व का निर्माण है। उसके नीचे मोती की जगह दिए गए सात शून्याकार चित्र सप्तद्वीप के प्रतीक बनाए गए हैं और मुखाकृति के ललाट पर बने चन्दन के रूप शक्ति के रक्त बिन्दु से युक्त तिलक तथा भस्म की तीन रेखाएँ पंचदेवों की द्योतक मानी जाती हैं। ये सभी इनकी किरणों से घिरी बनाई गई हैं; क्योंकि सृष्टि की ये प्राण स्वरूप हैं।

इसकी बाईं तरफ चन्द्रमा की मुखाकृति वाले चित्र के मुकुट के ऊपर दी गयी तीन पत्तियों वाला तीन विल्वपत्र का चित्र त्रिशक्ति से युक्त त्रिमूर्ति के बोधक बनाए गये हैं, जिनके आधार के रूप मुकुट के तीन कोण त्रिगुण के प्रतीक हैं तथा इनके भीतर वाली सात रेखाएँ सप्त सिंधु के द्योतक हैं, जो चन्द्र के प्रकाश से बढ़ते और घटते हैं। इनके बीच का अर्द्ध चन्द्राकार चित्र पृथिवी का द्योतक है जिसके चारों तरफ ये सिंधु माने जाते हैं।



इस चित्र की बाईं तरफ 'मठ' का चित्र है, जो मन्दिर के रूप में विश्व का चित्र बनाया गया है, जिसमें मन्दिर का त्रिशूल त्रिशक्ति का बोधक है और उसके नीचे पाँच गुंबज पंच देव की जगह दिए गए हैं तथा इनके मध्य के पुष्प की नौ पंखुड़ियाँ नव ग्रहों के प्रतीक बनाई गई हैं तथा मुंडेरे के बीच दिए गए पाँच फूल पंच तत्त्वों के द्योतक हैं। इन सबों के नीचे मन्दिर के प्रधान स्तम्भ के रूप में दी गई छः रेखाओं से युक्त दोनों तरफ के दो खम्भे षड् ऋतुओं के रूप में दिए गये हैं। इसके नीचे मन्दिर के आधार के रूप में दिए गए सात पुष्प सप्तर्षियों के द्योतक हैं तथा मन्दिर में प्रवेश करने के लिए चार सीढ़ियाँ चार वर्णाश्रमों के प्रतीक बनाए गए हैं। इन सबों से निर्मित विश्व रूपी मन्दिर के बीच प्रकृति तथा पुरुष की जगह गौरीशंकर की मूर्ति का चित्र बनाया गया है जिसकी सृष्टि के रूप दीप माला रूपी बिन्दु दिए गए हैं, जिससे विश्व रूपी मन्दिर घिरा है। इस चित्र में दिए गये लाल सिन्दूर के बिन्दु इन सबों की शक्ति के रूप दिए गये हैं जो सबों के प्राण स्वरूप हैं और इसीलिए मिथिला की स्त्रियाँ पिठार से प्राय: प्रत्येक अरिपन में चारों तरफ बिन्दु और सिन्दूर का बिन्दु देना अत्यावश्यक समझती हैं।

इसके बाद नीचे दूसरी पंक्ति के दाहिनी तरफ वाला चित्र सौभाग्य की देवी भगवती गौरी का प्रतीक बनाया गया है जो यहाँ 'गौर' के नाम से प्रसिद्ध है। यह चित्र पंचोपचार पूजा के प्रतीक पाँच पत्तियों वाला पुष्पराज कमल के मध्य सृष्टि के बीच प्रकृति स्वरूपा भगवती गौरी के यन्त्र से युक्त है जिसका वर्णन पहले के चित्र में किया जा चुका है। इन मैथिल शैली के चित्रों में कमल के चित्र का व्यवहार इसलिए विशेष रूप में किया जाता है कि कमल-फूल पूजा के लिए बहुत ही प्रशस्त माना जाता है और यह फूल प्राचीन काल से ही मिथिला का प्रतीक चिह्न है।

गौर के चित्र के बाईं तरफ 'साठि' का चित्र लिखा गया है, जो षष्ठी देवी के रूप सन्तानोत्पत्ति की शक्ति का बोधक यन्त्र स्वरूप है। यह षष्ठी देवी ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार स्कन्दप्रिया कही जाती है। इस चित्र के बीच दिए गए छः लाल बिन्दु षडानन की छः माताओं के रूप छः तारिकाओं के बोधक हैं, जो बच्चों की रक्षिका मातृशक्ति के द्योतक हैं। यह चित्र मिथिला में 'साठि' के नाम से प्रसिद्ध है तथा बच्चों के जन्म के छठे दिन 'छठियार' के अवसर से विवाह पर्यन्त प्रत्येक सांस्कृतिक अवसरों पर लिखा जाता है।

यह चित्र पृथिवी पर एक पेड़ के रूप में बनाया गया है जिसमें पेड़ की जड़ की जगह सृष्टि की आधार शक्ति बिन्दु युक्त त्रिकोण के रूप में दिया गया है जिस पर ऊपर की तिरछी रेखाओं से युक्त आयताकार क्षेत्र पृथिवी के रूप में बना है इसके ऊपर के रक्त बिन्दुयुक्त तीन त्रिकोण त्रिशक्ति के बोधक हैं जिनकी सत्ता पृथिवी पर व्याप्त है। इसके बाद प्रकृति और पुरुष के रूप दो छोटे-छोटे



कमल के किषलय बनाये गये हैं जो स्त्री तथा पुरुष के मानव शरीर के बोधक हैं। इसके ऊपर तीन रेखाओं से युक्त कमल की तीन कलियाँ त्रिकाल से घिरे शरीर की शैशव, यौवन और जरा अवस्थाओं के द्योतक हैं जो चार पुरुषार्थों के प्रतीक चार पत्तों से घिरे हैं।

इस चित्र के नीचे तीसरी पंक्ति में नवग्रह का यन्त्र बनाया गया है जिसमें दी गई बड़े आकार में कमल की नौ कलियों के चित्र त्रिगुण की तीन रेखाओं से आवृत पृथिवी के नौ खण्डों के द्योतक नवग्रहों के प्रतीक बनाये गये हैं।

ये सब मैथिलशैली के चित्र यथास्थान अरिपन के रूप में गोबर, जिसमें नानारोग के कीटाणुओं को नाश करने का रासायनिक गुण है, से उपलिप्त भूमि पर मिथिला में पुरुषों के उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) अथवा कन्याओं के विवाह संस्कार के एक दिन पूर्व, जो यहाँ 'कुमरम' के दिन के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें सन्ध्या समय इस पूजा के अवसर पर लिखे जाते हैं। अथवा यह कल्याणदेई पूजा बरुआ (यज्ञोपवीत धारण करने वाले बालक) अथवा वधू बनने वाली कन्या की नजदीकी रिश्तेदारिन के द्वारा, जिसे 'परिछनि वाली' कहते हैं, माडव (मण्डप) के नीचे पश्चिम कुछ दक्षिण हटकर की जाती है जिसका आशय यह रहता है कि अगले दिन प्रारम्भ होने वाला सांस्कृतिक कार्य निर्विघ्न समाप्त हो। इस पूजा में उस स्त्री के द्वारा नैवेद्य के रूप में नये मिट्टी के बर्तन में नये चूल्हे पर अपने हाथ से अग्नि प्रज्वलित कर चावल और बड़ी पकाई जाती है जो पूजा के बाद केले के डमखोर में देकर कुल देवता के स्थान में थाती के रूप में रखी जाती है और वह कार्य समाप्त होने के बाद, यज्ञोपवीत के अवसर 'रातिम' जो उक्त कार्य के चौथे दिन को कहते हैं अथवा विवाह के चतुर्थी कर्म के पश्चात् 'मासस्नान' जो वधू रूपी कन्या को विधिपूर्वक शुभदिन में स्नान कराने की प्रथा को कहते हैं, उस दिन जल में उसी के द्वारा प्रवाह कर दी जाती है।

इस पूजा के अवसर पर इन सब देव-देवी तथा ग्रहों के प्रतीक चित्र के रूप में अरिपन लिखने का आशय यह है कि इस कार्य में ये सब देवी-देवता तथा ग्रह साक्षी के रूप में रहें और संसार क्षेत्र में उस व्यक्ति के वर्णाश्रम धर्म के कर्त्तव्यपालन में सहायता करते रहें क्योंकि ये सब प्रतीक सृष्टि के प्रत्यक्ष साक्षी के रूप में हैं और सन्तुष्ट रहने पर सर्व मङ्गलों के देने वाले तथा असन्तुष्ट होने पर महा अमंगल कारक हैं। इसीलिए ये सब चित्र मिथिला में लिखे जाने की प्रथा चली आई है जिससे कि पूजा के द्वारा ये सब सन्तुष्ट रहें।



६

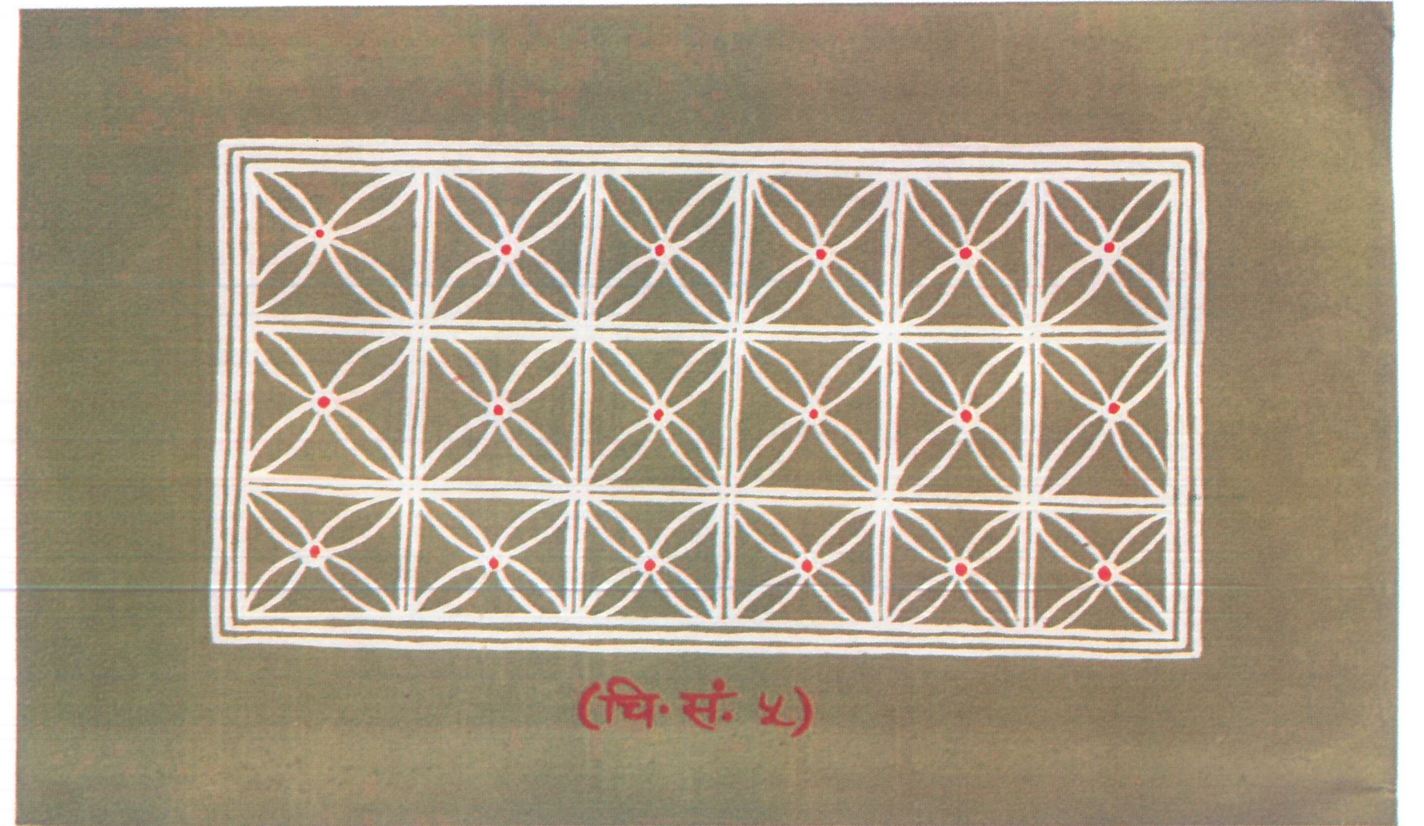
उबटन लगाने का अरिपन

(चित्र संख्या ५)

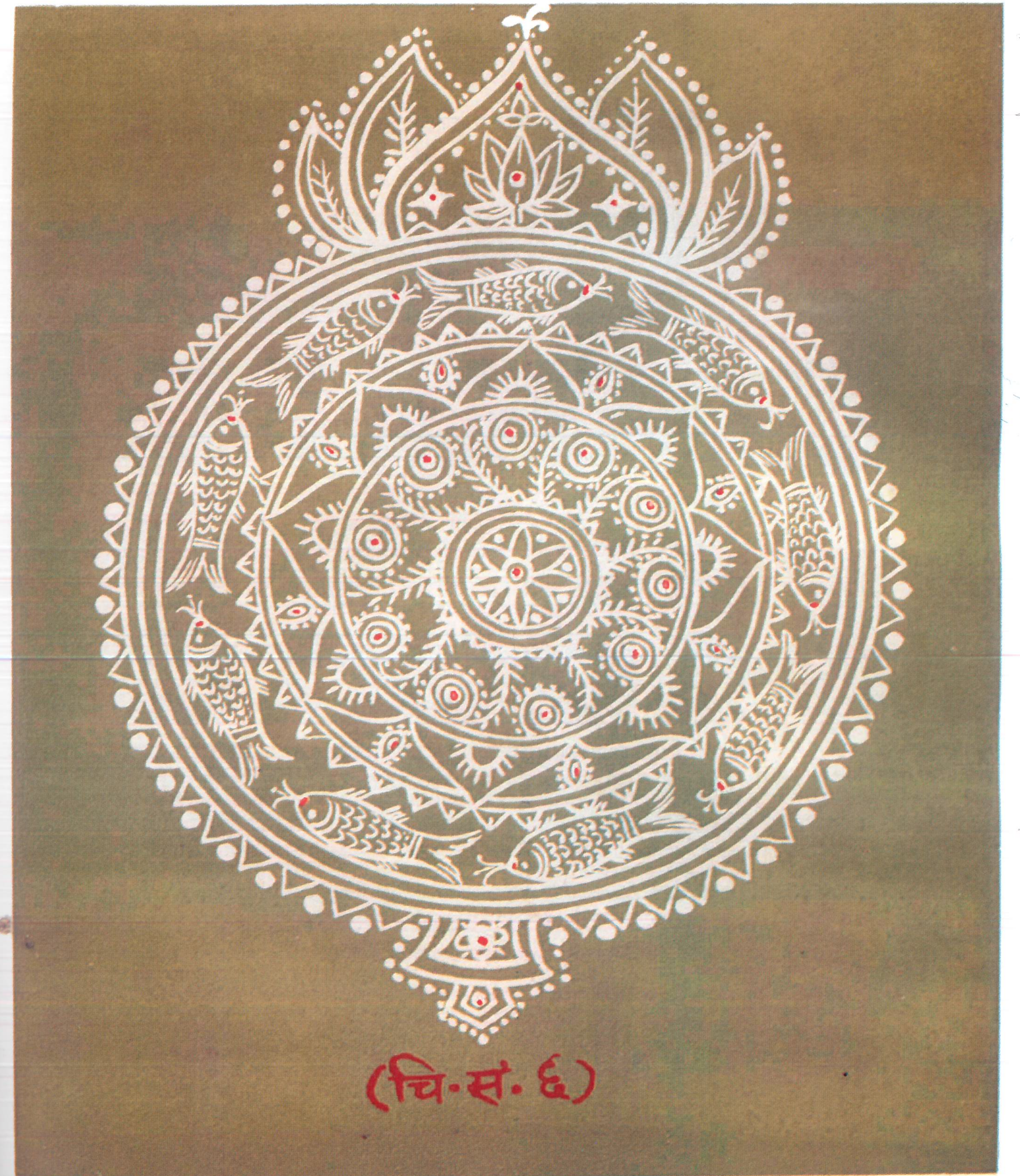
मिथिला में उपनयन अथवा विवाह के संस्कार के एक दिन पूर्व अर्थात् 'कुमरम' के दिन बरुआ अथवा कन्या को बड़े समारोह के साथ यहाँ की श्रेष्ठा स्त्रियों द्वारा उबटन, जो सरसों के तेल, जौ के आँटे तथा अन्य कई पदार्थों को मिला कर बनाया जाता है, उससे मालिश कर शरीर को स्वच्छ तथा पवित्र बनाने की प्रथा चली आ रही है। जिसे यहाँ 'आङ उङारब' कहते हैं। यह कार्य मण्डप पर ही सम्पादित किया जाता है और उसी समय बरुआ अथवा कन्या को बैठने के लिए दिए गए 'सबरंग पटिया' जिसका चित्र तथा वर्णन आगे दिया जाएगा, चित्रित चि० सं० ५ का अरिपन चित्र लिखा जाता है। यह चित्र यहाँ 'षट पाइस' के नाम से प्रसिद्ध है। यह अरिपन और भी कई सांस्कृतिक अवसरों पर, यथा विवाह के पश्चात् कोहबर-घर में वर-वधू के बैठने तथा सोने के लिये दिए गए सबरंग पटिया के नीचे जमीन पर तथा चुमाओन, जो किसी व्यक्ति को आशीर्वाद देने के समय की एक प्रथा है, के समय उसके बैठने के लिए दिए गए पीढ़े के ऊपर कई अवसरों पर लिखा जाता है। यह एक 'रक्षा यन्त्र' के रूप माना जाता है और इसीलिए दृष्टि-दोष या अन्य प्रकार के घातक मन्त्र-प्रयोग आदि से उन्हें बचाने के तात्पर्य से लिखा जाता है।

यह अरिपन चित्र प्रकृति और पुरुष रूपी दो रेखाओं से चारों तरफ घिरा अट्ठारह पुराणों के प्रतीक अट्ठारह समचतुः कोण क्षेत्र से युक्त बनाया गया है, जिसे प्रत्येक क्षेत्र में चार वेदों के प्रतीक चार पंक्तियों वाले पुष्प जिसकी सुगन्ध रूपी श्रुतियों से ये पुराण व्याप्त हैं, दिया गया है तथा बीच वाला सिन्दूर का रक्त बिन्दु उनकी शक्ति के रूप दिया गया है। यह चित्र भी और अरिपनों की तरह पिठार से ही केवल अंगुलियों के द्वारा लिखा जाता है।





उबटन लगाने का अरिपन



स्त्रियों का दशपात अरिपन



७

स्त्रियों का 'दशपात' अरिपन

(चित्र संख्या ६)

चित्र संख्या ६ का चित्र अरिपन के रूप मिथिला में कन्याओं के मुण्डन, कर्णवेध, विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर, कुलदेवता के घर अथवा मण्डप पर उस कार्य के सम्पादन होने के समय घर की ललनाओं के द्वारा अथवा पितृकुल की कन्याओं के द्वारा लिखा जाता है, जिसमें कन्याओं के द्वारा ही लिखा जाना श्रेयस्कर समझा जाता है। यह चित्र 'स्त्रीगणक दशपात अरिपन' के नाम से मिथिला में प्रसिद्ध है।

इस अरिपन के सबसे ऊपर भाग में त्रिमूर्त्तिरूपी तीन पत्तियों वाले एक छोटे-से पुष्प के नीचे पाँच पत्तियों वाला कमल पञ्चदेवों के प्रतीक और उसके भीतर मध्य की पंखुड़ी के बीच सात पत्तियों से युक्त एक कमल का चित्र सप्तर्षियों का द्योतक बनाया गया है, जिसका स्थान पृथिवी पर शास्त्रों में उच्च माना जाता है। इसके बाद ताराररूपी नक्षत्रों के प्रतीक बिन्दुओं से घिरे त्रिगुण की तीन रेखाओं से आवृत वृत्ताकार पृथिवी का रूप बनाया गया है, जिसके बीच शास्त्रीय चार वर्णाश्रम धर्मों के द्योतक मानव के चार कर्म-क्षेत्रों के रूप चार वृत्ताकार क्षेत्र बनाए गए हैं, जिनमें सबसे अन्तिम अर्थात् चौथे क्षेत्र के मध्य में सिन्दूर का रक्त-बिन्दु सृष्टि में प्राण के रूप दिया गया है। उसके ऊपर मातृस्थान में गर्भाशय के प्रतीक स्वरूप एक अष्टदल कमल का चित्र दिया गया है, जिसके चारों तरफ के बिन्दु सृष्टि के बिन्दुओं के रूप में बनाए गए हैं जो जन्म, कर्म और मरण रूपी त्रिकाल की तीन रेखाओं से घिरा है, जिसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि काल का वशीभूत है और सबों की मृत्यु निश्चित है। इसीलिए जन्मग्रहण कर अच्छे कर्म करना शास्त्रों में आवश्यक माना गया है। इसके बाद इसके ऊपर वाले क्षेत्र में दश डालियों से युक्त दश गोलाकार पत्तों के चित्र स्त्रियों के दशकर्मों के रूप में बनाए गए हैं। जिसको कर्त्तव्य रूप देने से मानव-शरीर इसके ऊपर वाले वृत्ताकार क्षेत्र में जो प्रकृति और पुरुष रूपी दो रेखाओं से आवृत है, दिए गए आठ कमल की पत्तियों के रूप अष्ट सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। जिसके फलस्वरूप ऊपर वाले वृत्ताकार क्षेत्र को



जो शिव और शक्ति दो रेखाओं से घिरा है उसके बीच दिए गए मिथिला में शुभप्रद माने जाने वाले 'भगवान् मत्स्य' के प्रतीक नौ मछलियों के चित्र रूप पृथ्वी की नवनिधियों को प्राप्त कर सकता है।

इसलिए यह दशपात अरिपन मिथिला की स्त्रियों के सांस्कृतिक कार्यों के अवसर पर लिखे जाने की परिपाटी चली आयी है, ताकि वे अपने कर्त्तव्य को न भूलें और स्त्री-धर्म का पालन सदा करती रहें, जिससे मिथिला की संस्कृति का कभी लोप न होने पाये।





मौहक अरिपन



८

मौहक अरिपन

(चित्र संख्या ७)

चित्र संख्या ७ का अरिपन मिथिला में 'मौहक' के समय, जो विवाह के पश्चात् होने वाली एक विधि है, लिखा जाता है। मौहक विधि अपरिचित हृदय वाले वर-वधू के अंतर में स्नेह का सृजन कर उनको आपस में प्रेमी तथा प्रेमिका के रूप बनाये रखने के लिए सम्पादित कराया जाता है। इस समय दोनों को अलग-अलग आसनों पर बैठा कर दोनों के आगे रखे गये दो थालों में, चावल और दूध से बनी खीर अथवा चूड़ा और दही, जो मिथिला की उत्तम भोजन-सामग्रियों में समझा जाता है, परोसकर वर तथा वधू के द्वारा सनवा और कौर बँधवा कर आपस की थालियों में शीघ्रता से फेंकने के लिए कहा जाता है, जिसमें कौर को पहले फेंकने वाले को ही विजयी होने का प्रश्रय दिया जाता है। यह विधि आपस में प्रीति बढ़ाने के लिए की जाती है। इसलिए खीर अथवा चूड़ा-दही जो दो चीजों के आपस में मिश्रण से स्वादिष्ट पदार्थ बन जाता है, थाली में परोसा जाता है ताकि वर-वधू का हृदय परस्पर मिलकर उसी तरह मधुर प्रेम का रूप धारण करे। यह विधि विवाह के उपरान्त उसी दिन से तीन दिनों तक कोहबर-घर में जो मिथिला में कई तरह के साधनों से युक्त वर-वधू के निवास के लिए सुरक्षित माना जाता है तथा चौथे दिन अर्थात् विवाह के चतुर्थी कर्म के दिन सन्ध्या समय कुलदेवता के घर में सम्पादित कराया जाता है। यह एक लौकिक विधि के रूप चला आता है। इसमें दिया गया यह अरिपन चित्र इसी विधि के अवसर पर वर-वधू के दोनों थालों के नीचे भूमि पर लिखा जाता है। इस का नाम भी 'मोहक' शब्द से ही 'मौहक' बन गया है।

इस अरिपन का निर्माण दोनों तरफ कमल के दो गोलाकार पत्तों के रूप चार वृत्ताकार रेखाओं से आवृत्त तथा ऊपर श्वेत बिन्दुओं से युक्त किया गया है जिसमें दोनों गोलाकार पत्तों के मध्य दो लाल बिन्दु दिए गए हैं। इसके उपरान्त दोनों गोलाकार चित्रों के बीच दोनों तरफ के दो

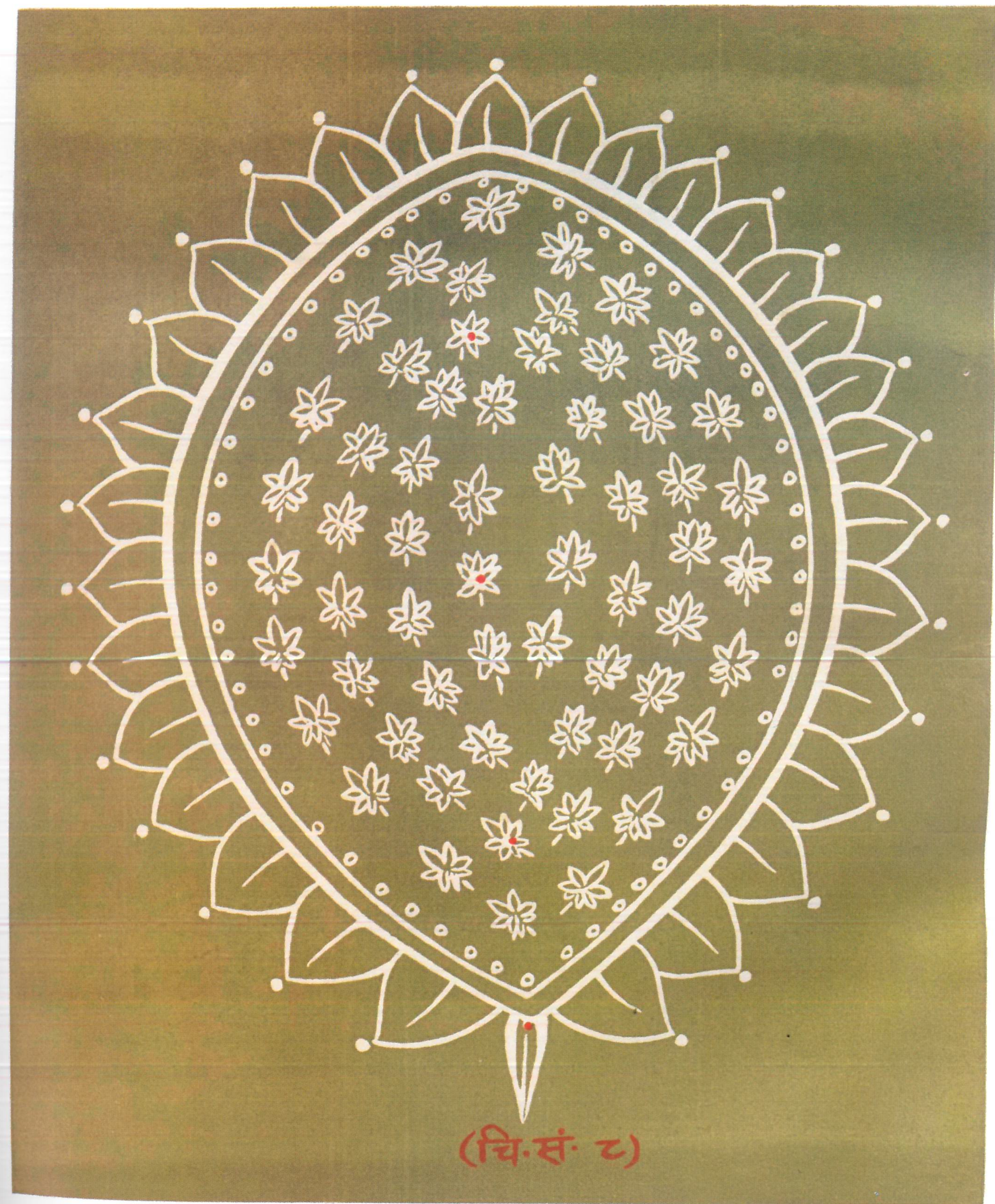


लम्बाकार अर्धविकसित पत्तों के चित्र से युक्त कमल-नाल रूपी बीच की मोटी रेखा के द्वारा दोनों गोलाकार चित्र जोड़े गये हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस आलेपन के भीतर दोनों सिन्दूर के लाल बिन्दु प्राण रूपी आत्मशक्तियों के प्रतीक बनाये गये हैं और ये दो पिठार से बने श्वेत वृत्ताकार पत्ते प्रकृति और पुरुष के रूप वधू और वर के द्योतक हैं तथा चारों वृत्ताकार रेखाएँ मानव के कर्त्तव्य के रूप चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास के स्वरूप दी गई हैं। इन चित्रों के ऊपर के श्वेत बिन्दु सन्तान रूपी सृष्टि के रूप दिए गये हैं। इन दो गोलाकार चित्रों के बीच वाले दोनों लम्बाकार अधखुले पत्ते दो संकुचित तथा अपरिचित हृदयों के रूप में दिए गए हैं तथा इनके बीचवाली कमलनाल रूपी रेखा प्रेम-सूत्र के प्रतीक बनायी गयी है, जो सबों को जोड़कर एकाकार अरिपन के रूप में परिणत करती है। अर्थात् इस अरिपन से यह तात्पर्य निकलता है कि दो आत्माओं के भिन्न-भिन्न रूप वर और वधू के दो हृदयों को प्रेम रूपी सूत्र से आपस में जोड़कर तथा चारों आश्रमों की शिक्षा कर्त्तव्य के रूप देकर और सन्तान रूपी सृष्टि का ज्ञान कराकर एकाकार किया जाता है।

इस अरिपन से इससे भी गूढ़ तात्पर्य यह निकलता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य आश्रम के द्वारा शास्त्रों का अध्ययन कर गृहस्थाश्रम में विवाह-बन्धन में जकड़कर प्रेम रूपी आनन्द का अनुभव प्राप्त करते, दो शरीरों को एकाकार बना और सन्तानों की सृष्टि करते वानप्रस्थ आश्रम में विरक्त भाव का सृजन कर संन्यास आश्रम में पहुँच तप के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर परब्रह्म परमेश्वर में जिसका बोधक स्वरूप इस अरिपन का शून्याकार गोलचित्र बनाया गया है, मिथिला के महाराज जनक, जिनका नाम विदेह था, उनकी तरह अपनी आत्मा को लीन कर सकता है।

इन्हीं सब तात्पर्यों से मैथिल शैली का यह चित्र मिथिला में विवाह रूपी सांस्कृतिक अवसर पर यहाँ की स्त्रियों के द्वारा चित्रित करने की प्रथा चली आ रही है।





षष्ठी पूजा का अरिपन



९
षष्ठी पूजा का अरिपन
(चित्र संख्या ८)

चित्र संख्या ८ का अरिपन मिथिला में षष्ठी देवी की पूजा, जो यहाँ 'षष्ठिका पूजा' के नाम से प्रसिद्ध है और जो किसी कन्या के पहली बार ऋतुमयी होने के चौथे दिन उसे सविधि स्नान कराने के बाद कराई जाती है, उस अवसर पर लिखा जाता है। इस पूजा से पूर्व ऋतुमती होने के बाद से चार दिनों तक उस लड़की को 'नाग' (कुलदेवता के घर में पूरब तरफ वाली प्रधान देहली के उत्तर उसी दीवाल के नजदीक चारों तरफ चारों कोने पर चार केले के पेड़ और बाँस की करचियों को विधिपूर्वक भूमि में गाड़कर और चारों तरफ एक पीले रंग के कपड़े से पर्दा के निमित्त घेरकर रहने के लिए सुरक्षित बनाए गए घेरे) के भीतर रखा जाता है। इस नाग के भीतर पहले दिन आग से विदग्ध की गई भूमि पर, दूसरे दिन बैगन के पत्ते पर, तीसरे दिन बाँस के पत्ते पर और चौथे दिन केले के पत्ते पर उसे भोजन कराया जाता है। इसमें चौथे दिन का स्नान बाँस के किसी निखण्ड बीट के नीचे सूर्योदय से पूर्व ही कराया जाता है। इसके बाद उसके कपाल पर सिन्दूर से बाँस के एक बीट का चित्र लिख कर तथा सिन्दूर से ही सूर्य, चन्द्र, गौर, साठि, नवग्रह, जिसका चित्र पूर्व ही दिया जा चुका है और बाँस पुरैन जिसका चित्र समेत वर्णन आगे दिया जायगा, को एक पीले रंग की साड़ी पर चित्रित कर उसे पहनाया जाता है और उसके आँचल में अपने रिश्तेदारिनों के यहाँ से भेंट के रूप में आई हुई पोटलियाँ जिस में धान, चावल, हल्दी, सुपारी, पान की ढोली, केले का हत्था और नारियल आदि बँधे रहते हैं और जो मिथिला में 'खोंइछ' कहलाता है, डाल कर बाँध दिया जाता है। यह 'खोंइछ' देना मिथिला में अन्य शुभ अवसरों पर भी अत्यावश्यक माना जाता है, जो कुलदेवता के नजदीक आशीर्वादी के रूप दिया जाता है और इसे उन्हीं के नजदीक खोल कर रखे जाने की प्रथा चली आ रही है। इसमें दिये गये फल आदि चीजें पति-पत्नी के उपयोग के लिए ही उपयुक्त समझी जाती हैं।



इसके बाद यह अरिपन लिख, कच्ची मिट्टी की एक सवत्सा गाय की मूर्ति बना, कच्ची मिट्टी के एक सरबे में रख इस अरिपन पर रख दिया जाता है, जिसका तात्पर्य उस लड़की में मातृ शक्ति के प्रादुर्भाव होने से रहता है। कच्ची मिट्टी से सवत्सा बनाने का तात्पर्य यह रहता है कि उस लड़की के गर्भ में मनोभिलषित सन्तान उत्पन्न हो; क्योंकि कच्ची मिट्टी से ही मनोनुकूल मूर्तियों का निर्माण हो सकता है। इसके उपरान्त इस मूर्ति पर षष्ठी देवी की पूजा होती है। उस पूजा में भोग के रूप में ६० कच्चे सरवों खीर तथा 'अहिवक फर' जो मिथिला में पक्वान्न के रूप लम्बाकार कन्या के सांस्कृतिक शुभ अवसरों में चावल के आँटे में गुड़ डालकर बनाया जाता है, दिया जाता है और पूजा के बाद यह प्रसाद के रूप में स्त्रियों में वितरण कर दिया जाता है। इस अवसर पर सूर्य, चन्द्र आदि के चित्र सामने वाले दीवाल पर हल्दी के पीले रंग से चित्रित किये जाते हैं। पूजा के पश्चात् इस समय पहनायी गयी साड़ी थाती के रूप रखी जाती है।

ऊपर कही गई इन विधियों के संग इस पूजा का तात्पर्य यह है कि लड़कियाँ ऋतुमती होने के बाद ही पूर्णरूप से स्त्रीत्व को प्राप्त करती हैं। इसीलिए उसे नाग के भीतर सीमित रखकर जो बाँस और केले के पेड़ से ही बना रहता है तथा मिथिला में वंश-वृद्धि का द्योतक माना जाता है, शिक्षा दी जाती है कि अपने गृहस्थाश्रम धर्म के भीतर ही सीमित रह कर और जीवन में यदि जनकतनया श्री जानकी जी की तरह घर के बाहर जंगल में भी पेड़ के नीचे रहने का अवसर प्राप्त हो, तो धैर्य रखना और भोजन करने के लिए यदि कोई अन्य सामग्री अथवा पात्र न मिले, तो किसी पत्ते पर ही फल–मूल भोजन कर अपना निर्वाह करना तथा अपने अन्य सुख की इच्छ को जला दुख में भी पति का संग देना जिससे नारियल तथा केले के रूप सूस्वाद फलरूपी गुणवान् सन्तान प्राप्त होगी और वंश बढ़ेगा तथा सुख सम्पन्न होओगी।

इस पूजा के समय में लिखा जाने वाला यह अरिपन प्रकृति रूपा स्त्री की सृष्टि को धारण करने वाले, गर्भाशय तथा दीपदान की तरह वासना की लौ से युक्त सृष्टि और संहार को द्योतक बनाया गया है। जिसमें दिवस और निशा की बोधक अथवा पुरुष और प्रकृति की द्योतक या दीपदान की ऊपरवाली कोर के संग नीचे की गहराई के रूप चारों तरफ की दो रेखाएँ दी गई हैं जिनसे ये आकार बनते हैं। इन रेखाओं के ऊपर मास के तीन दिवस निशा के बोधक गर्भाशय के कमल की पत्तियों के रूप दीपदान की सुन्दरता के निमित्त तीस खाढ़ियाँ चारों तरफ बनाई गई हैं। इन पत्तियों के ऊपर दिवस अथवा निशा में तीस दण्डों के बोधक या परागरूपी रज के कणों के द्योतक प्रकाश के रूप तीस बिन्दु दिये गये हैं। इसके बाद दीपदान की दोनों रेखाओं के भीतर दीपशिखा के प्रकाश रूपी अग्नि में जलने वाले फतिगों के रूप या एक दण्ड में साठ पलों के



बोधक अथवा सृष्टि के जीवों के रूप या षष्ठी देवी के यन्त्र के प्रतीक साठ कमल के फूल बनाये गए हैं जिनके ऊपर चारों तरफ के साठ शून्याकार बिन्दु प्रकाश के कणों के रूप अथवा एक पल में साठ विपल के बोधक या सृष्टि के बीज के द्योतक अथवा शुक्र के बिन्दु के प्रतीक बनाए गए हैं। इस अरिपन के सबसे नीचे भाग में काम रूपी वायु से प्रेरित स्त्री रूपी दीप की वासना रूपी शिखा के बोधक प्रतिपल अग्नि के प्रकाश की तरह आगे की ओर बढ़ने वाली उत्तेजना के द्योतक सृष्टि अथवा संहार का बोधक एक मास का प्रतीक दीप का एक लौ कमल की डंठल के रूप में बनाया गया है।

इन सब वर्णनों से पहला तात्पर्य यह निकलता है कि यह अरिपन समय की गणना अर्थात् ६० विपल का १ पल, ६० पल का १ दण्ड, ६० दण्ड का एक दिन और रात तथा ३० दिन रात का एक मास का बोधक बनाया गया है। जिसके बीच ऋतुमती होने के बाद से स्त्री की वासना रूपी अग्नि, काम रूपी वायु के द्वारा प्रज्ज्वलित हो तेल से युक्त दीप शिखा की तरह उद्दीप्त हो प्रकाश के रूप प्रतिपल बढ़ता हुआ उसके समस्त शरीर में व्याप्त कर जाता है और काम रूपी पुरुष से संयोग के बाद जीवात्मा गर्भाशय में अपने शरीर का आकार लेने के लिए धीरे-धीरे पनपने लगती है जिस कारण स्त्री मातृरूप में सृष्टि और पालन की शक्ति रूपा मानी जाती है और दूसरी तरह पुरुष के काम का अपनी वासना के द्वारा संहार अथवा दीप शिखा पर पतंग की तरह अपनी वासना पर मंडराने वाले कामुक पुरुषों के विनाश करने वाली शाक्ति रखने के कारण अथवा वासना से उद्दीप्त होने पर अपने-आप को भी मिटा देने का सामर्थ्य रखने के कारण स्त्रियों में संहार-शक्ति भी मानी जाती है।

इन सब बातों से युक्त यह अरिपन स्त्रियों में निवास करने वाली इन शक्तियों का ज्ञान कराने के लिए ही स्त्रियों के पहली बार ऋतुमती होने पर चौथे दिन स्नान के बाद षष्ठी देवी की पूजा के अवसर पर लिखा जाता है ताकि अबोध लड़कियाँ स्त्रीत्व की शक्ति का दुरुपयोग न करें और संहार-शक्ति का प्रयोग सिर्फ स्त्रीत्व की रक्षा या पातिव्रत धर्म पालन के लिये ही करें। जैसा अद्भुत रामायण में वर्णित श्री जानकी ने अपने पति श्री रामचन्द्र की रक्षा के लिये सहस्रबाहु रावण का संहार कालिका के रूप में संहार-शक्ति बनकर किया था, जिसकी उपमा मिथिला की प्राचीन संस्कृति के रूप में अब भी घर-घर व्याप्त है।



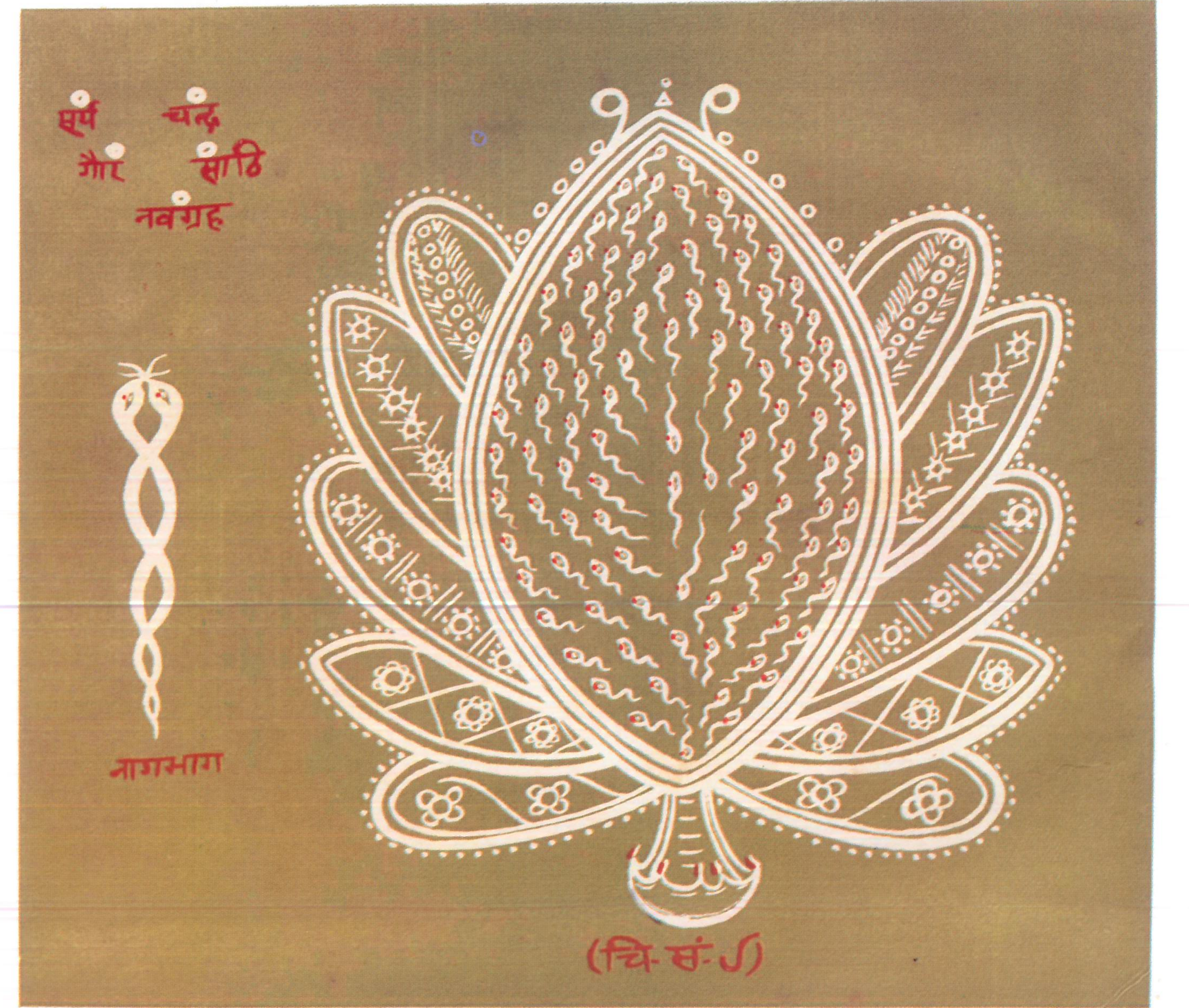
१०

मधुश्रावणी पूजा का अरिपन

(चित्र संख्या ९)

चित्र संख्या ९ का अरिपन 'मधुश्रावणी पूजा', जो मिथिला में नव विवाहित वर-वधुओं के लिए एक प्रसिद्ध त्यौहार माना जाता है, उस समय स्त्रियों के द्वारा लिखने की परिपाटी चली आ रही है। इस अवसर पर पुराणों में वर्णित पाताल लोक के नागों की पूजा होती है। यह श्रावण कृष्ण पञ्चमी, जो नाग पञ्चमी के नाम से प्रसिद्ध है, से प्रारम्भ होकर श्रावण शुक्ल तृतीया तक चलती है। इन दिनों के बीच वधू को नित्य इस अरिपन पर भिन्न-भिन्न नागों की पूजा करनी पड़ती है और प्रत्येक दिन पूजा के समय वधू को वयोवृद्धा स्त्रियों के द्वारा अनेक तरह की कहानियाँ सुनाई जाती हैं, जिनका तात्पर्य सतीधर्म पालन से रहता है। इन कहानियों का आधार भी पौराणिक ही है। इनमें 'मनसा देवी' तथा कई एक नागों की कहानियाँ आजकल चलचित्र के परदे पर भी देखने को मिलती हैं। इस पूजा के अन्तिम दिन वर-वधू को विधिवत् साथ बैठा कर कई तरह की लौकिक विधियों के पश्चात् यह पूजा समाप्त की जाती है।

इस समय लिखा जाने वाला यह अरिपन मैना के दो पत्तों तथा पूजा करने वाली के दोनों तरफ भूमि पर लिखे जाते हैं तथा दोनों तरफ भूमि पर लिखे गए आलेपन पर ही यह पत्ता भी रखा जाता है। जिसमें बायें तरफ वाले पत्ते पर के चित्र के बीच एक सौ एक सर्पिणी के चित्र सिन्दूर तथा काजल से एक अंगुली के सहारे लिखे जाते हैं। जो 'एक सौ एकन्त बहिन' कहलाती हैं और उस पर 'कुसुमावती' नाम की नागिन की प्रधान पूजा होती है। मिथिला में सुहागिनों के लिए काजल और सिन्दूर धारण करना आवश्यक है। इसके बाद दाहिनी तरफ रखे जाने वाले पत्ते पर के चित्र के बीच पिठार से एक सौ एक सर्पों के चित्र भी एक अंगुली के सहारे ही लिखे जाते हैं जो 'एक सौ एकन्त भाई' कहलाते हैं, जिस पर 'वौरस' नाम के नाग की पूजा प्रधान पूजा होती है। इस पूजा में



मघुश्रावणी पूजा का अरिपन



मैना के पत्ते का व्यवहार इसलिए किया जाता है कि पौराणिक कथा में मैना के पत्ते के बीच ही इन सर्पों का पालन होना लिखा गया है तथा इन पत्तों में रासायनिक गुण के रूप वशीकरण शक्ति भी मानी जाती है, इसलिए मिथिला में वर-वधुओं के और भी कई एक सांस्कृतिक विधियों के अवसर पर इन पत्तों का व्यवहार किया जाता है।

इस चित्र की बाँईं तरफ आपस में लिपटे नाग के जोड़े का चित्र लिखा गया है, जो 'नागभाग' कहलाता है।

मैना पत्ते वाले दोनों प्रधान चित्रों के बीच पूजा करने वाली के सामने सूर्य, चन्द्र, गौर, साठि तथा नवग्रह का चित्र भी लिखा जाता है, जिनके चित्र के स्थान पर इस जगह केवल बिन्दु दिए गए हैं; क्योंकि इनका चित्र तथा वर्णन पूर्व ही आ चुका है और दुबारा लिखना पाठकों का समय नष्ट करना है, इसलिए ऊपर कहे गए अन्य चित्रों का ही अरिपन रूप इस जगह चित्रित किया गया है।

इन मैना पत्ते वाले प्रधान अरिपनों में सबसे नीचे भाग में नाग की फणा के रूप वृक्ष की जड़ बनाई गई है तथा बीच वाले पत्ते की दोनों तरफ पाँच-पाँच कर दश पत्तों के चित्र बनाए गये हैं और उस प्रधान पत्ते के ऊपर भाग में दो छोटे-छोटे वृत्तों के आकार के सर्पों के अण्डे की तरह पुष्प बनाए गए हैं, जिससे यह अरिपन मैना के पेड़ का रूप पूर्ण रूप से धारण कर लेता है और मैना के पेड़ पर ही महादेव के द्वारा सर्प के अण्डों को फेंके जाने की कथा पुराणों में वर्णन की गयी हैं। इसीलिए इस पेड़ के प्रधान पत्ते की बगल वाले दश पत्तों के बीच गोलाकार सर्प के अण्डों के रूप पुष्पों के चित्र दिए गये हैं और प्रधान पत्ते के दोनों तरफ ऊपरी भाग में पाँच-पाँच कर दश गोलाकार पुष्पों के रूप बनाए गए हैं जैसे ये पुष्प इस अरिपन पर पूजित देवता के ऊपर चढ़ाये हों तथा अरिपन के चारों तरफवाले बिन्दु सर्पों के भोजन-सामग्री लावा की तरह बनाए गये हैं जैसे नैवेद्य के रूप दिए गये हों।

इस अरिपन के बगल वाला नागभाग का चित्र नाग-नागिन के संयोग के रूप आपस में लिपटा दिखाया गया है जिससे मैना के पेड़ के पत्तों पर वाले अण्डे तथा सर्पों की सृष्टि हुई है।

इससे यह ज्ञात होता है कि इस समय का अरिपन सर्पों से ही व्याप्त बनाया गया है जैसा कि इस नागपूजा के अवसर पर होना स्वाभाविक ही है; क्योंकि किसी की पूजा के समय उसके रूप की प्रधानता देना उसकी अर्चना के बराबर ही है।



इस मधुश्रावणी पूजा के अवसर पर सूर्य, चन्द्र, गौर, साठि तथा नवग्रह का चित्र सृष्टि के प्रभावशाली नक्षत्रों को संतुष्ट कर पूजा के समय आनेवाली नाना तरह की विघ्न-बाधाओं को हटाने की दृष्टि से ही लिखा जाता है।

ये सुन्दर और आकर्षक अरिपन चित्र पूजा के समय लिखने की परिपाटी इसीलिए चली आ रही है जिससे यहाँ की चंचल चित्त बालिकाएँ इनके सुन्दर साकार रूप पर मुग्ध हो अपना चित्त स्थिर कर उन निराकार देवताओं की आराधना ध्यानपूर्वक कर सकें।

बरसात के मौसम में मधुश्रावणी पूजा के अवसर पर नागों की पूजा का यथार्थ तात्पर्य यह है कि सर्पों की आराधना कर तथा लावा-दूध आदि भोग के रूप में दे भोजन करा उन्हें सन्तुष्ट कर दिया जाय, ताकि वे आनन्द से अपने बिलों में जाकर आराम करें और मनुष्यों को सर्पदंश का भय न रहे। इसी तरह जनकल्याण की भावना इस पूजा में छिपी है।

दूसरे दृष्टिकोण से यह मधुश्रावणी पूजा का अरिपन रूपी रेखा चित्र 'एकादश रुद्र' का प्रतीक बनाया गया है जिनकी सत्ता विश्वव्यापी है।

इस रूप में इस पेड़ के ग्यारह पत्ते एकादश रुद्रों के प्रतीक शिवलिंगों के रूप माने गये हैं और सर्प उनके अलङ्कारों के रूप तथा सर्पों के अण्डे उनकी रुद्राक्ष की माला के प्रतीक बनाये गये हैं। इसके बाद प्रधान पत्ते की चारों तरफ की तीन रेखाएँ इनके तीन गुणों के रूप तथा दूसरे पत्तों के ऊपर की चारों तरफ दो दो रेखायें इनके स्थित शिव शक्ति के बोधक दिए गये हैं। इस पेड़ के ऊपर के बिन्दु इनके ऊपर चढ़ाये गए अक्षत तथा शून्याकार पुष्पों के रूप में बने हैं।

इस पेड़ रूपी एकादश रुद्र के बगल वाला 'नागभाग' का चित्र प्रकृति और पुरुष के रूप बनाया गया है तथा सूर्य, चन्द्र, गौर, साठि और नवग्रह के रूप दिये गए पाँच बिन्दु इनकी पञ्चोपचार पूजा के प्रतीक दिए गये हैं।

इस सब के वर्णनों से ज्ञात होता है कि प्रकृति और पुरुष दोनों के द्वारा इन रुद्रों की पञ्चोपचार पूजा की गई है, इसीलिए मिथिला में वधू और वर दोनों को एक साथ बैठाकर इन सब तरहों की पूजा करने की परिपाटी चली आती है और उस समय अरिपन लिखना आवश्यक माना जाता है।

तीसरे दृष्टिकोण से इस अरिपन पर अच्छी तरह ध्यान देने से यह रेखा तथा बिन्दुओं से युक्त चित्र यौगिक क्रियाओं से युक्त मानव का द्योतक बनाया गया है। जिसमें इस अरिपन के बीच



वाला प्रधान सर्प के चित्रों से युक्त, पत्ता का चित्र मानव शरीर का प्रतीक बनाया गया है और इसकी दोनों तरफ वाले दश पत्ते शरीर की दश इन्द्रियों के द्योतक बनाए गए हैं तथा इन पत्तों के बीच दिए गए पुष्पाकार साँपों के अण्डे जो गिनती के नीचे से क्रमबद्ध प्रधान पते के दाहिने तथा बाँयें एक सामने के दो पत्तों के बीच ४, ६, १०, १२ तथा १६ की संख्या में दिए गये हैं और प्रधान पत्ते के ऊपर वाले दो गोलाकार सर्प के अण्डे का चित्र जो २ की संख्या में आते हैं, योग में वर्णित 'सिद्धासन' के षट् चक्रों के प्रतीक बनाए गये हैं क्योंकि षट्चक्र में सबसे नीचे आधार चक्र वाला कमल चतुर्दल उसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र वाला कमल षट्दल उसके ऊपर मणिपूरक चक्र वाला कमल दशदल उसके ऊपर अनन्त चक्र वाला कमल द्वादश दल तथा उसके ऊपर विशुद्धाख्य चक्र वाला कमल षोड़श दल और इसके ऊपर आज्ञा चक्र वाला द्विदल कमल माना गया है जो योग शास्त्र से सिद्ध है। जिसमें सबसे नीचे मूलाधार कहलाने वाले आधार चक्र के चतुर्दल पद्म के मध्य नीचे सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति का सुप्त निवास माना जाता है जो शक्ति इस पेड़ में जड़ के रूप में पञ्चमुखी सर्पाकार बनाया गया है।

इस चित्र के बीच वाले प्रधान पत्ते पर छोटे-छोटे सर्पों के चित्र जिनकी संख्या १०१ है अर्थात् १०० + १ है। इसमें १०० के प्रत्येक अङ्क दश-दश की संख्या के बोधक बनाए गए हैं जिसका संकेत प्रधान पत्ते के ऊपर वाली दोनों तरफ के दश शून्याकार पुष्परूपी बिन्दुओं के चित्र से दिया गया है। इस तरह यह १०० की संख्या दश सौ की संख्या बन जाती है जो १ सहस्र का बोधक है और वही सहस्र में १ की संख्या १०० में १ के रूप में दिया गया है जिससे १०१ सर्पों की संख्या बनी है और मानव शरीर में कपाल के भीतर ब्रह्माण्ड रूपी शून्य चक्र के मध्य योग में सहस्र दल पद्म माना गया है जिसका द्योतक बीच वाले प्रधान पत्ते पर १०१ सर्पों के चित्र बनाये गये हैं।

ये सर्प शून्य चक्र के सहस्र दल पद्म के बोधक हैं जहाँ कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार के चतुर्दल पद्म से प्राणायाम के द्वारा ऊपर लिखे गए षट् चक्रों का भेदन कर ईड़ा, पिंगला के बीच सुषुम्ना नाड़ी के मध्य ब्रह्म नाड़ी के द्वारा शरीर के मेरुदण्ड के ऊपर स्थित सहस्र दल वाला सहस्रार चक्र में जहाँ परमात्मा रूपी परम शिव का निवास माना जाता है परमात्मा से मिलने जाती है और यह परम शिव से कुण्डलिनी शक्ति का संयोग ही लय योग का ध्येय माना जाता है।

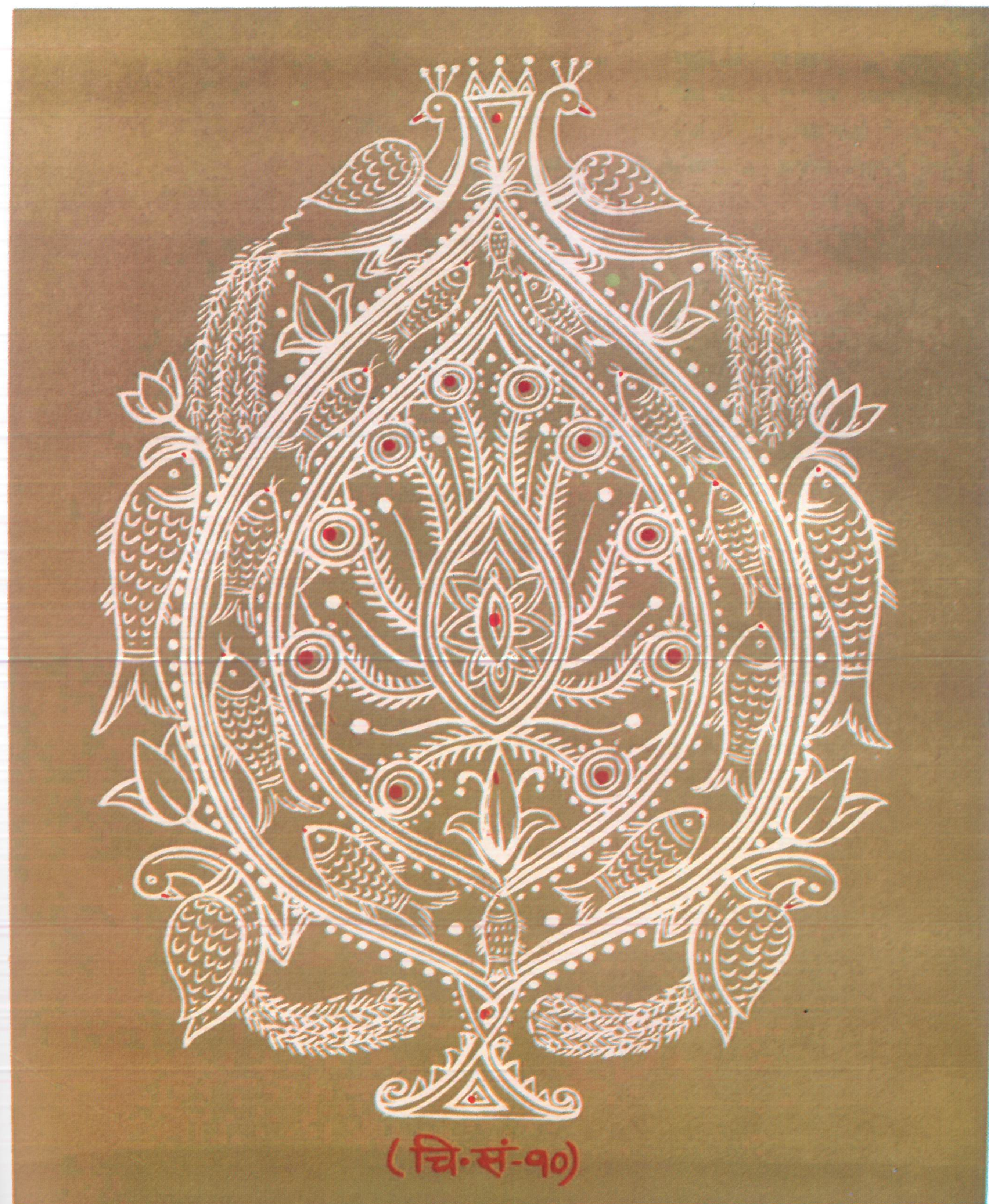
इस अरिपन के बीच वाले पत्ते की चारों तरफ दी गई तीन रेखाएँ इन्हीं ऊपर कहे शरीर के प्रधान ३ नाड़ियों के बोधक हैं तथा इस पत्ते के ठीक ऊपर दिया गया एक छोटा सा त्रिकोण ब्रह्म



रन्ध्र का द्योतक है जिसके ठीक ऊपर का एक शून्य का छोटा सा रूप 'परम शिव' का बोधक दिया गया है।

इस चित्र के बगल वाला 'नागभाग' का संयोगात्मक चित्र कुण्डलिनी तथा परमात्मा के संयोग के रूप का बनाया गया है तथा सूर्य, चन्द्र, गौर, साठि और नवग्रह के चित्र के स्थान दिए गए पाँच बिन्दु पञ्चतत्त्वों के रूप बनाए गए हैं। जिनसे कि मानव शरीर का निर्माण होता है। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि इन अरिपनों के भीतर शास्त्रीय रहस्य छिपे हैं जो मिथिला की प्राचीन संस्कृति के संग चली आ रही हैं।





पुरुषों का दशपात अरिपन



११
पुरुषों का 'दशपात' अरिपन
(चित्र संख्या १०)

चित्र संख्या १० का यह सुन्दर अरिपन चित्र जल के साथ पीसे गए अरवा चावल, जिसे पिठार कहते हैं, को पानी में घोल कर मिथिला की स्त्रियों के द्वारा केवल अङ्गलियों के सहारे गोबर से लिपी भूमि पर पुरुषों के सांस्कृतिक अवसरों पर लिखे जाने की प्रथा चली आ रही है।

इस अरिपन के सबसे ऊपर भाग में दोनों तरफ, भारत खण्ड में शुभप्रद माने जाने वाले गणेश जी के भाई, देवों के सेनापति, कार्तिकेय के वाहन दो मयूरों के बीच पुष्पाकार परमेश्वरी रूपा आदि शक्ति का बिन्दुयुक्त अधोमुख त्रिकोण यन्त्र बनाया गया है जो मातृ शक्ति का बोधक है और जिसके द्वारा सृष्टि होती है। इसके ऊपर फूल के बीच से निकली मंजरियों के रूप ऊपर के तीन बिन्दुओं से युक्त तीन ऊर्ध्वमुख त्रिकोण त्रिमूर्ति के बोधक बनाए गये हैं तथा दोनों मोरों के माथे पर की तीन-तीन रेखाएँ मोर के सिरमौर के अतिरिक्त इन मूर्तियों की त्रिशक्ति के भी बोधक हैं। इस अरिपन के ऊपर बाहर की ओर दोनों तरफ दिये गये सुन्दर, सुकोमल और सुगन्धियुक्त तीन पत्तियों वाले कमल के चित्र त्रिमूर्ति के त्रिगुण के भी बोधक बनाये गये हैं। जैसे ये फूल जगज्जनी के चरणों पर चढ़ाए गए हों। मिथिला में मछलियाँ भी मत्स्यावतार में अवतीर्ण भगवान मत्स्य के प्रतीक ही शुभप्रद होने के कारण इस चित्र में दी गयी हैं। जो अन्य समय में भी शुभ अवसरों पर शकुन के रूप व्यवहार में लाया जाता है।

इस अरिपन में ऊपर के बाहर वाले इन सब चित्रों के भीतर प्रात:, मध्याह्न और संध्या रूपी त्रिकाल की तीन रेखाओं से घिरे तीन आयत वृत्ताकार क्षेत्रों के रूप तीनों लोक का प्रतीक चित्र बनाया गया है। जिसमें सबसे ऊपर वाले क्षेत्र में बारह मछलियों के चित्र बारह राशियों के रूप दिये गए हैं तथा त्रिकाल की तीनों रेखाओं के ऊपर वाले बिन्दु नक्षत्रों के रूप, जिन दोनों का ज्योतिष शास्त्र के द्वारा शुभ विचार कर ही मनुष्यों के किसी भी सांस्कृतिक कार्य का प्रारम्भ करना मिथिला में आवश्यक माना जाता है।



इसके बाद दूसरे क्षेत्र में ताराओं के रूप बिन्दुओं से घिरी दशों दिशाओं के रक्षक दश दिक्पालों के दश पत्तों के रूप वृत्ताकार चित्र पुरुषों के शास्त्रीय दश कर्मों के बोधक बनाये गये हैं जिससे लगे प्रकृति और पुरुष के द्योतक दश रेखाओं से बनी दश डालों के चित्र मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् दश गात्रों के द्योतक बनाए गये हैं जिनका वर्णन 'गरुड़ पुराण' में आया है और जिनके लिए श्राद्ध से पूर्व पिण्ड देना मिथिला में आवश्यक माना गया है।

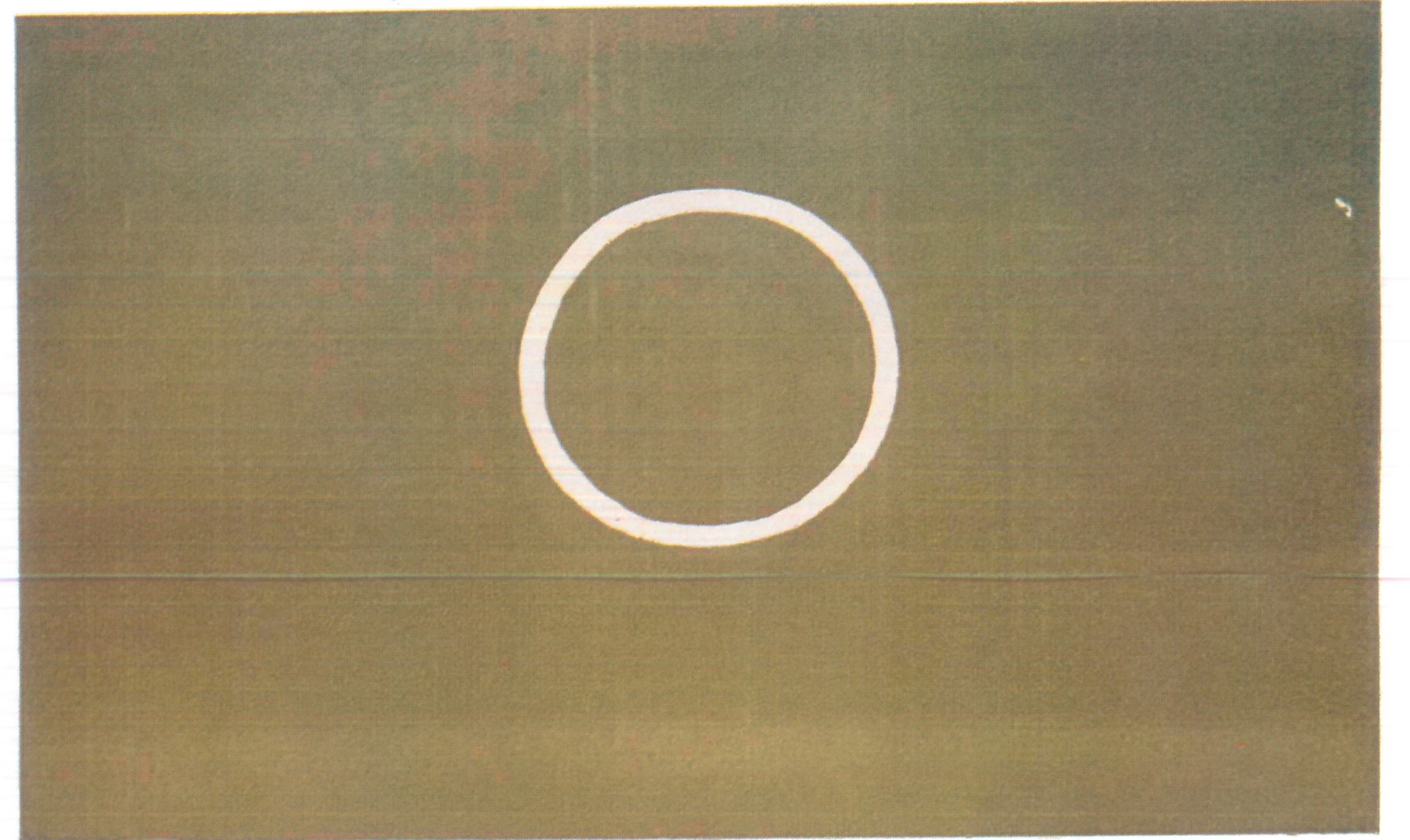
तीसरे क्षेत्र में दिया गया अष्ट पत्तियों वाला कमल का फूल अष्ट सिद्धियों का द्योतक बनाया गया है जिसके द्वारा मनुष्य हर तरह की लौकिक तथा परलौकिक इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है तथा इस फूल के मध्य में दिया गया सिन्दूर का बिन्दु शरीर में निवास करने वाली आत्मा का द्योतक बनाया गया है।

इस अरिपन चित्र के सब से नीचे आदि कूर्म की जगह इन लोकों के आधार रूप त्रिकोणाकार मनुष्य की आत्मशक्ति का चित्र दिया गया है।

यह अरिपन मिथिला में 'पुरुषक दशपात अरिपन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस चित्र का सबसे गूढ़ तात्पर्य यह है कि सृष्टि में मानव शरीर धारण कर मनुष्य आत्म-शक्ति के द्वारा अष्ट सिद्धियों को प्राप्त कर तथा दिक्पालों की तरह अपने कर्त्तव्य की रक्षा पर अटल रह कर मत्स्यों की तरह अपने आगे का मार्ग साफ करता हुआ कमल की सुगन्धि रूपी अपने सुयश का कीर्तिध्वज मयूरों की तरह दशों दिशाओं में उड़ा कर तीनों लोक में सर्वश्रेष्ठ, सृष्टि को धारण करने वाली त्रिमूर्ति का सर्जन करने वाली आदि शक्ति भुवनेश्वरी, जिनका वर्णन देवी भागवत के तृतीय स्कन्ध में किया गया है, उनके चरणों में अपने को लीन कर सकता है।

इन्हीं सब प्रतीक-चित्रों तथा भावार्थों से युक्त रहने के कारण यह अरिपन मिथिला में पुरुषों के प्रत्येक सांस्कृतिक संस्कार के अवसर पर लिखा जाता है जिससे मनुष्य अपने कर्त्तव्यों पर हमेशा ध्यान रख कर्म क्षेत्र में आगे बढ़े। इसका नाम भी शास्त्रीय दशकर्मों के बोधक होने के कारण ही 'दश पात' कहलाता है।





(चि॰ सं॰ ११)

द्वादशाह का अरिपन



१२

द्वादशाह का अरिपन

(चित्र संख्या ११)

चित्र संख्या११ का अरिपन मिथिला में किसी की मृत्यु के पश्चात् उसके श्राद्ध के द्वादशाह कर्म के उपरान्त श्राद्धकर्त्ता अथवा मृत व्यक्ति के लड़कों के 'चुमाओन' के समय उसके आँगन में कुलदेवता के घर के आगे दक्षिण तरफ लिखने की परिपाटी चली आ रही है जो बायें हाथ से केवल एक अंगुली के सहारे ही लिखा जाता है, जिसमें बिन्दु तथा सिन्दूर का लगाना निषिद्ध है। यह चुमाओन की प्रथा किसी शुभ अथवा अशुभ सांस्कृतिक कार्य के पश्चात् उस कार्य के सम्पादन करने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को गुरुजनों के द्वारा आशीष देने की प्रथा को कहते हैं जो दूर्वादल तथा अक्षत के द्वारा एक निश्चित मन्त्रोच्चारण के संग दी जाती है। चुमाओन के बाद उसी समय जब कर्त्ता अपने कुलदेवता को प्रणाम करने के लिए गोसाउनि घर में प्रवेश करता है तो शीघ्रता से यह अरिपन लीप कर मिटा दिया जाता है ताकि कर्त्ता की दृष्टि फिर उस पर न पड़ सके जबकि वह लौट कर बाहर आये।

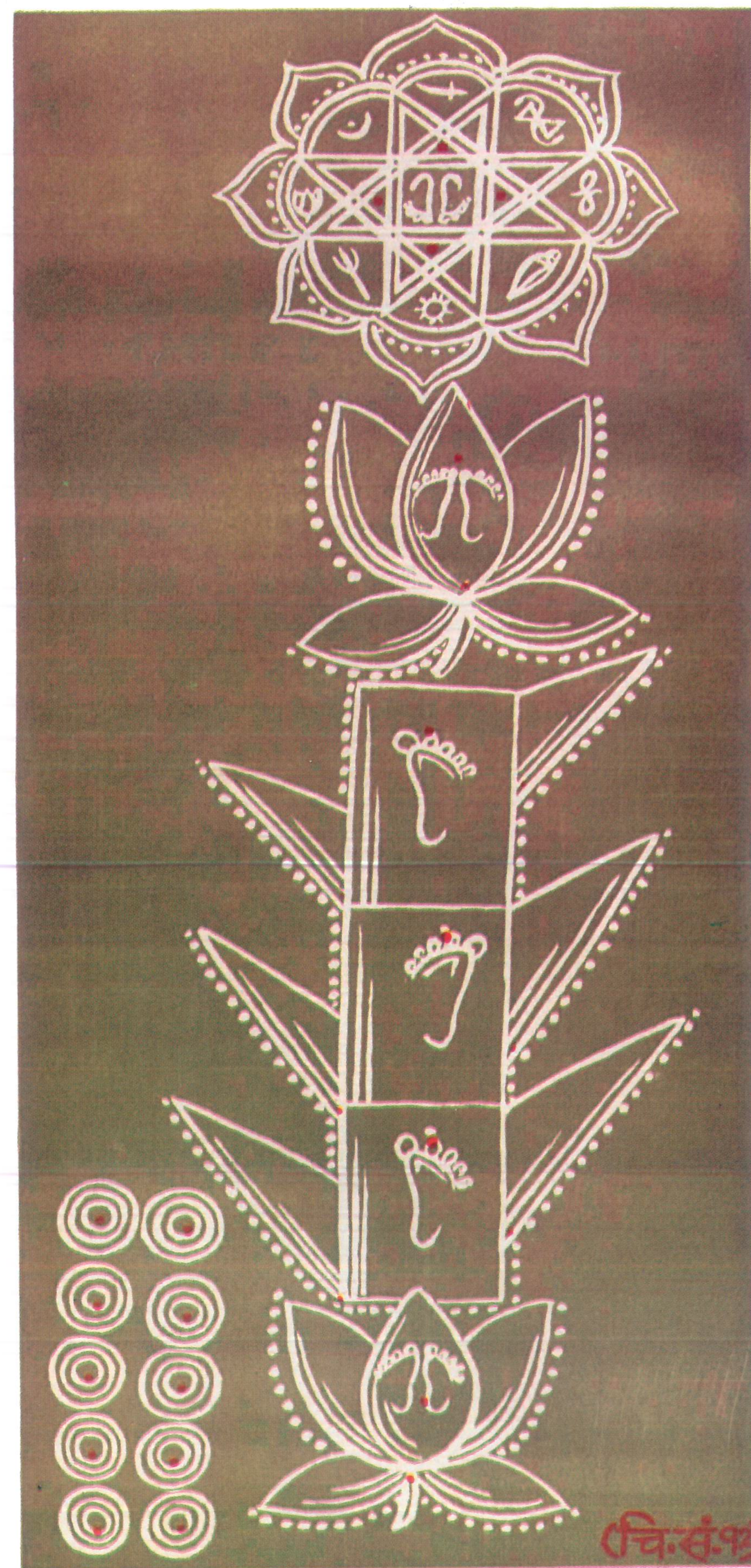
यह अरिपन चित्र पृथिवी के रूप गोलाकार वृत्त की तरह बनाया गया है जो सृष्टि को धारण करने वाली है। यह गोलाकार वृत्त शून्य का बोधक है जिसे परब्रह्म परमात्मा का रूप मानते हैं। इसी से सृष्टि की उत्पत्ति तथा इसी में विलीन होना महर्षियों तथा विद्वानों ने माना है। पृथिवी पर होने वाली सृष्टि उसी से निकलती है और उसी में लुप्त होकर विलीन हो जाती है जैसे चलचित्र के पर्दे पर अन्धकार में प्रकाश से बने हजारों तरह चलते-फिरते चित्र देखने को मिलते हैं और पूर्ण प्रकाश होने पर सब लुप्त होकर उसी में समा जाते हैं। इसलिए यह जगत् मिथ्या माना जाता है; क्योंकि यहाँ किसी का भी सत्य रूप नहीं है, जो कुछ है परब्रह्म की छाया के रूप है, जैसे जल से भरे हजारों घड़ों में एक ही सूर्य के हजारों प्रकाश देखने को मिलते हैं, परन्तु घड़ों के टूट जाने पर एक के अतिरिक्त दूसरा सूर्य दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी तरह परमात्मा का एक ही रूप है जो शून्य है, क्योंकि पंचतत्त्वों से बना यह शरीर प्राणवायु रूपी आत्मा के हट जाने से मृत्यु के पश्चात् पंचतत्त्व



में मिल जाता है और वह परमात्मा का प्रतीक आत्मा से युक्त शरीर की जगह शून्य शेष रह जाता है। इसीलिए शून्य परमात्मा का रूप माना गया है और उसी शून्य को साकार रूप देकर ऋषियों ने वहाँ तक पहुँचने के लिए भिन्न-भिन्न शास्त्रों का निर्माण कर रास्ता बताया है। जैसे एक घर के भीतर पहुँचने का भिन्न-भिन्न मार्ग रहता है, किन्तु उसमें प्रवेश कर वहाँ तक पहुँचने वाले का लक्ष्य एक ही स्थान 'घर' रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक धर्मरूपी मार्ग का लक्ष्य उसी निराकार शून्य तक पहुँचना कहा गया है।

वह शून्य कभी-कभी साकार रूप धारण कर अपने मनोरंजन के लिए सृष्टि रूपी नाटक की रचना करता है और इस खेल में पात्रों के रूप अपने शून्य के कणों को आत्माओं के रूप पृथिवीरूपी रंगमंच पर अभिनय के भिन्न-भिन्न पात्रों की तरह अनेक रूप में शरीर धारण कर कथानकरूपी अपने कर्त्तव्य से कर्मरूपी अपने-अपने अभिनय की सफलता दिखाने के लिए भेजता है तो तरह-तरह का शरीर-रूप धारण कर अपना-अपना कर्तव्य कर कर्मानुसार फल भोग करता है, जैसे अभिनय के पात्र अपने वस्त्र को समय-समय पर बदलते रहते हैं, और कोई कर्म-फल भोगना शेष न रहने पर उसी तरह वे शून्यता को प्राप्त करते हैं जैसे नाटक का अभिनय-कार्य समाप्त होने पर अभिनय के पात्र अपने-अपने निवास-स्थान को पहुँच जाते हैं और इसे ही शास्त्रों ने आत्मा की मुक्ति बतलाया है। इन्हीं सब बातों का संकेत, सृष्टिरूपी बिन्दुओं से अलग इस अरिपन के द्वारा अपने स्वजन की मृत्यु से शोकाकुल चित्त उन परमात्मा के प्रतीकों के रूप आत्मा से युक्त व्यक्तियों को देने के निमित्त यह चित्र लिखने की मिथिला में परिपाटी चली आयी है, जिससे कि उन व्यक्तियों को इस नश्वर शरीर और आत्मा के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कराने वाली दिव्य चक्षु जो शोकरूपी माया के अन्धकार में धुंधली पड़, अज्ञान में परिणत हो गयी है, फिर से ज्ञानरूपी प्रकाश प्राप्त करे, जिससे उनके शोकाकुल चित्त को शान्ति मिले और उन व्यक्तियों के कुलदेवता के घर में प्रवेश करते ही इस अरिपन को लीप कर मिटा देने का तात्पर्य यह रहता है कि उन व्यक्तियों की दृष्टि से ऊपर दी गयी सब बातें हट जाएं, ताकि फिर से वे अपने सांसारिक कर्त्तव्यों में लग जायें जिससे कि परमेश्वर की सृष्टि में कर्त्तव्यरूपी विधान चलता रहे; ताकि मनुष्य अपना कर्म-फल भोग सके।





गवहा संक्रान्ति का अरिपन



१3
गवहा संक्रान्ति का अरिपन
(चित्र संख्या १२)

चित्र संख्या १२ का अरिपन कार्तिक महीने की तुलाराशि की संक्रान्ति के दिन, जो मिथिला में 'गवहा संक्रान्ति' के नाम से प्रसिद्ध है, लिखने की व्यवस्था परम्परा से चली आ रही है।

यह लम्बाकार चित्र कुलदेवता के घर के बरामदे की सीढ़ी के नजदीक से लेकर कुलदेवता (गोसाउनि) के पीठ तक, जो शास्त्रानुसार अनेक तीर्थस्थानों की मिट्टी को इकट्ठा कर शास्त्रीय वचन के अनुसार विधिपूर्वक बनाया गया रहता है, लिखा जाता है।

इस अरिपन में दिए गए सबसे नीचेवाला कमल का फूल सीढ़ी से ऊपर बरामदे के किनारे पर लिखा जाता है। उसके बाद घर की ओर कोपल के छः छिलकों से युक्त तीन पोरोंवाले बाँस का चित्र लिखा जाता है, जैसा कि इस अरिपन में दिखाया गया है। देहली पर कमल का फूल तथा इसके बाद घर में फिर बाँस का चित्र। यही क्रम पीठ तक चलता है और गोसाउनि के पीठ के नजदीक उसके नीचे इस चित्र में सबसे ऊपर दिया गया अष्टकोण यन्त्र से युक्त अष्टदल अरिपन, जिसका शुद्ध रूप और वर्णन आगे के अष्टदल अरिपन के चित्र में किया जायगा, लिखा जाता है तथा पीठ पर षट्दल अरिपन जो खासकर शक्ति का अरिपन माना जाता है, लिखा जाता है, जिसका चित्र और वर्णन आगे के षट्दल अरिपन में दिया जायेगा।

इन कमल के चित्रों के बीच दो-दो पदचिह्न ऊपर की ओर और अष्टकोण तथा षट्कोण यन्त्रवाले अरिपन के बीच के दोनों पदचिह्न नीचे की ओर लिखे जाते हैं। और, बाँस के तीनों पोरों में केवल एक-एक पदचिह्न ऊपर की ओर दिया जाता है। इस अरिपन को देवता के घर आने के समय अगवानी के रूप में लिखते हैं जो प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही लिखा जाता और गोसाउनि घर होने के समय तक किसी के द्वारा लाँघे जाने से वर्जित रखा जाता है।



मिथिला के लोगों में ऐसी भावना है कि खास-खास पर्व के दिनों में शिवरूपी भगवान शक्तिरूपा भगवती से जो मिथिला में कुलदेवता के रूप में मानी जाती है- उनसे मिलने आया करते हैं और इसीलिए इस अरिपन का दूसरा तात्पर्य यह भी है कि लक्ष्मीरूपी भगवती का प्रतीक पञ्चोपचार पूजा के द्योतक पाँच पत्तियोंवाला कमल जिसकी पत्तियों और डण्ठल में दिए गये षोडशोपचार पूजा के प्रतीक सोलह रेखाओं से युक्त भगवान की अगवानी के लिए कमल की पत्तियों के ऊपर दिए गए दस-दस बिन्दुओं के रूप अपनी दस शक्तियों के प्रतीक दस महाविद्याओं के संग आगे सीढ़ी के नजदीक आयी है जिससे कि रास्ते से ही मेहमान रूपी भगवान को सम्मान पुरस्सर अपने संग ले जाएँ और इसीलिए अपने घर आनेवाले मेहमानों को आगे से सम्मान सहित अगवानी करने की प्रथा भारत खण्ड में प्रचलित है जैसे अयोध्या के राजा भरत ने अपने भाई रामचन्द्र को अयोध्या नगरी की सीमा से ही अपने परिजनों के साथ अगवानी की थी जिसका वर्णन तुलसीकृत और वाल्मीकीय रामायण में आया है। इस कमल के बीच लक्ष्मी के हृदयरूपी कमल में भगवान के निवास के रूप उनका प्रतीक उनके दोनों पदचिह्न दिये गये हैं, जिसका अर्थ यह है कि लक्ष्मी के हृदय में अपने स्वामी के चरणों का ही निवास है (इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस तरह चञ्चला लक्ष्मी के हृदय में अपने स्वामी का निवास है) उसी तरह प्रत्येक चञ्चल चित्त नारी को अपने हृदय में अपने स्वामी के चरणों को ही स्थान देना चाहिये।

इस कमल के चित्र के बाद ऊपर बाँस के पोरों का चित्र अपने घर में वंशवृद्धि का द्योतक बनाया गया है जिसका पूर्ण विवरण आगे 'बाँस' के रंगीन भित्ति-चित्र में दिया जायेगा। यह चित्र तीन लोकों के प्रतीक बाँस के तीन पोरों का त्रिगुण रूपी तीन रेखाओं से युक्त तथा बाहर के षट्शास्त्रों के प्रतीक छ: छिलकों से युक्त दिया गया है जिसके बीच अट्ठारह पुराणों के प्रतीक तीन-तीन कर छ: छिलकों के भीतर की अट्ठारह रेखाएँ और सृष्टि के रूप ऊपर के बिन्दु दिये गये हैं। बाँस के तीनों पोरों के बीच दिए गए तीन पद-चिह्न पाताल के राजा बलि के बन्धन के समय दिये गये भगवान के तीनों लोक में तीन पद-चिह्नों के प्रतीक बनाए गए हैं जिसके तलवों के भीतर की दो-दो रेखायें प्रकृति और पुरूष के रूप तथा पाँच-पाँच अङगुलियाँ पञ्चतत्वों के रूप बनाए गए हैं। इसके आगे ऊपरवाला दूसरा कमल भगवान विष्णु का प्रतीक स्वरूप दिया गया है, जिनके हृदय में अपने भक्तों का निवास रहता है और जो पाँच पत्तियों के रूप पञ्च-देवताओं के बीच बिन्दु रूपी दश दिक्पालों से घिरे हैं और ऊपरवाले बलि राजा के भवन के द्योतक अष्टदल के प्रतीक चित्र के सामने स्थित हैं। यह अष्टदल का प्रतीक चित्र, बीच के त्रिलोक विजयी सत्य और दान रूपी दो चरणों पर खड़ा मदान्ध राजाबलि के प्रतीक दो पद-चिह्नों से युक्त प्रकृति और पुरुष रूपी दो



रेखाओं से बनी अष्ट सिद्धियों के प्रतीक अष्टकोण चित्र रूपी भवन के बीच चार वेदों के रूप चार रक्त-बिन्दुओं से घिरे तथा भवन के रक्षकों के प्रतीक चारों तरफ के आठ अस्त्रों के मध्य पाताल-लोक के रक्षक सैनिक रूपी सृष्टि के बिन्दुओं से आबृत पाताललोक के निवासी अष्टनागों के रूप कमल की आठ पत्तियों के बीच बनाया गया है।

इन सब चित्रों से युक्त इस लम्बाकार अरिपन के अध्ययन से यह तात्पर्य निकलता है कि लक्ष्मी रूपी शक्ति के आवाहन पर भगवान विष्णु ने सत्य और दान के बल पर खड़ा त्रिलोक विजयी मदान्ध राजा बलि का मद भंग करने के लिए दान में प्रतिश्रुत अपने तीन पग में अतिक्रमण कर, तीनों लोक पर अधिकार कर लिया और धर्म की रक्षा के लिए धर्म हीन दैत्य रूपी बलि के द्वार पर उसके सत्य और दान के कारण भक्ति भाव से प्रेरित हो द्वारपाल का रूप धारण किया। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य को सदा मद से रहित हो धर्म पर आरूढ़ रह सत्य और दान रूपी कर्त्तव्य पर दृढ़ रहना चाहिए जिससे कि भक्ति-भाव से प्रेरित हो भगवान् के संग तीनों लोक स्वयं आज्ञाकारी दास बन जाएँ जिससे उस की सभी कामनाएँ सिद्ध होगीं।

इस प्रधान अरिपन की दाहिनी तरफ दो पंक्तियों में पाँच-पाँच कर दश गोलाकार चित्र बीच के सिन्दूर बिन्दु से युक्त बनाये गये हैं। ये अरिपन इसी संक्रान्ति के दिन सूर्योदय के पाश्चात् स्त्रियों के द्वारा तीन अङगुलियाँ के सहारे आंगन में लिखे जाते हैं और इन सब के ऊपर कुमारी कन्या के द्वारा विधि-पूर्वक उसकी आराधना कर गोबर के कण्डे ठोक कर बनाये जाते हैं जिससे नवान्नकृत्य के दिन हवन की अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। इसी दिन से मिथिला में चतुर्मास्य के बाद कण्डे बनाना प्रारम्भ किया जाता है।

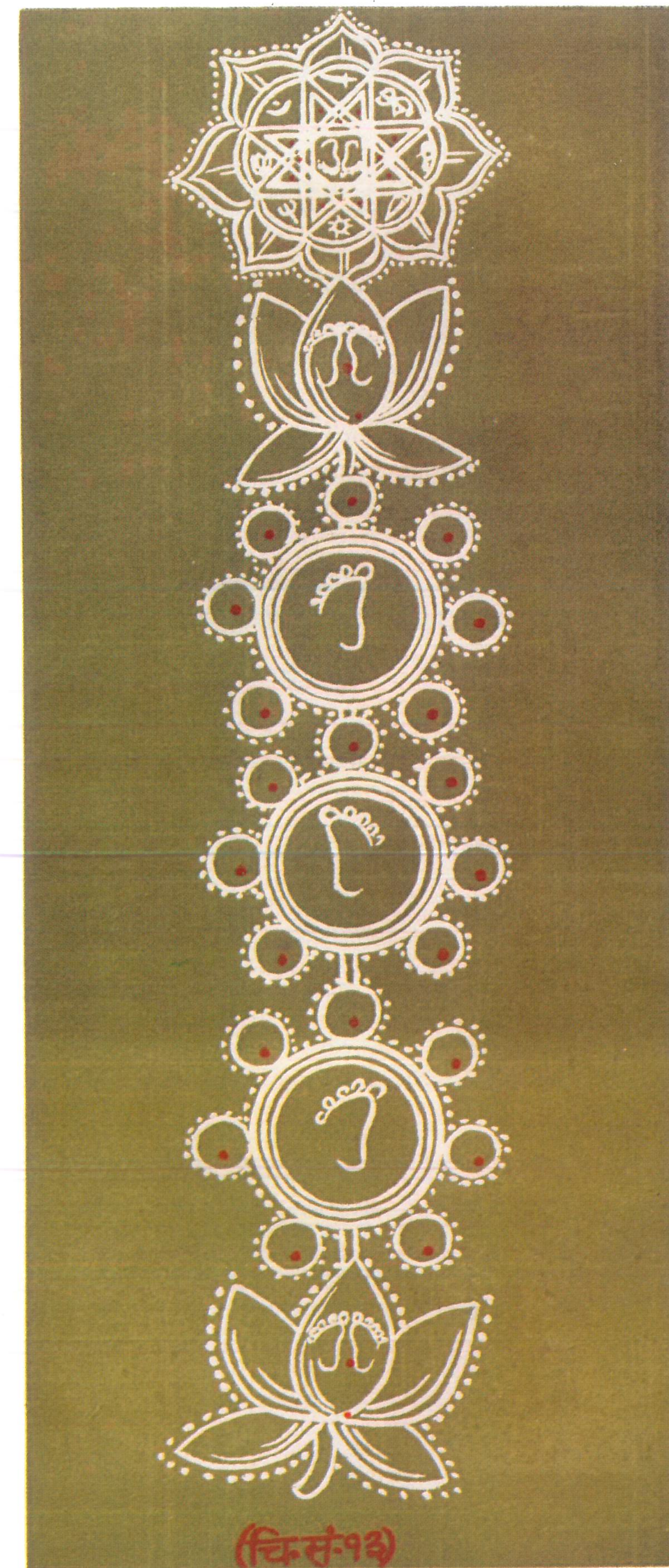
यह दश गोलाकार चित्र जन्म, जीवन और मरण रूपी त्रिकाल की तीन रेखाओं से आवृत प्रकृति शक्तिरूपी बीच के रक्त बिन्दुओं से युक्त पुरुषों के दश कर्मों के बोधक बनाए गए हैं जिससे कि पुरुष हमेशा अपने काल का ध्यान रख कर्त्तव्य रूपी अपने कर्मों को न भूले; इसीलिए ये चित्र सबों के दृष्टि-पथ पर आँगन में लिखे जाते हैं। और, कुमारियों के द्वारा कण्डे बनवाने का तात्पर्य यह है कि विवाह के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर इन कन्याओं को निम्न तथा घृणित कार्य करने में भी हिचक न हो क्योंकि गृहस्थजीवन में बहुत से ऐसे कार्य भी स्त्रियों को करने पड़ते हैं जिससे मनुष्य स्वभावत: घृणा करता है जैसे लकड़ी के अभाव में जलावन के लिए गोबर को मथ कर कण्डे बनाना, मातृरूप में बच्चों के लालन-पालन के समय उनका मल-मूत्र धोना आदि। ऐसी शिक्षा देने के लिए विवाह से पूर्व इन लड़कियों से मैथिल संस्कृति में ऐसे कार्य करवाये जाते हैं



ताकि अग्रिम जीवन-पथ पर चलने के समय इन्हें किसी प्रकार के दु:ख का अनुभव न हो और अपने कर्त्तव्य को उचित रूप से पालन कर सकें।

यह तीन रेखाओं से आवृत्त गोलाकार अरिपन अन्य अनेक अवसरों पर भी व्यवहार में लाया जाता है, यथा 'चौठचन्द्र' जो भाद्र शुक्ल चतुर्थी को सायंकाल विधिपूर्वक चन्द्रमा की पूजा कर तथा अनेक प्रकार के पकवान, दही, केले का भोग लगा, बड़े समारोह के साथ मिथिला में त्यौहार के रूप में मनाया जाता है, के समय दीपयुक्त लाबन (मिट्टी का बना दीपाधार) के रखने के स्थान पर अथवा कलस के नीचे। इसके अलावा 'छठ' के त्यौहार में अर्घ्य के समय रखे गए कलसयुक्त मिट्टी के हाथी के नीचे आदि। इन अवसरों में इस अरिपन की तीनों वृत्ताकार रेखायें, त्रिगुण के द्योतक माने जाते हैं।





कोजागरा का अरिपन



१४
कोजागरा का अरिपन

(चित्र संख्या १३)

चित्र संख्या१३ का अरिपन 'कोजागरा पर्व' के दिन 'गोसाउनि घर' के अवसर पर प्रदोष समय लक्ष्मी के अगवानी के निमित्त लिखे जाने की परिपाटी चली आ रही है जिनकी विशिष्ट रूप से पूजा करना उस सन्ध्या को मिथिला में अत्यावश्यक माना जाता है। यह गोसाउनि घर करने की प्रथा मिथिला में खास-खास पर्वो के अवसरों पर चली आ रही है जिस दिन गोसाउनि घर की सीढ़ी के नजदीक से गोसाउनि की पीठ तक इस प्रकार के लम्बाकार अरिपन चित्र लिखे जाते हैं। इस समय प्रात: या सन्ध्याकाल में घर की कुल श्रेष्ठ गृहिणी आँगन के द्वार पर उस दिन पूजित होने वाले देवता की अगवानी के निमित्त धूपदान में धूप देती हुई आती हैं और उनके प्रवेश का ध्यान करती हुई कुलदेवता के पीठ तक वापस जाकर धूपदान रख उनके आगमन का विश्वास कर लेती है, जिसमें विश्वास की भावना निहित है।

यह कोजागरा पर्व शास्त्र के 'को जागर्त्ति महीतले' इस पंक्ति के अनुसार ही मिथिला में आश्विनी पूर्णिमा की रात्रि को मनाया जाता है। सन्ध्या समय विधि-पूर्वक लक्ष्मी की पूजा कर तथा मखाने का प्रसाद भोग लगा रात भर जागरण कर चन्द्रज्योत्स्ना का आनन्द प्राप्त किया जाता है। यह रात्रि बहुत ही लुभावनी मालूम पड़ती है क्योंकि इस समय पावस का अन्त और शरद् ऋतु का प्रारम्भ रहने के कारण न विशेष गर्मी न विशेष ठण्ड ही पड़ती है, इसीलिए शास्त्र में ऋषियों ने उस रात जागरण कर पूर्ण चन्द्र की चन्द्रिका का आनन्द प्राप्त करने के लिए कहा है क्योंकि चाँदनी में अमृत का अंश माना जाता है।

इस पूजा से पूर्व इस घर के प्रधान द्वार पर चित्रित होने वाले इस लम्बाकार अरिपन पर होकर देवता के घर में प्रवेश करने की भावना निहित है इसीलिए इस चित्र के सब से नीचे वाले कमल के बीच दो पद चिह्न प्रवेश के समय और उसके बाद का एक-एक पद चिह्न आगे घर की



ओर बढ़ने के भाव से दिया जाता है। फिर पीठ के नजदीक ऊपरवाले कमल पर रुकने के भाव से दो पद चिह्न इसके बाद अष्टदल पर जा साधक की ओर घूम कर खड़े होने की भावना से दोनों पद चिह्न नीचे की ओर घूमे चित्रित किया जाता है। इस लम्बाकार अरिपन में पूर्व वर्णित ऊपर तथा नीचे वाले दो कमलों के बीच चित्रित किया गया तीन गोलाकार चित्र का वर्णन इस तरह है।

यह चित्र तीन शून्याकार वृत्त के रूप दोनों तरफ सूर्य तथा चन्द्रमण्डल से युक्त पृथिवी का बोधक अथवा तीन महारात्रियों के द्योतक तीन मखाने के पत्तों के रूप में देवता की अगवानी के निमित्त लिखा गया है । जिनके चारों तरफ की तीन–तीन वृत्ताकार रेखाएँ परब्रह्म परमात्मा की त्रिशक्ति से युक्त सूर्य, चन्द्र तथा पृथिवी का बोधक या सन्ध्या, मध्य रात्रि तथा प्रभात से युक्त महारात्रि, कालरात्रि और मोह-रात्रि का प्रतीक अथवा रज, सत्त्व तथा तम तीन गुणों से युक्त मखाने के पत्तों के रूप बनाए गए हैं। इसकी चारों तरफ प्रकाश कणों के बोधक या सृष्टि के रूप अथवा तारा मण्डल की तरह या मखाने के पत्तों के काँटे के रूप बिन्दु दिये गये हैं। जिन पत्तों के चारों तरफ सात-सात गोलाकार चित्र ऊपर के प्रकाश कण रूपी बिन्दुओं से घिरे सात दिवस-निशा के बोधक अथवा सृष्टि के बिन्दु से घिरे सप्त द्वीपों के द्योतक अथवा पाप रूपी तीक्ष्ण काँटों से युक्त मखाने की सात पूड़ाओं के रूप बनाये गये हैं। जिसमें पत्तों के बीचवाले पद चिह्न सूर्य, चन्द्र तथा पृथिवी की आत्मा के रूप महारात्रियों की भगवती का प्रतीक पत्तों में प्राण के रूप दिये गये हैं और उसकी पाँच अंगुलियाँ पंच तत्त्वों के प्रतीक पंच कन्याओं के द्योतक पंच गंगाओं के बोधक बनाये गये हैं तथा इन मखाने की पूड़ाओं के बीच के सिन्दूर के रक्त बिन्दु प्रकृति की शक्ति के रूप पूड़ाओं के भीतर रहनेवाले मखाने के फलों के रूप बनाये गये हैं।

देवता की अगवानी के लिए उनके पथ पर काँटों से युक्त पूड़ाओं के सहित जल में उत्पन्न होने वाले मखाने के पत्तों के चित्र लिखने के तात्पर्य यह है कि मखाना, चतुर्मास्या जो धर्म मास के नाम से प्रसिद्ध है, के भीतर जल के अन्दर उत्पन्न होनेवाला मिथिला का एक उत्तम और वर्ष का सबसे नवीन फल माना जाता है जो स्वर्ग में भी उपलब्ध नहीं होता जिसके कारण स्वर्गवासी पितरों के श्राद्ध, पार्वण आदि कर्मों के समय यह देना आवश्यक माना जाता है। यह खास कर मिथिला की ही उपज है। जो मिथिला भ्रमण करने वाले बाहर के अतिथियों को भी सौगात के रूप यहाँ दिया जाता है। काँटों से युक्त पूड़ाओं के भीतर उपजने वाला यह सुस्वादु मखाना स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त त्रिगुणों से भी युक्त माना जाता है क्योंकि इसकी पूड़ाओं के भीतर मखाने के फल के सब से ऊपरवाली त्वचा का लाल रंग ब्रह्मा का प्रतीक है, उसके भीतर की कठोर त्वचा का काला रंग शालग्राम के रूप विष्णु का बोधक है तथा उसके भीतर का गुद्दा जो मखाने का रूप धारण करता है



श्वेत रंग का है जो महादेव के रंग का बोधक है। अर्थात् यह मखाना इनके तीन गुणों से युक्त है। इन्हीं सब कारणों से अपने अतिथि रूपी देवी लक्ष्मी की अगवानी के समय मखाने का पत्ता जिससे मखाने की उत्पत्ति होती है, मखाने की पूड़ाओं के संग उसके प्रतीक अरिपन चित्र के रूप आदरणीय देवता के मार्ग में उनके स्वागतार्थ लिखा जाता है। जैसे अपना हृदय अर्पण किया जाता है। और अच्छे फल प्राप्ति की कामना से मखाने का फोका भोग में प्रसाद के रूप में दिया जाता है, ताकि लक्ष्मी प्रसन्न हो, धन धान्य से पूर्ण कर दें और पूर्णिमा की रात की तरह जीवन के दिन को आनन्दपूर्वक बितावें, जिनसे पृथिवी पर नवद्वीप रूपी गृहस्थाश्रम की सृष्टि में कमल के रूप सुन्दर सुबाहु तथा सुबुद्धि युक्त सन्तानों को प्राप्त कर जीवन में जुगनू रूपी रात-दिन के माया रूपी अन्धकार के बीच तारिकाओं के रूप प्रकाश पाऊं, जिससे अपनी आत्मा को शान्ति मिले और कण्टक रूपी पापों से युक्त इस पत्ते रूपी पृथिवी पर भगवती की आराधना कर आत्मशक्ति के द्वारा सूर्य की तरह तेज वाले, चन्द्रमा की तरह गोलाकार वाले, शून्य रूपी परमेश्वर में लीन हो मखाने के फल के रूप कण्टकाकीर्ण पथ के भीतर निवास करनेवाली मुक्ति रूपी फल प्राप्त करूँ, जिससे पंचतत्त्व से बने इस मानव शरीर के भीतर के प्राण निश्चिन्त हो अमरत्व को प्राप्त करें।

इन्हीं सब तात्पर्यों से मिथिला में स्त्रियों के द्वारा मैथिल शैली का यह अरिपन चित्र लिखने की प्रथा चली आयी है।

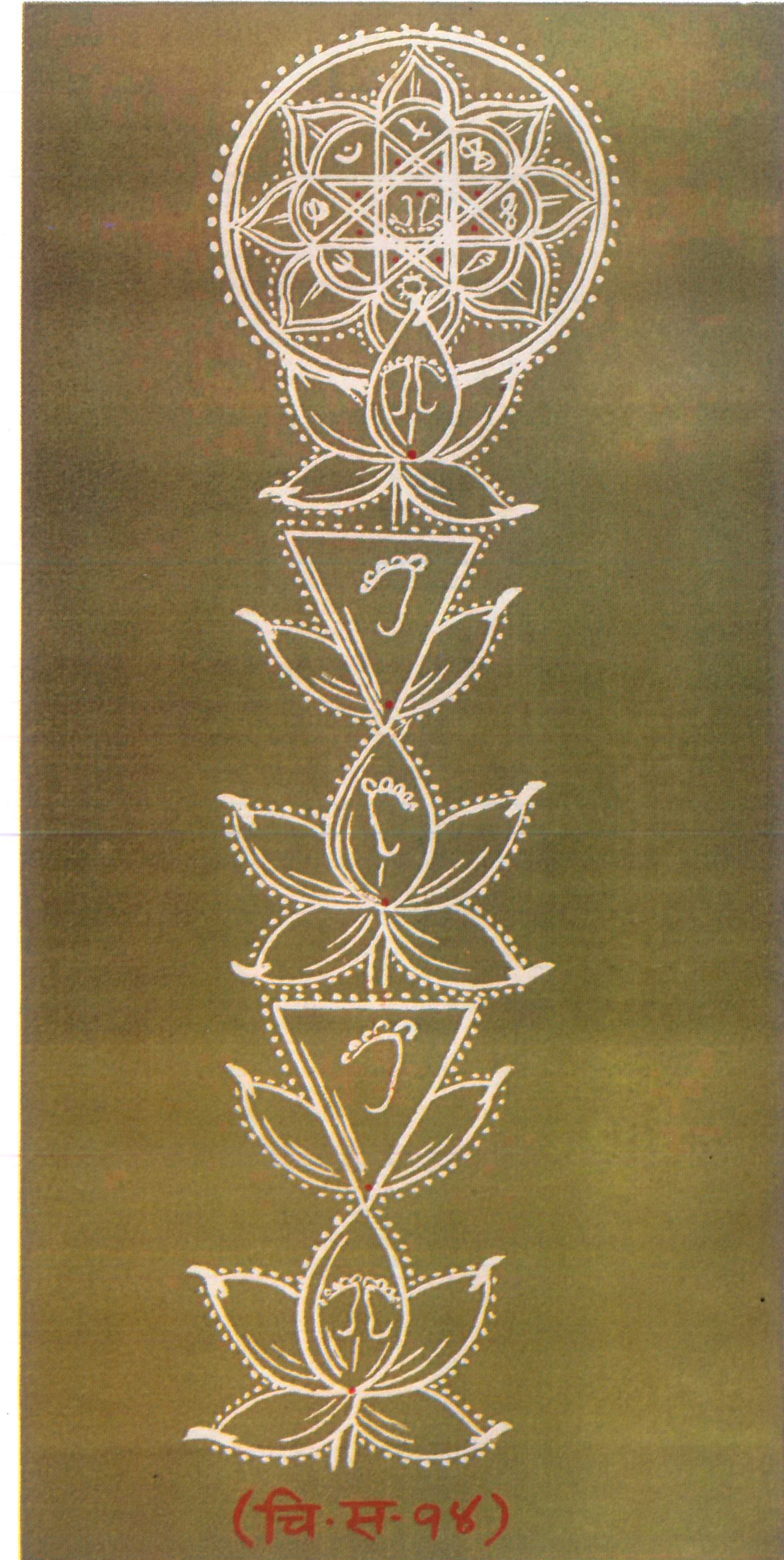




१५
सुखरात्रि का अरिपन
(चित्र संख्या १४)

चित्र संख्या १४ का चित्र दीवाली की पूजा के अवसर पर वहाँ की स्त्रियों के द्वारा अरिपन के रूप लिखा जाता है। जिसे 'सुख रात्रिक अरिपन' कहते हैं। यह दीवाली की रात ही मिथिला में 'सुख रात्रि' के नाम से प्रसिद्ध है। और यह दीवाली जिसे दीपावली भी कहते हैं, का त्यौहार समस्त भारत में प्रसिद्ध है। इस अवसर पर यहाँ के सभी अमीर से गरीब आनन्दमग्न रहते हैं। भारतीय संस्कृति को माननेवाले का घर दीपमाला की दीप शिखाओं के प्रकाश से जगमगा उठता है और आबाल वृद्ध का हृदय आतिशबाजी की चमक में आनन्द से नाचने लगता है। इस समय समस्त भारत उत्साह के सागर की तरंगों में डुबकियाँ लगा तैरता हुआ मालूम पड़ता है। भारत का यह त्यौहार कार्तिक की अमावस्या के दिन रात्रि को मनाया जाता है। मिथिला में इसे शास्त्र के तीन महारात्रियों में कालरात्रि के रूप में मनाते हैं। यह रात्रि सचमुच ही सृष्टि के कीटाणुओं के रूप फतिंगों के लिए कालरात्रि ही बनकर आती है क्योंकि उस रात अरबों की संख्या में ये निरीह कीटाणु दीप शिखाओं के प्रकाश की चमक पर आकृष्ट हो अपने प्राण विसर्जन करते हैं। वे क्षुद्र जीव यह नहीं जानते कि यह प्रकाशरूपी चमक हमारा काल बनकर आयी है जो हमें जलाकर राख कर देगी। ठीक उसी प्रकार जैसे कोई नारी धन के लोभ में पड़ अपना सतीत्व नष्ट करते समय यही नहीं जानती कि मेरे स्त्रीत्व की मृत्यु होने जा रही है और जीवन भर मुझे पश्चात्ताप की आग में जलते रहना पड़ेगा।

इस रात बड़े समारोह के साथ विधिपूर्वक लक्ष्मी की पूजा करने की मिथिला में परिपाटी चली आ रही है जो गोसाउनि के घर में सम्पादित की जाती है। इस पूजा के समय बीचघर में प्रधान द्वार के सामने काठ की चौकी अथवा पीढ़े के ऊपर अष्टदल अरिपन, जिसका पृथक् रूप में आगे वर्णन किया जायगा और जो शिव अथवा शक्ति दोनों के लिये मिथिला में व्यवहार किया जाता है,



सुख रात्रि का अरिपन



लिखकर चारों तरफ लौ के प्रकाश से जगमगाते दीपों को माला की तरह रखते हैं। उसके बीच लक्ष्मी के प्रतीक धान से भरा 'तामा' जो मिथिला में अन्न नापने के काम में आता है, के मध्य कुछ चाँदी या सोने का द्रव्य रखकर उस पर यह पूजा की जाती है। ताकि लक्ष्मी इसी तरह हमारे घर को धन-धान्य से पूर्ण कर दें, जिससे हमारा जीवन सुखमय बीते, ऐसी भावना रहती है। इस पूजा के समय नारियल प्रसाद रूप में देना अत्यावश्यक माना जाता है। इसी दिन प्रदोष समय से पूर्व इसमें दिया गया यह अरिपन बरामदे की सीढ़ी से पूजा की जगह तक और वहाँ से कुल देवता की पीठ तक लिखा जाता है। इसमें भी देवता के स्वागत में अगवानी की भावना ही निहित है।

यह अरिपन रेखाचित्र लक्ष्मी की पूजा के अवसर पर लक्ष्मी, जो कमला और पद्मा भी कही जाती हैं, के अत्यन्त प्रिय पुष्पराज कमल जो सर्व-श्रेष्ठ देवता को चढ़ाने के लिए शास्त्रों में सात दिनों तक बासी नहीं माना जाता है तथा जिसके फल वराटिका के भीतर का दाना कमलाक्ष जिसमें आयुर्वेद के मत से अनेक रोगों से मुक्त करने का रासायनिक गुण है और जिसकी माला तन्त्र के मत से शक्ति के रूप भगवती के मन्त्र जप के लिए बहुत ही प्रशस्त माना जाता है, जोड़कर माला की एक लड़ी के रूप बनाया गया है। जिसकी चारों तरफ दीप माला के द्योतक बिन्दु दिये गये हैं और बीच का पद-चिह्न देवता के दोनों पद-चिह्नों के द्योतक बनाये गये हैं। फिर एक पद-चिह्न जिसमें आगे पूजा की जगह अष्टदल अरिपन तक जाने की भावना है, इसीलिए यहाँ चित्रित अष्टदल के बोधक अरिपन के बीच का पद-चिह्न नीचे की ओर पूजा करनेवाले साधक के सम्मुख होने के भाव से लिखे गए हैं। इन चित्रों में दिये गये सिन्दूर के लाल बिन्दु देवता की आत्मशक्ति के द्योतक बनाए गए हैं। इन सब बातों का तात्पर्य यह है कि देवता इस अरिपन पर होकर पूजा की जगह आते हैं अर्थात् देवता किसी के स्वागतपूर्वक आवाहन करने पर ही किसी के घर आते हैं।

दूसरे दृष्टिकोण से यह अरिपन चित्र दीवाली की रात पूजित होनेवाली भगवती कालरात्रि की साधारण व्यक्तियों के लिए आराधना का सरल मार्ग के रूप पञ्चोपचार पूजा का प्रतीक पाँच पत्तियोंवाला कमल अथवा शास्त्र के 'नारिकेलजलम् पीत्वा' इस वचन के अनुसार प्रसाद के रूप जल से भरे पाँच नारियलों के रूप या पञ्चदीप का द्योतक बनाया गया है जो पूजा में आरती के समय सर्वत्र व्यवहार में लाया जाता है। जिसमें दीप के बीच घृत और टेम का द्योतक या नारियल के रेघों की जगह दी गयी पञ्चदीप के भीतर की १६ रेखायें अथवा भगवती कालरात्रि की विशिष्ट पूजा षोडशोपचार के बोधक और पञ्चदीप के नीचेवाली २ रेखाएँ पञ्चदीप अथवा नारियल के डण्ठल की जगह शिव-शक्ति का बोधक तथा पञ्चदीप के भीतर घृत और टेमों से निकली शक्ति रूपी लौ की जगह दी गयी नारियल के छिलकों के रेशे के रूप पाँच रेखाएँ काल रात्रि रूपी शक्ति



की वाम मार्ग की तान्त्रिक पूजा की अत्यावश्यक सामग्री मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन रूपी पञ्च मकारों के प्रतीक दिए गए हैं। इसके बीचवाले हृदय के रूप दीप के मध्य के पदचिह्न नारियल फल के श्वेत गुद्दे तथा जल के रूप प्रकृति और पुरुष के द्योतक हैं जिसमें आत्मा का बोधक जीवन-शक्ति के रूप रक्तचन्दन के द्योतक रक्त बिन्दु दिये गये हैं तथ इसके ऊपर श्वेत-बिन्दु दीपशिखाओं के प्रकाश कणों की तरह अथवा नारियल के सृष्टि रूपी फूलों के प्रतीक बनाए गए हैं।

इस चित्र के ऊपर दिया गया कमल के फल वराटिका का चित्र आदि शक्ति के प्रतीक भगवती कालरात्रि का बोधक तन्त्र में वर्णन किया गया अधोमुख त्रिकोणयन्त्र, जो शक्तिरूपी रक्तबिन्दु से युक्त है, बनाया गया है। उसकी दोनों तरफ के दो पत्ते दो दीपों की तरह शिव और शक्ति के बोधक दिए गए हैं। इस यन्त्र के ऊपर के श्वेत बिन्दु सृष्टिरूपी अक्षत के रूप तथा भीतर की तीन रेखाएँ त्रिशक्ति के रूप और पदचिह्न यन्त्र की आत्मा शिव के रूप दिए गए हैं अर्थात् इन सब शक्तियों का माला की तरह एकाकार रूप बनाया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि ये सब मिलकर एक ही शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इन वर्णनों से यह तात्पर्य निकलता है कि इस अरिपन में सब शक्तियों के एकाकार रूप भगवती कालरात्रि के तन्त्र में वर्णन किए गए वाम मार्ग से उनके साधनों के प्रतीक रूपी रेखाओं तथा बिन्दुओं द्वारा पूजा की गई है जो वैदिक शास्त्रों में भी ब्राह्मण के अतिरिक्त वर्णों के लिए विहित दिया गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक वर्ग के लोगों के निमित्त आदि शक्ति रूपी परमेश्वरी की अराधना का मार्ग पृथक्-पृथक् उस वर्ण के मनोनुकूल पूजा विधियों के द्वारा दिया गया है क्योंकि अपनी-अपनी मनोवृत्ति और बुद्धि के अनुकूल ही, उसी दृष्टिकोण से यह वर्ण-व्यवस्था भी की गई थी जिससे कि मनुष्य का सामाजिक जीवन सुव्यवस्थित बीते। मिथिला में इस तरह की पूजा का भी प्रचार अपनी जगह पर मौजूद है।

यह अमावस्या की रात्रि की पूजा दीपावली के संग अपने जीवन की काली रातों को प्रकाशमय बनाने के लिए ही की जाती है। मिथिला में होनेवाली ये दो पूजायें एकही धनदा शक्ति लक्ष्मी की एक प्रकाशमय पूर्णिमा को 'कोजागर' की रात और दूसरी अन्धकारमय अमावस्या को 'सुखरात्रि' की रात अपने जीवन की काली रात रूपी अन्धकारपूर्ण जीवन के दिन और रातों को सुखी बनाने की इच्छा से की जाती हैं ताकि धनदा लक्ष्मी धन प्रदान कर हमें सुखी और आनन्दित बनावें। इसीलिए यह रात मिथिला में सुख रात्रि के नाम से प्रसिद्ध है। और जिसे प्रकाशित करने के लिए ही दीपों का जलाना आवश्यक माना जाता है और शास्त्र में ऋषियों के द्वारा 'नारिकेलजलम् पीत्वा को जागर्ति महीतले' पंक्ति की व्यवस्था की गई है जिससे कि मानव सदा सुखी रहे।



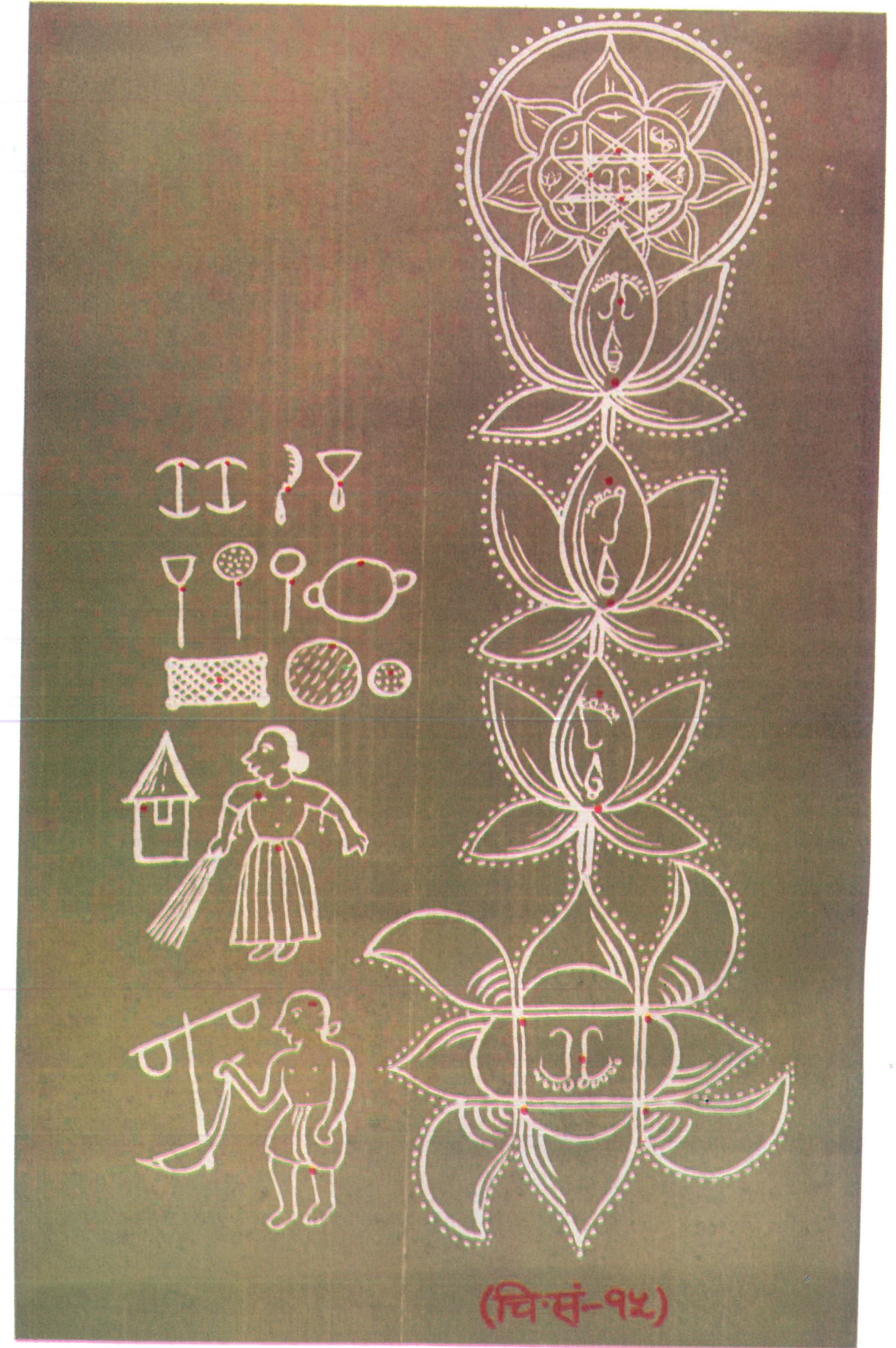
ऊपर के दोनों तरह के चित्र-वर्णनों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि परमात्मा की सिद्धि प्राप्त करने के लिए अलग-अलग रास्ते बनाए गए हैं और उस सिद्धि की प्राप्ति का मार्ग किसी देवता का स्वागत पूर्वक आवाहन कर विविध पूजा की सामग्रियों द्वारा उनकी अर्चना कर उन्हें प्रसन्न करने से ही हो सकता है।

इन सब बातों से लौकिक तथा राजनैतिक तात्पर्य यह भी निकलता है कि किसी गूढ़ तथा महत्त्वपूर्ण कार्य की सिद्धि प्राप्ति के लिए किसी श्रेष्ठ तथा महान् व्यक्ति को ही स्वागतपूर्वक आवाहन कर नानाविधियों से उनका सत्कार कर उन्हें प्रसन्न करने से ही उस कार्य में सफलता प्राप्त हो सकती है। भारतीय संस्कृति में अतिथियों को इसीलिए बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है तथा मिथिला में इस समय भी अपने गुरुजनों को महत्त्वपूर्ण आदर दिया जाता है और कोई भी विशिष्ट कार्य बिना उनकी सम्मति और आशीर्वाद के सम्पादित नहीं कराया जाता है।



१६
चतुः शंख अरिपन
(चित्र संख्या १५)

चित्र संख्या १५ का अरिपन मिथिला में स्त्रियों के द्वारा 'देवोत्थान एकादशी' की पूजा के अवसर पर लिखने की परिपाटी चली आ रही है। जिसमें बीचवाले लम्बाकार प्रधान चित्र के सबसे नीचे का भाग जो भगवान विष्णु की पूजा की जगह आँगन में दिया जाता है उस चित्र के चारों कोने पर चार शंखों के चित्रित होने के कारण ही यह चतुःशंख अरिपन कहलाता है। ये चार शंख चारों वेदों के प्रतीक हैं जिनकी ध्वनि दिगदिगन्त में व्याप्त है। उसके बीच चार वर्णों के द्योतक चार पत्तियों वाले पद्म के मध्य भाग में चतुःकोण आयत क्षेत्र जिसकी चारों तरफ की दो-दो रेखाएं जो कुल मिलाकर आठ होती हैं। अष्ट सिद्धियों के द्योतक हैं। इसके बीच भगवान् नारायण का दोनों पद चिह्न काल पुरुष और प्रकृति देवी के रूप बनाये गये हैं तथा इसके बीच का लाल बिन्दु इनकी शक्ति का बोधक है और इस चित्र के सबसे ऊपर चारों तरफ के श्वेत बिन्दु सृष्टि के बिन्दुओं के द्योतक बनाये गये हैं। इस चित्र से आगे ऊपर पाँच पत्तियों वाले कमल के चित्र पञ्चोपचार पूजा के रूप माने जाते हैं, जिनके बीच का एक-एक शंख तथा एक-एक पद-चिह्न ऊपर की ओर शरीर और आत्मा का द्योतक बनाया गया है तथा सब से ऊपर वाले कमल के चित्र के मध्यवाले एक शंख और दो पद चिह्न शरीर तथा प्रकृति और पुरुष के द्योतक दिये गये हैं। इन सब कमलों में दिए गए रक्त बिन्दु शक्ति के द्योतक हैं। इसके ऊपर के अष्टदल का प्रतीक चित्र जिसका शुद्धरूप और वर्णन आगे दिया जायगा और जो विशेष रूप से शिव और शक्ति दोनों के परन्तु साधारण रूप से शिव अर्थात् पुरुष के लिए उपयुक्त माना जाता है, दिया गया है। जिसके बीच के दोनों पद चिह्न नीचे की ओर भगवान् नारायण के पद चिह्न के रूप बनाये गये हैं।



चतुःशंख अरिपन



यह लम्बाकार अरिपन आँगन से लेकर गोसाउनि की पीठ के नजदीक तक लिखा जाता है जिसमें अष्टदल अरिपन पीठ के नीचे और षट्दल अरिपन जिसका वर्णन पृथक् रूप में आगे आएगा पीठ पर लिखा जाता है।

चतु:शंख अरिपन की दाहिनी तरफ पहली पंक्ति में दाएँ से एक जोड़ा खड़ाऊँ जो घर के भीतर जूते की जगह पहनने के कार्य में आते हैं तथा उसके बाद हँसुआ जिससे किसी भी अन्न अथवा घास आदि के छोटे-छोटे पौधे काटे जाते हैं तथा खुरपी जिससे जमीन खोदकर पौधे लगाये जाते हैं, लिखे गये हैं। इसके नीचे की दूसरी पंक्ति में छोलनी, झाँझ, करछुल, कड़ाही जो रसोई बनाने के कार्य में आते हैं। इसके नीचे तीसरी पंक्ति में खटिया जो सोने के कार्य में व्यवहार की जाती है उसके बाद सूप और चलनी जो अन्न आदि वस्तुओं को साफ करने के कार्य में लायी जाती है। इसके नीचे चौथी पंक्ति में बखार जो अन्न को जमा कर रखने के कार्य में लायी जाती है। इसके बाद झाडू हाथ में लिये दाई जो झाडू देने का कार्य करती है। उसके नीचे पाँचवीं और अन्तिम पंक्ति में हल हाथ में लिये हलवाहा जो हल से कृषिकार्य करता है, लिखा जाता है। ये सभी चित्र आँगन में ही पूजा के अरिपन की दक्षिण तरफ पूरब दिशा की ओर अरिपन के रूप लिखे जाते हैं। जिसमें पहली पंक्तिवाले चित्र पूरब तरफ सबसे ऊपर और अन्तिम पंक्तिवाला हलवाहा का चित्र पश्चिम तरफ सबसे नीचे रहता है।

यह देवोत्थान एकादशी की पूजा पद्मपुराण में वर्णन की गयी कथा के आधार पर ही की जाती है। आषाढ़ शुक्ल एकादशी, जो हरिशयन एकादशी के नाम से प्रसिद्ध है, क्षीर सागर में शेष शय्या पर बैठे भगवान् नारायण के सोने का दिन बताया गया है। उसी दिन भगवान् निद्रा में मग्न हो जाते हैं अर्थात् जगत् का पालनकर्त्ता जगज्जननी की माया के वशीभूत हो जाता है और सृष्टि भी निद्रा रूपी माया में मग्न हो जाती है। उसके चार महीने के पश्चात्, जो चतुर्मास्या कहलाता है, सृष्टि का कार्य सम्भालने के लिए ब्राह्मणों के द्वारा उन्हें कार्तिक शुक्ल एकादशी को जगाया जाता है और उसी एकादशी को देवोत्थान एकादशी कहते हैं; क्योंकि भगवान् उसी दिन उठते हैं। और मिथिला में ब्राह्मणों के द्वारा की जाने वाली यह पूजा भगवान् के जागने का द्योतक मानी जाती है।

इस पूजा में दिन भर निर्जल और अनाहार व्रत रखने के बाद जो शरीर के लिए स्वास्थ्यकर माना जाता है, सायंकाल ईख और नए खढ़ (तिनकों) से पञ्चतत्वों के प्रतीक पाँच खम्भों से युक्त ब्रह्माण्ड रूपी घर का प्रतीक बनाया जाता है और उसे पूजा के स्थान पर रखे गये काठ के पीढ़े अथवा चौकी पर खड़ा कर उसके भीतर पालन कर्त्ता भगवान विष्णु रूपी शालग्राम की पूजा नाना



सामग्रियों से पाँच व्यक्तियों के द्वारा जो पञ्चदेवों के प्रतिनिधि रहते हैं, की जाती है। इसके बाद उस घर के समेत पीढ़े अथवा चौकी को निम्नलिखित मन्त्रोच्चारण के द्वारा तीन बार नीचे से ऊपर उठा कर चतु:शंख अरिपन पर होकर गोसाउनि घर के दक्षिण-पूर्व कोने में बने कुलदेवता के पीठ के नजदीक वाले अष्टदल अरिपन पर ले जाकर रख दिया जाता है और रात भर के लिए वहीं छोड़ दिया जाता है। अर्थात् भगवान उस अरिपन पर होकर कुलदेवता के पीठ तक जाते हैं, ऐसी भावना रहती है।

ओम् ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवान् ऋषिर्वन्दितवन्दनीयः।
प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ।।
मेघागता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पाणि मनोहराणि।
अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितम् भुवनत्रयम्।।

ऊपर वर्णन की गयी बातों का साधारण तात्पर्य यह हुआ कि वेद और पुराणों में वर्णन किए गए भगवान् नारायण ब्राह्मणों के द्वारा निद्राभंग कराए जाने पर अपनी पत्नी रूपा लक्ष्मी से जो मिथिला में शक्ति के रूप कुलदेवता की प्रतीक रहती हैं उनके स्थान तक जाकर रात भर विश्राम लेते हैं और इसी उपलक्ष्य में उनके स्वागतार्थ मिथिला में यह अरिपन लिखा जाता है। परन्तु इन सब चित्रों के वर्णन से इससे भी गूढ़ तात्पर्य यह निकलता है कि महाप्रलय के बाद आदि शक्ति पञ्चदेव रूपी पञ्च-शक्तियों के द्वारा अपनी निद्रा रूपी माया में लिप्त काल पुरुष रूपी नारायण को सृष्टि की रचना के लिए जगाती है और वे शरीर धारण कर प्रकृति शक्ति रूपा लक्ष्मी से सृष्टि रचना के हेतु मिलते हैं तथा पञ्च तत्त्वों से युक्त इस ब्रह्माण्ड में सृष्टि रचते हैं जिसमें उत्पन्न हुए शरीरधारियों के पालन के निमित्त उनके काम आने वाली सभी चीजों का निर्माण भी करते हैं। इसीलिए इस अरिपन के साथ गृहस्थाश्रम में काम आने वाली सभी चीजों के चित्र भी लिखे जाते हैं जिस पर सृष्टि का पालन निर्भर करता है। इन बातों से यह भावार्थ निकलता है कि सृष्टिकर्ता अपनी सृष्टि की रक्षा के लिए स्वयं ही सब तरह की सामग्रियों से युक्त इसे बना रखा है और सृष्टि का कार्यक्रम चलाने के लिए अपना अलग ही विधान बनाया है जिसे कोई अपनी इच्छानुसार बदल नहीं सकता और इसी को मिथिला में अदृष्ट के नाम से पुकारते हैं। और इसी के अनुसार मिथिला में वर को ही कन्या के यहाँ उसको वधूरूप में वरण करने के लिए जाने की प्रथा चली आई



है जिससे कि सृष्टि रूपी गृहस्थाश्रम का निर्माण होता है और उस गृहस्थाश्रम में काम आने वाले सभी चित्रों के नीचे हल से युक्त हलवाहे का चित्र भी इसीलिए दिया गया है कि इस गृहस्थाश्रम रूपी संसार की सृष्टि इन्हीं कृषि करने वाले हलवाहे रूपी कृषकों पर निर्भर है जिसका उदाहरण रूप राजा जनक के महा अकाल के समय पृथिवी को हल से जोत सृष्टि की रक्षा की और अपनी पुत्री के रूप में जानकी को पाया, जिसका वर्णन वाल्मीकि के रामायण महाकाव्य में आया है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि किसी राष्ट्र की उन्नति के आधार स्वरूप कृषक ही हैं, इसीलिए इस अरिपन में गृहस्थाश्रम वाले चित्रों में सबसे नीचे आधार स्वरूप हलवाहे का चित्र दिया जाता है तथा उसके ऊपर झाडूवाली का चित्र, जिसका तात्पर्य यह है कि हलवाहे के द्वारा कृषि करने पर प्रकृति शक्तिरूपी स्त्री अपने बखार रूपी घर को भरकर गृहस्थाश्रम की चित्र में लिखित सभी चीजों को जुटाकर ही अपनी गृहस्थी चला सकती है अर्थात् अन्नोत्पादन के द्वारा ही कोई भी राष्ट्र जीवित रह सकता है; क्योंकि इन चित्रों का दूसरा तात्पर्य यह भी होता है कि जिस राष्ट्र को हलवाहे का कृषिबल नहीं है उसका विनाश, उसकी जनसंख्या का विनाश प्रकृति उसी तरह करती है जैसे स्त्रियाँ अपने घर के अन्न आदि के साथ रहने वाली बेकार वस्तुओं को बुहार कर फेंकती हैं।

इन सब बातों से युक्त यह अरिपन मिथिला में स्त्रियाँ भगवान के संग अपने गृहस्थाश्रम में काम आने वाली सभी चीजों को जगाने की भावना से लिखती चली आई हैं जिससे कि भगवान् की कृपा से उनका घर इन सबसे भरा रहे ताकि जीवन आनन्दपूर्ण बीते।





१७

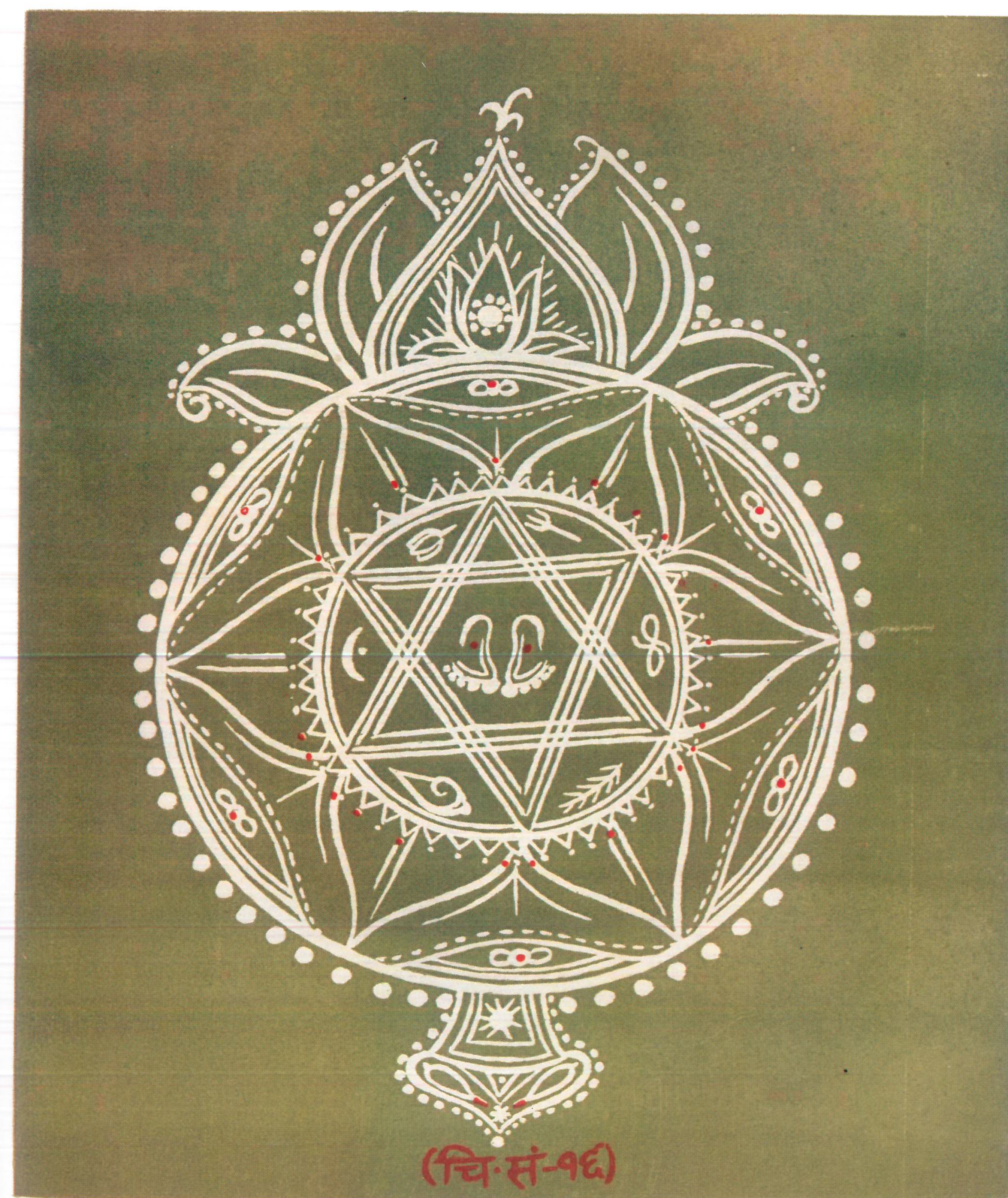
षड्दल अरिपन

(चित्र संख्या १६)

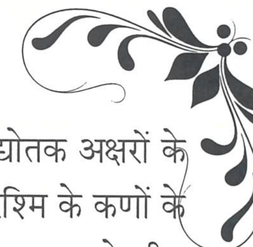
चित्र संख्या १६ का अरिपन चित्र मिथिला में शक्ति अर्थात् भगवती, जो प्रकृति रूपी स्त्रीशक्ति मानी जाती है, की पूजा के अवसरों में विशिष्ट स्थानों पर, लिखा जाता है। यह प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

यह 'षड्दल अरिपन' कहलाता है जिसका कारण यह है कि इस चित्र के मध्य छ: पद्मपत्रों के बीच आदि शक्ति भुवनेश्वरी का षट्कोण यन्त्र, जिसका वर्णन 'देवीभागवत पुराण' के तृतीय स्कन्ध के तृतीय अध्याय में आया है, लिखा हुआ है। यह यन्त्र तन्त्रशास्त्र में वर्णित शक्ति के अधोमुख त्रिकोण यन्त्र के ऊपर शिव का ऊर्ध्वमुख त्रिकोण यन्त्र लिखकर बनाया गया है जिससे बने छ: कोणों के कारण ही यह षट्कोण यन्त्र माना जाता है। इस यन्त्र से युक्त इस अरिपन को मिथिला में अत्यन्त गोपनीय और श्रद्धेय कुलदेवता के रूप गोसाउनि के पीठ पर विशिष्ट दिनों में लिखने की परिपाटी चली आयी है।

इस अरिपन चित्र में इसकी आत्मा के रूप दिए गए दश दिक्पालों के प्रतीक दश अङ्गुलियों से युक्त पुरुष और प्रकृति शक्ति रूपी रक्तबिन्दु के संग आदि शक्ति भुवनेश्वरी के दोनों पदचिह्न रेखाओं तथा बिन्दुओं द्वारा बनाये गये हैं जो दो त्रिभुजों के रूप दो त्रिकोण यन्त्रों की अट्ठारह पुराणों के प्रतीक छ: भुजाओं की अट्ठारह रेखाओं से बने तन्त्र के षट्चक्रों के प्रतीक छ: कोणों के मध्य बनाये गये हैं। किसी-किसी के मत से ये षड्दर्शनों के भी प्रतीक माने जाते हैं। इसकी चारों तरफ बायें से मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, स्तम्भन एवं आकर्षण रूपी षट् कर्मों के छ: प्रयोगों के प्रतीक, षड् ऋतुओं के बोधक भगवती के छ: शस्त्रों के रूप त्रिशूल, पद्म, चन्द्र, शंख, वज्र तथा पाश का चित्र दिया गया है। इसके ऊपर पृथिवी का प्रतीक गोलाकार पुरैन (कमल) के पत्ते के रूप का एक वृत्त बनाया गया है जिसके ऊपर सूर्य के रूप गोलाकार एवं



षड्दल अरिपन



संवत्सर का बोधक दूसरा वृत्त और मण्डल रूपी तेज का प्रतीक बीज मन्त्रों के द्योतक अक्षरों के बोधक दीपमाला की तरह उनचास त्रिकोणों का चित्र दिया गया है जिसके ऊपर रश्मि के कणों के रूप वर्णाक्षर पर चन्द्रबिन्दुओं की तरह लाल और श्वेतबिन्दु जिसमें तीस श्वेतबिन्दु मास के तीस दिनों के द्योतक, दीपमाला के टेमों के बोधक दिए गए हैं। यह सब रश्मि के प्रकाश के कमल की पत्तियों में रेघों की तरह रेखाओं के रूप वर्ष के बारह महीनों के बोधक चारों तरफ की बारह रेखाओं से युक्त ब्राह्मणों के षट्कर्मों के द्योतक छः पत्तियों वाले कमल के चित्र के बीच चित्रित किया गया है जिस कारण यह 'षड्दल अरिपन' कहलाता है।

इन छः कमल की पत्तियों के चारों तरफ दो-दो पत्तियों के बीच त्रिकाल के द्योतक अथवा क्षत्रिय और वैश्यों के शास्त्रीय त्रिकर्म के बोधक तीन-तीन रेखायें फूल के डलिये रूपी सिंकुड़े कमल के पत्तों की नीचे वाले रेघों की तरह लिखी गई हैं। इसके ऊपर सृष्टि के बिन्दुओं के द्योतक पूजा की सामग्री अक्षतों के रूप प्रकाश के कणों के बोधक माह के शुक्लपक्ष की तरह बिन्दु सजाये गए हैं, जिसके ऊपर की सिंकुड़े पत्ते के डलिये की कोर वाली रेखा माह के कृष्णपक्ष के द्योतक बनाया गया है। इसके ऊपरवाली दो पत्तियों वाले फूल की चारों तरफ की बारह पत्तियाँ काल के बारह राशियों के द्योतक डलिये में पुष्प के रूप चित्रित किये गये हैं, जिसके ऊपर वाली चारों तरफ के डलिये रूपी पत्तों के दूसरे तरफ वाले किनारे की शिवशक्ति के प्रतीक दिन और रात की बोधक दो-दो रेखाएँ दी गयी हैं। इन सबों के बाद ब्रह्माण्ड रूपी मन्दिर का बोधक ऊपर की वृत्तप्राय तारिकाओं रूपी बिन्दुओं की तरह पुष्पमालाओं के बोधक बिन्दुओं से युक्त वृत्ताकार मोटी सी रेखा दी गई है। इस वृत्ताकार मोटी रेखा के ऊपरी भाग में पाँच पत्तियों वाले कमल का आधा फूल पाँच गुम्बजों के रूप पञ्चतत्त्वों के द्योतक चित्रित किया गया है, जिसमें पंखुड़ियों और बीच के रेघों की तरह दी गई पन्द्रह रेखाएँ पक्ष के पन्द्रह दिनों के द्योतक दिए गये हैं। इस कमल के बीच वाली पत्ती पर त्रिशक्ति के बोधक त्रिशूल की जगह तीन पत्तियों वाला एक फूल भी बनाया गया है तथा पाँच पत्तियों के ऊपर ओस की बूँदों के द्योतक दीपमाला के प्रतीक फलों के रूप गोलाकार बिन्दु बनाए गए हैं। इन सबों के भीतर कमल की मध्यवाली पत्ती के बीच पञ्चदेवों के प्रतीक पाँच पत्तियों वाला कमल का फूल इन देवों की तेज किरण के रूप पत्तियों के ऊपर की रेखाओं से युक्त बनाया गया है जिसके मध्यवाली पंखुड़ी के बीच चारों तरफ के पुष्प के पंखुड़ियों के रूप नवग्रहों के बोधक बिन्दुओं से घिरे पूर्णचन्द्र का प्रतीक एक दूसरा गोलाकार पुष्प बनाया गया है। इसके उपरान्त इस ब्रह्माण्ड रूपी गोलाकार मन्दिर के नीचे सीढ़ी की जगह चतुष्कोण आयत क्षेत्र की तरह धूपदान का चित्र बनाया गया है जिसके धुएँ की लपट के द्योतक घूमी हुई टेढ़ी रेखा के बीच दो दीपों के भी



चित्र लौ के रूप दोनों तरफ दो लाल बिन्दुओं से युक्त दिये गये हैं। इस अरिपन के भीतर शक्तिपूजा में आवश्यक रक्तचन्दन के छीटों के रूप काल के अट्ठारह नक्षत्रों के द्योतक कुल अट्ठाइस छोटे-छोटे सिन्दूर के लाल बिन्दु दिए गए हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि रेखा और बिन्दुओं के द्वारा ही इस अरिपन में निहित विषयों का वर्णन किया गया है।

इस अरिपन में दी गई रेखा और बिन्दुओं का पहला तात्पर्य यह है कि इसमें आदि शक्ति भुवनेश्वरी की पञ्चोपचार पूजा का बहुत ही व्यापक रूप दिया गया है; क्योंकि यह सम्पूर्ण अरिपन पूजा की सामग्रियों से ही व्याप्त बनाया गया है, जिसका यह अर्थ है कि 'पञ्चोपचार' पूजा को विश्वव्यापी माना गया है; क्योंकि आदि शक्ति भुवनेश्वरी के प्रतीक उनके दो पदचिह्नों से युक्त षट्कोण यन्त्र लिखकर पृथिवी के रूप कमल के पत्ते पर रक्खा गया है, जिसकी चारों तरफ तन्त्रशास्त्रों में वर्णन किए गए मारण, मोहन आदि प्रयोगों के प्रतीक भगवती के द्वारा धारण किये जाने वाले शूल, पद्म आदि छः अस्त्रों के रूप लिखे गये हैं, जिन सबों से युक्त बीज मंत्रों के बोधक दीपमाल के द्वारा इनकी पूजा की गयी है जिससे सूर्य के प्रकाश-किरण की तरह भगवती का तेज निकल षट्कर्म रूपी षट्दल पद्म को प्रकाशित बनाता है, जिसका तात्पर्य यह है कि षट् कर्म बीज मन्त्रों के तेज से ही प्रकाशित है। इसके चारों तरफ त्रिकाल की तीन रेखाओं से युक्त अक्षत तथा फूल, कमल के पत्तों की शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष रूपी डलियों में सजकर, पूजा में चढ़ाये जाने के भाव से माला की तरह रक्खे गये हैं और इन वस्तुओं में शिवशक्ति की माया से युक्त ब्रह्माण्ड रूपी मन्दिर का गुम्बज तथा त्रिशक्ति के रूप ऊपर का त्रिशूल भी फूल के ही बनाये गये हैं जिसके ऊपर की दीपावली की तरह बिन्दु समूह पूजा में प्रसाद के रूप फलों के द्योतक बनाये गये हैं जिसके बीच ब्रह्माण्ड के ऊपर पञ्चोपचार पूजा के प्रतीक पंचदेवों के रूप कमल का फूल मन्दिर में स्थित देवता पर चढ़ाये जाने के भाव से बीच के पूर्णचन्द्र के प्रतीक फूल से युक्त बनाया गया है तथा इस अरिपन के नीचे पञ्चोपचार पूजा की अत्यावश्यक सामग्री धूप के धुएँ से युक्त धूपदान मन्दिर की सीढ़ी के स्थान और दो रक्त बिन्दु रूपी लौ से युक्त दीपदान का भी चित्र बनाया गया है जिन सबों के बीच ब्रह्माण्ड के ऊपर दोनों तरफ ताराओं के द्योतक पुष्पमाला के रूप बिन्दु दिये गये हैं। इन सबों के मध्य शक्ति के पञ्चोपचार पूजा में काम आने वाली अत्यावश्यक सामग्री रक्तचन्दन के छीटों के रूप रक्त बिन्दु सब दिये गये हैं।

ऊपर की बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि भगवती की 'पञ्चोपचार पूजा' सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए सम्भव और सुलभ सामग्रियों के द्वारा भी हो सकती है। इस पूजा की विधि का



वर्णन 'नवरत्नेश्वर' के निम्नाङ्कित श्लोक में और इसके फल का वर्णन 'स्कन्द पुराण' के तृतीय स्कन्ध के तृतीय अध्याय के निम्नलिखित श्लोक में किया गया है। इस प्रस्तुत अरिपन में पञ्चोपचार पूजा कर, बहुत ही व्यापक रूप में दिखा, उसे विश्वव्यापी बनाया गया है।

'नवरत्नेश्र' - गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च।।
एते पञ्चोपचाराश्च कैवल्यफलदायिनः।।
'स्कन्द पुराण' - अभिषेकादात्मशुद्धिर्गन्धात्पुण्यमवाप्यते।।
आयुर्वृद्धिः पुष्पदानाद्धूपादर्थः प्रजायते।।
दीपाद् ज्ञानमवाप्नोति नैवेद्याद्भोगमाप्नुयात्।।

इससे यह ज्ञात होता है कि अनपढ़ और अल्प बुद्धि वाली साधारण जनता के निमित्त इस अरिपन में इस पूजा को सर्वव्यापी होने का वर्णन कर उनको आदिशक्ति की आराधना का सुलभ मार्ग दरसाया गया है क्योंकि दूसरे तरह की षोडशोपचार अथवा वाम-मार्ग की तान्त्रिक पूजाओं में विशेष-ज्ञान और विशिष्ट-ज्ञान और विशिष्ट सामग्रियों की आवश्यकता शास्त्रों में बताई गई है, जो सर्वसाधारण के लिए प्राप्त करना कठिन है, इसीलिए जनता को जनार्दन रूपी सर्वव्यापी शक्ति की आराधना का मार्ग इस अरिपन के द्वारा बताया गया है। इसीलिए मिथिला में इसे शक्ति का प्रतीक मान कर गोपनीय और श्रद्धास्पद जगहों में लिखने की परिपाटी चली आई है और प्राचीन संस्कृति के रूप इस पञ्चोपचार पूजा का प्रचार मिथिला के घर-घर में है और भारत खण्ड में मिथिला की यह प्राचीन संस्कृति सर्वत्र व्याप्त है।

दूसरे दृष्टिकोण से यह अरिपन वर्णाक्षरों द्वारा अट्ठारह पुराणों और षड् दर्शनों में वर्णन किए गए पुरुष और प्रकृति रूप, शिव शक्ति से व्याप्त सूर्यमण्डल के तेज से प्रकाशित पूर्णचन्द्र से युक्त नक्षत्रों और ताराओं से आवृत नवग्रहों के संग दशदिक्पालों से रक्षित सृष्टि के बिन्दुओं से युक्त पञ्चतत्त्वों के संग षड् ऋतुओं से युक्त पृथिवी पर वर्ष के बारह महीनों में शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष के दिन और रात में षट्कर्मी को त्रिकाल में सन्ध्यादि कर्म करने का बोधक बनाया गया है अर्थात् मनुष्य को अपने अदृष्ट को बनाने वाले कर्मों पर अटल रहने को कहा गया है तथा पृथिवी पर विश्व रूपी मन्दिर में त्रिशक्ति का स्थान सबसे उच्च दिखाया गया है और उसके बाद पञ्चदेवों का स्थान दिया गया है। इन सब बातों से यह तात्पर्य निकलता है कि यह अरिपन पौराणिक विषयों से युक्त मनुष्य के अदृष्ट को बनाने वाले कर्म का बोधक बनाया गया है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्म पर विश्वास कर कर्त्तव्य करने के लिए कहा गया है।





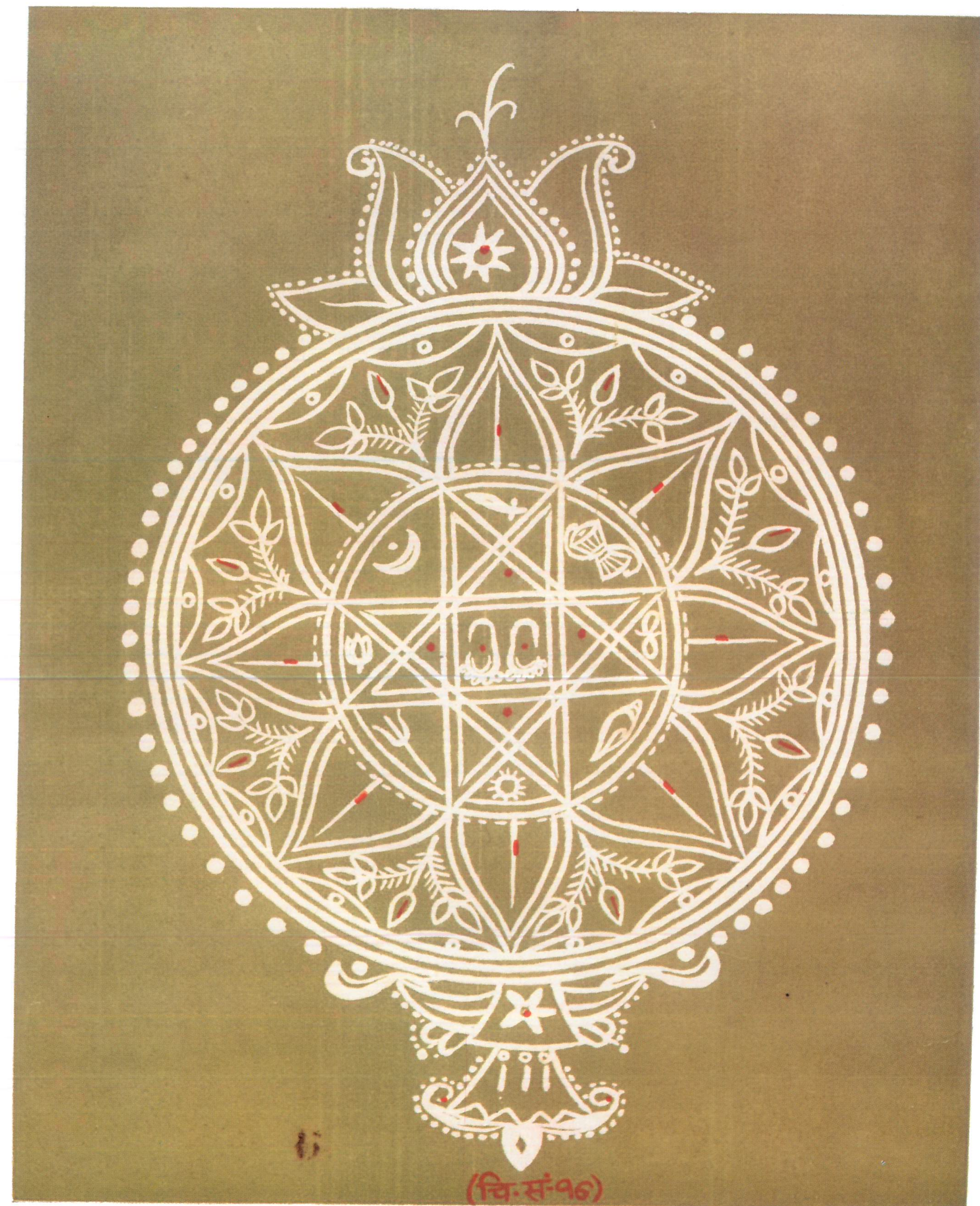
१८

अष्टदल अरिपन

(चित्र संख्या १७)

चित्र संख्या १७ के अरिपन को, मिथिला में स्त्रियों के द्वारा, प्रधानतया भगवान, तथा भगवती की पूजा के अवसर पर भी, गोबर से लिपी भूमि अथवा काठ की चौकी और पीढ़े पर लिखने की परिपाटी चली आयी है।

इस अरिपन के मध्य भाग में सूर्य तथा चन्द्रमण्डल की तरह पुरैन के पत्ते और कमल फूल के बीच वाले वराटिका के ऊपरी भाग के रूप दो गोलाकार रेखाओं से आवृत तथा दो-दो रेखाओं से युक्त आठ भुजाओं से बने अष्टकोण के निमित्त अष्टकोण यन्त्र कहलाने वाले चित्र के मध्य प्रकृति के शक्ति रूपी रक्त बिन्दु से युक्त पुरुष रूपी भगवान् विष्णु के दोनों पद चिह्न बनाए गए हैं। जिसमें अष्टकोण यन्त्र के बीच चतु:समकोण क्षेत्र के चारों तरफ वाले चार डमरुओं के समान अग्रभाग के दो कोणों से युक्त चित्र श्रीमद्भागवत् में वर्णित भगवान् विष्णु की चार भुजाओं के प्रतीक माने जाते हैं तथा इस यन्त्र की सोलह रेखाएँ भगवन् की षोडश कलाओं की द्योतक हैं। इस चतु:कोण क्षेत्र की चारों तरफ के चार बिन्दुओं से युक्त त्रिकोण चार वेदों के रूप दिये गये हैं। इनके सामने की चारों दिशाओं तथा उनके बीच-बीच की विदिशाओं में खड्ग, डमरू, पाश, शंख, चक्र, शूल, पद्म, बिन्दु युक्त अर्धचन्द्र रूपी आठ अस्त्रों के चित्र अष्ट शक्तियों के द्योतक बनाये गये हैं। इन सब चित्रों से युक्त वह कमल की वराटिका भगवान् के तेज किरण के बोधक बीचवाले रेघे के रूप आठ रेखाओं से युक्त अष्ट सिद्धियों के प्रतीक कमल फूल की आठ पत्तियों के बीच स्थित बनाया गया है। इसीलिए यह अरिपन मिथिला में 'अष्टदल अरिपन' कहलाता है। इस कमल की आठ पत्तियों के मध्य तेज के प्रकाश के कणों के बोधक वराटिका की चारों तरफ के किञ्जल्कों के रूप तिलों की तरह चारों ओर वृत्ताकार बिन्दु दिये गये हैं तथा कमल के बाहर दो-दो पत्तियों के बीच चारों तरफ अष्ट नागों के फण के द्योतक कमल के फल आठ वराटिकाओं के चित्र बनाये गये हैं जिसके ऊपर नाग की दो-दो आँखों के द्योतक शून्याकार चारों तरफ की वराटिका के ऊपर



अष्टदल अरिपन



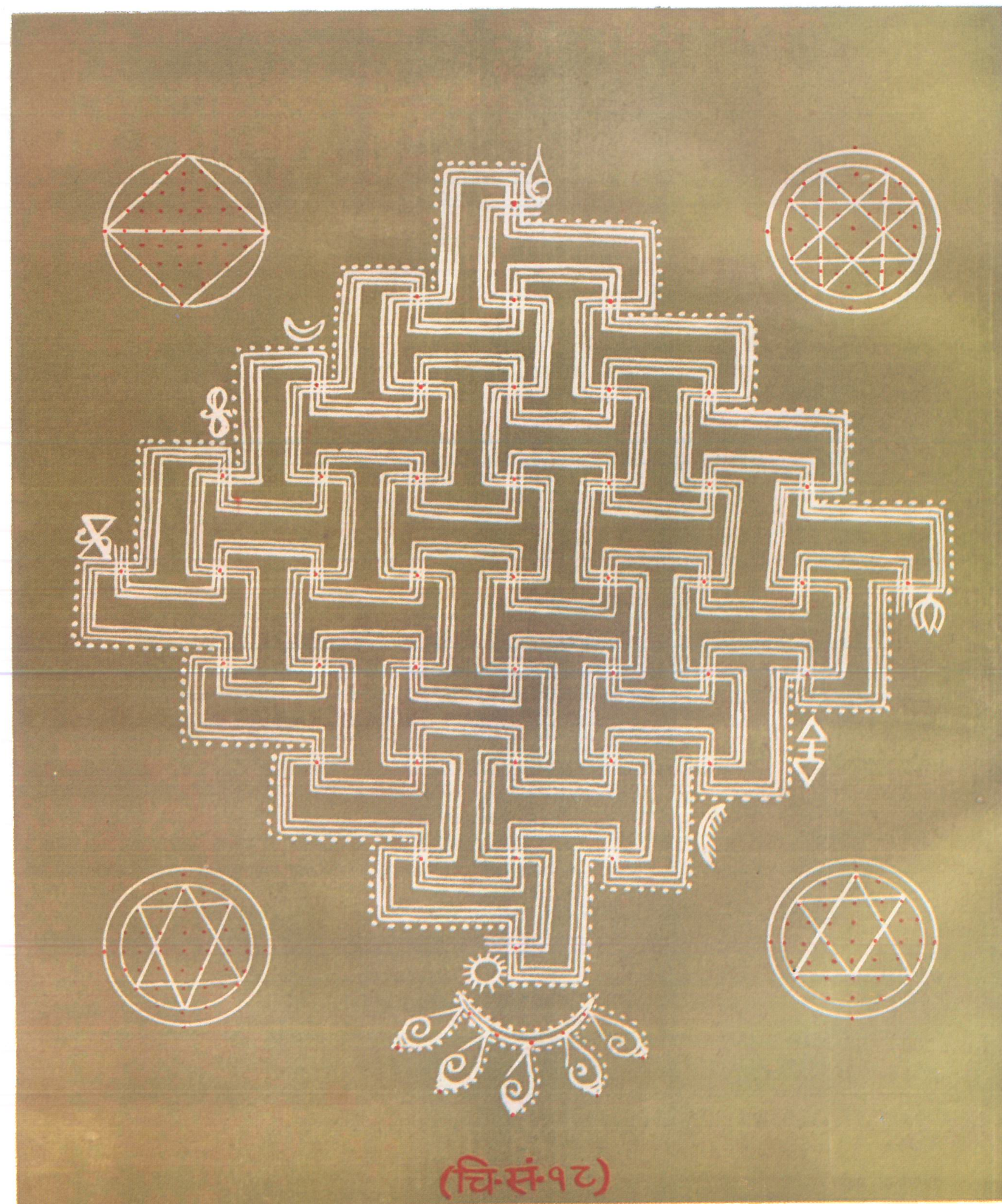
कमलाक्ष के ऊपर के बिन्दुओं के बोधक सोलह छोटे-छोटे शून्य के रूप षोडशोपचार पूजा के प्रतीक दिये गये हैं, और चारों तरफ की वर्री (वराटिका) के चित्र के भीतर तीन-तीन डालियों के चित्र दोनों तरफ विल्व पत्र तथा बीच में तुलसी पत्र से युक्त कुल मिलाकर विष्णुमाया तथा विष्णु के चौबीस अवतारों के द्योतक चारों तरफ बनाए गये हैं, जिनमें दी गई अलग-अलग छप्पन पत्तियाँ छप्पन कोटि देवताओं के बोधक हैं। इन सब चित्र के ऊपर थाल के कोर पर दी गई तीन रेघों की तरह त्रिगुण के द्योतक तीन वृत्तों से युक्त पृथिवी का रूप बनाया गया है, जो उनचास पवनों के द्योतक आकाश की तारिकाओं के बोधक पृथिवी पर सृष्टि के रूप भगवान् विष्णु की वनमाला के पुष्पों के प्रतीक उसकी दो लड़ियों के रूप बाहर की दोनों तरफ के बड़े-बड़े उनचास बिन्दुओं से घिरे हें। पृथिवी रूपी वृत्त के ऊपर भाग में सबसे ऊपर तीन पत्तियों वाला त्रिशक्ति का बोधक दूर्वादल का चित्र बनाया गया है तथा इसके नीचे नक्षत्ररूपी तुलसी के मञ्जरों के रूप विन्दुओं से घिरे एकादश रुद्रों के प्रतीक इग्यारह टेढ़ी रेखाओं से बने पञ्चदेवों के रूप पञ्चतत्त्वों के प्रतीक पाँच पत्तियों वाले कमल का फूल चित्रित किया गया है। इसके मध्य अष्ट वसुओं के प्रतीक चारों तरफ की आठ पत्तियों से युक्त परब्रह्म के रूप शून्याकार पुष्प की भीतरी गोलाई का बोधक, केशर के रूप पराग का द्योतक बीच के रक्त बिन्दु के संग, एक फूल बनाया गया है। इसके बाद पृथिवी रूपी वृत्त के नीचे भाग में वृत्त से सटा वनमाला के सुमेरु की जगह लम्बाकार फूल की तरह धूपदान के नीचे वाले हिस्से के रूप तथा घण्टी के ऊपरवाले भाग की तरह चतुष्कोण क्षेत्र की दोनों तरफ शेषनाग के फणों के रूप दो लौ के प्रकाश से युक्त दीपों के चित्र बनाये गये हैं तथा उस चतुष्कोण के मध्य धूपदान के शृंगार के रूप तथा शेषनाग के पञ्चमुखों का बोध पाँच पत्तियों वाला एक पुष्प लिखा गया है, जिसके आगे नीचे की ओर कच्छप की पीठ की तरह धूपदान के अग्रभाग के रूप घण्टी के निम्न भाग के सदृश एक दूसरा चतुष्कोण लम्बाकार क्षेत्र भी बनाया गया है जिसके बीच की तीन रेखाएँ धूपदान तथा घण्टी के शृंगार के रूप कच्छप की पीठ पर रेघों की तरह त्रिकाल के बोधक बनाए गए हैं और धूपदान के ऊपर तथा घण्टी के नीचे वाले घेरे अथवा कच्छप की पीठ पर टेढ़े-मेढ़े रेघों के रूप खाढ़ियों की तरह दिए गए चार त्रिकोणों के चित्र चार सनकादियों के बोधक हैं। उसके नीचे दाएँ तथा बाएँ वाली धूप के धुएँ की लपट तथा घण्टी के लोलक के ठोकर से निकलने वाली दोनों तरफ शब्दों के द्योतक अथवा फूल के केशर की तरह टेढ़ी-मेढ़ी गोलाकार घूमी हुई रेखायें कच्छप के दो पैरों के भी बोधक बनाए गए हैं। इन सबों के नीचे सबसे अन्त में धूपदान में आग की चिनगारी के रूप घण्टी के लोलक की तरह फूल में लटकते केशर का बोधक लम्बाकार बड़ा बिन्दु आदि कूर्म के मस्तक के रूप बनाया गया है। इसके दोनों तरफ वाले बिन्दु पुष्प के पराग के कणों के रूप अग्नि की स्फुलिङ्गों की तरह घण्टे के शब्दों के गुञ्जन के द्योतक जल की बूँदों के रूप बनाये गये हैं। इस अरिपन के बीच दिये गये सिन्दूर का लाल बिन्दु श्वेत



पिठार से मिलाकर श्रीखण्ड चन्दन के छीटों के रूप बनाया गया है। ऊपर की बातों से ज्ञात होता है कि इस अरिपन में वेदों के संग प्रकृति रूपी शक्ति से युक्त तथा षोडश कलाओं के संग वनमाला से विभूषित भगवान् विष्णु सृष्टि को पालन करने वाली अष्ट शक्तियों के संग पृथिवी रूपी थाल के बीच पुरैन के पत्ते के ऊपर अष्टदल कमल के बीच की वराटिका पर स्थित बनाए गए हैं। अर्थात् पृथिवी पर स्थित कमल के फूल पर विराजमान बनाए गये हैं। जो चन्दन, तिल, पुष्प, दूर्वादल, विल्वपत्र, तुलसीदल, तुलसी का मञ्जर, वर्री फल, धूप, दीप,नैवेद्य आदि सामग्रियों से अपने ही पृथक्-पृथक् रूप आदि-कूर्म तथा शेषनाग पर स्थित अपनी ही ज्योति के रूप चन्द्र-सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित नक्षत्र और ताराओं से घिरे अष्ट वस्तुओं और चार सनकादियों से युक्त पृथिवी पर जो परब्रह्म की शक्ति रूपी त्रिशक्ति के त्रिगुण के संग त्रिकाल से युक्त एकादश रुद्रों के संग चौबीस अवतारों के रूप चौबीस विष्णु माया से व्याप्त हैं, पञ्च तत्वों से बने सृष्टि रूपी शरीरधारियों के द्वारा पूजित हैं। अर्थात् इस चित्र को भगवान् के ही भिन्न-भिन्न रूपों से व्याप्त दिखाया गया है तथा भगवान् की पूजा के साधनों से ही समस्त पृथिवी ढकी दिखायी गयी है, अर्थात् उनका सर्वव्यापक रूप दिखाया गया है। इसीलिए यह अरिपन मिथिला में विशेष रूप से भगवान् की पूजा के अवसर पर व्यवहार में लाया जाता है।

दूसरे दृष्टिकोण से यह अरिपन चित्र हृदय में पति रूप महाकाल के दोनों पद-चिह्नों से युक्त अष्टकोण यन्त्र की आठ भुजाओं के रूप अष्ट भुजाओं से युक्त हाथों में सृष्टि के पालन अथवा संहार के लिए आठ यन्त्र की चारों तरफ वाले खंड, डमरु आदि अस्त्रों को धारण किए किञ्जल्कों से युक्त अष्टदल कमल की वराटिका पर स्थित अपनी मायाओं से पृथिवी को व्याप्त किए त्रिगुण के बीच त्रिकाल में त्रिशक्ति के अनेक रूपों से पूजा की नाना सामग्रियों द्वारा षोडशोपचार-पूजा से पूजित और सनकादियों के द्वारा वन्दित तथा सूर्य-चन्द्र के तेज से प्रकाशित तारा और नक्षत्रों से युक्त पृथिवी पर व्याप्त अष्टभुजा भगवाती जगन्माता दुर्गा का रूप बनाया गया है। इसी कारण यह अरिपन मिथिला में भगवती की पूजाओं के अवसर पर भी लिखा जाता है। इस बात से यह भी सिद्ध होता है कि प्रकृति रूपी भगवती तथा पुरुष रूपी भगवान् की एक ही सम्मिलित शक्ति 'परब्रह्म परमात्मा' का रूप है, जिसे परम शिव भी कहते हैं। और इसीलिए जीवात्मा रूपी शक्ति से युक्त शरीरधारी प्राणिमात्र में 'परमात्मा परब्रह्म' की ब्रह्म रूपी शक्ति मानी जाती है इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि यह अरिपन पुराणों में वर्णित उपाख्यानों से युक्त बनाया गया है जो मैथिल शैली के सांस्कृतिक चित्रों के रूप मिथिला की स्त्रियों के संग चला आ रहा है और घर-घर में लिखा जाता है।





स्वस्तिक अरिपन



१९

स्वस्तिक अरिपन

(चित्र संख्या १८)

चित्र संख्या १८ मिथिला में 'स्वस्तिक अरिपन' के नाम से प्रचलित है। यह ४१ स्वस्तिकों को आपस में जोड़कर बनाया गया है। इसमें 'स्वस्ति', जिस शब्द का अर्थ ही आशिष माना जाता है, के अनुसार ही इस चित्र का नाम स्वस्तिक अरिपन अर्थात् आशीर्वाद बोधक चित्र रक्खा गया है। इसके शुभप्रद होने की ख्याति समस्त भूमण्डल में व्याप्त है। इस स्वस्तिक की चार भुजाओं का चित्र अभय देते हुए भगवान विष्णु की चार भुजाओं का प्रतीक माना जाता है और इस अरिपन में उन्हीं चार हाथों को रेखाचित्र का रूप दे इस भूमण्डल रूपी अरिपन में चारों तरफ त्रिकाल रूपी तीन रेखाओं के संग सृष्टि रूपी बिन्दुओं से व्याप्त बनाया गया है। अर्थात् स्वस्तिक को विश्वव्यापी माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि के पालनकर्त्ता भगवान् विष्णु की भुजाओं की रक्षा में भूण्डल को, जैसा पुराणों की सम्मति है, दिखाया गया है।

यह अरिपन यहाँ 'कार्तिक माहात्म्य' में वर्णित कार्तिक महीने की तुलसी-पूजा के अवसर पर अथवा शारदीय दुर्गापूजा के अवसर पर तुलसी के पौधे के नजदीक अथवा दुर्गा के मन्दिर में महारात्रिरूपी महाष्टमी के दिन यहाँ की स्त्रियों के द्वारा लोकचित्र-कला के रूप पिठार से लिखा जाता है। तुलसी का भारतीय संस्कृति में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि धार्मिक भावना के संग इसमें आयुर्वेद के मत से अनेकों रासायनिक गुण भी हैं। इसीलिए अनेक रोगों में इसके रस अथवा पत्तों का औषधि के रूप में व्यवहार किया जाता है। इसके पेड़ और पत्तों के बीच से निकलने वाली वायु बहुत ही स्वास्थ्यकर मानी जाती है, इसीलिए मिथिलावासी के प्रत्येक आँगन में यह तुलसी का पेड़ 'गरुड़ पुराण' के निम्नाङ्कित श्लोक के मुताबिक लगाने की प्रथा चली आ रही है।

तुलसी रोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा च पावयेत्।

आराधिता प्रयत्नेन सर्व - काम -फल - प्रदा।।

तथा इसकी पूजा, जो 'काशीखण्ड' के इस श्लोक पर आधारित है, करने की प्रथा चली आ रही है-

तुलसी यत्र भवने प्रत्यहं परिपूज्यते।

तद् गृहं नोपसर्पन्ति कदाचिद्यमकिङ्कराः।।

इस पूजा के अवसर पर यह अरिपन लिखने का कारण यह है कि यह अरिपन चित्र भगवान् विष्णु का प्रतीक माना जाता है, जिन्हें तुलसी अत्यन्त प्रिय है। तुलसी को भगवान् विष्णु ने वर प्रदान किया था कि तुम्हें मैं हमेशा अपने माथे पर ही चढ़ा कर रक्खूँगा और जो कोई भी तुम्हारे बिना हमारी पूजा करेगा उसकी पूजा निरर्थक होगी। इसीलिए मिथिला में शालग्राम की पूजा में तुलसीदल चढ़ाना अत्यावश्यक समझा जाता है और इस पूजा के पश्चात् भी विश्राम के समय शालग्राम के माथे पर तुलसीदल रखने की प्रथा चली आ रही है। इस अरिपन में मध्य वाला स्वस्तिक भगवान् विष्णु का प्रतीक माना गया है तथा उसके चारों तरफ वाले पहले चार स्वस्तिक भगवान् की प्रथम चार कलाओं के बोधक हैं, उसके ऊपर वाले चारों तरफ के दूसरे आठ स्वस्तिक भगवान की द्वितीय आठ कलाओं के द्योतक हैं तथा इसके ऊपर वाले तीसरे चारों तरफ के बारह स्वस्तिक भगवान की तृतीय बारह कलाओं के रूप माने गये हैं और सबसे अन्त वाले चारों तरफ के स्वस्तिक भगवान की षोड़श अर्थात् पूर्ण कलाओं के बोधक बनाये गये हैं। इस अरिपन में दिये गये चारों तरफ वाले श्वेत बिन्दु सृष्टि के बोधक भगवान की रश्मि के कणों के रूप बनाये गये हैं तथा चारों तरफ शंख आदि आठ अस्त्रों के चित्र सृष्टि का पालन करने के लिए अष्ट शक्तियों के रूप दिये गये हैं। इस अरिपन के नीचे दिये गये तुलसी के पौधे के चारों तरफ लिखे जाने वाले पाँच शंखों से युक्त चित्र पाञ्चजन्य शंख का बोधक बनाया गया है। इस तरह यह अरिपन षोडश कलाओं से युक्त भगवान् विष्णु का प्रतीक बन जाता है, जो सृष्टि के पालनकर्ता हैं।

यह चित्र वैदिक यज्ञों में 'सर्वतोभद्र' माना जाता है और इसे यज्ञवेदी के बीच बने 'स्थण्डिल' रूपी चबूतरे पर लिखने की परिपाटी वैदिक काल से ही चली आ रही है। वैदिक यज्ञों के समय इस चित्र के बीच चावल का चूर्ण, विल्वपत्र का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण, कुसुम के फूल का चूर्ण आदि अनेक पवित्र रंगीन चूर्णों को भरकर इसे चित्रित करते हैं और इसी के समक्ष यज्ञ का कार्यक्रम सम्पादित किया जाता है अर्थात् इस चित्र को यज्ञों में साक्षी बनाया जाता है। इससे यह

ज्ञात होता है कि यह चित्र वैदिक काल से ही चला आ रहा है जो लोक-चित्रकला के रूप मिथिला में है और आज भी गँवार तथा अशिक्षित स्त्रियों के द्वारा बनाया जाता है।

दूसरे दृष्टिकोण से इस अरिपन में प्रकृति, पुरुष तथा उनकी सृष्टि से युक्त पृथिवी पर शिव-शक्ति से व्याप्त रुद्र को महाकाल के रूप का बोधक बनाया गया है अर्थात् रुद्र का सर्व व्यापक रूप दिया गया है। क्योंकि इस अरिपन के इकतालिस स्वस्तिकों के बीच ४१लाल सिन्दूर के बिन्दु दिये गये हैं। इन बिन्दुओं को तरह-तरह की रेखाओं के रूप में मान कर परिणत करने से तन्त्र-शास्त्र में वर्णित प्राय: सभी यन्त्रों का निर्माण हो सकता है; यथा मध्य बिन्दु युक्त अधोमुख और ऊर्ध्वमुख त्रिकोण, षट्कोण, अष्टकोण, श्री यन्त्र आदि; जिनमें कुछ का साङ्केतिक चित्र भी इस अरिपन के चारों तरफ दिया गया है।

इस अरिपन के मध्य भाग में दिए गए एक सामने वाले लाल बिन्दु को, जो गिनती में ९ हैं, एक सीधी रेखा के रूप मान लेने से और उस रेखा के ऊपर तथा नीचे भाग के चारों तरफ के सबसे अन्तिम स्वस्तिकों के बीच वाले रक्त बिन्दुओं को मानी हुई रेखा के दाहिने तथा बायें दानों तरफ के बिन्दुओं से बनी दो-दो तिरछी रेखाओं का रूप मान कर मानी हुई मध्य वाली रेखा के ऊपर तथा नीचे अन्तिम स्वस्तिक के बीच वाले रक्त बिन्दु के साथ मिला देने से ऊपर और नीचे ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख दो त्रिकोण बन जाते हैं जिनका संकेत इस अरिपन के बगल वाले ऊपर भाग के दायीं तरफ के साङ्केतिक चित्र में दिया गया है। ये तन्त्र-शास्त्र के अनुसार शिव और शक्ति के द्योतक हैं। अब इस अरिपन को पृथिवी का रूप मान लेने से समस्त पृथिवी इन दो त्रिकोण-यन्त्रों से व्याप्त हो जाती है; इसीलिए यह चित्र शिव-शक्ति से व्याप्त माना जाता है।

फिर इस अरिपन के चारों तरफ वाले अन्तिम स्वस्तिकों के मध्य वाले लाल बिन्दु जो समकोण चतुर्भुज के रूप में चारों तरफ के पहले स्वस्तिकों में जो कुल मिलाकर १६ की संख्या में होते हैं, उनके बाद भीतर वाले चारों तरफ के दूसरे स्वस्तिकों के बीच के बिन्दु १२ की संख्या में होते हैं। इसी क्रम से इसके बाद वाले तीसरे स्वस्तिक के बिन्दु ८ तथा चौथे स्वसितक के बिन्दु ४ की संख्या में आते हैं। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि १६, १२, ८ तथा ४ की संख्या के बोधक बिन्दु युग्म संख्याओं के रूप में दिये गये हैं और युग्म संख्या स्त्रीत्व की द्योतक मानी जाती है। इसके बाद केवल बीच वाले स्वस्तिक के मध्य वाला १ बिन्दु शेष रह जाता है जो सृष्टि का शक्तिरूपी बिन्दुरूप माना गया है।

इसके अतिरिक्त दूसरे रूप में यदि इस अरिपन के लाल बिन्दुओं को आलेपन के आमने-सामने एक किनारे से दूसरे किनारे तक सीधी रेखा की तरह गिना जाय तो इस अरिपन के मध्य



वाले बिन्दुओं की संख्या ९ तथा ऊपर-नीचे दाएं-बाएँ इसके बाद ७ इसी क्रम से ५, ३ और १ आती हैं और यह ८, ७, ५, ३ तथा १ की संख्या अयुग्म के रूप पुरुषत्व का बोधक बनायी गयी है।

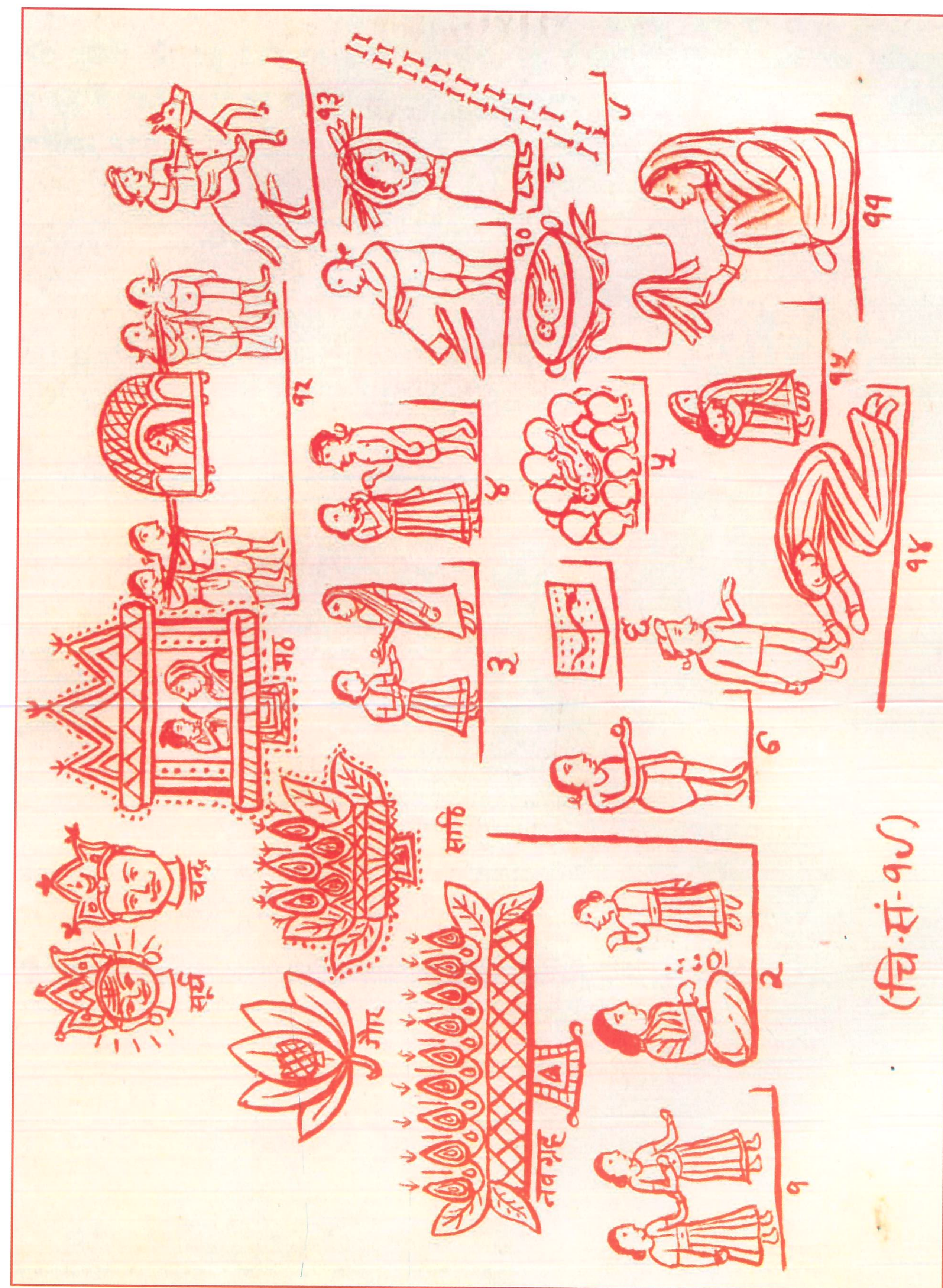
अब इस अरिपन के लाल बिन्दुओं को तिरछी रेखा की तरह एक किनारे से दूसरे किनारे तक गिना जाय तो सबसे ऊपर वाले बिन्दु ५ की संख्या में तथा उसके नीचे वाले बिन्दु ४ की संख्या में हैं। इसका तात्पर्य यह हआ कि इस अरिपन में दी गयी युग्म संख्यायें नीचे और अयुग्म संख्यायें ऊपर की ओर दी गयी हैं, अर्थात् स्त्रीत्व नीचे और पुरुषत्व ऊपर की ओर दिया गया है; जैसा सृष्टि का नियम है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह पृथ्वी रूपी अरिपन स्त्रीत्व से युक्त प्रकृति और पुरुषत्व से युक्त पुरुष से व्याप्त बनाया गया है, अर्थात् प्रकृति और पुरुष शक्ति और शिव से व्याप्त है।

अब यदि इस अरिपन को यज्ञ के हवन-कुण्ड का बोधक रुद्र को महाकाल रूप मान लिया जाय, जिसमें हवन-कुण्ड रुद्राक्ष के द्योतक सृष्टि के बिन्दु रूपी हव्य को भक्षण करने के निमित्त होता है, स्रुवा की तरह अष्टशक्तियों के प्रतीक दोनों तरफ आठ अस्त्र दाँतों से युक्त होता रुद्र के महाकाल रूप में खुले हुए मुख का बोधक बनाया गया है। जिसमें दोनों तरफ छिलकों से युक्त समिधि की तरह अग्नि रूपी मध्य के रक्त बिन्दु से युक्त तीन रेखाओं वाले स्वस्तिकों में बीच वाले स्वस्तिक की काल के रूप त्रिकाल से युक्त चार भुजाएँ रुद्र के सशक्त और सर्वव्यापी हाथों की तरफ समस्त अरिपन में व्याप्त बनायी गयी हैं, अर्थात् महाकाल के हवन-कुण्ड रूपी मुख में होता के रूप सर्वशक्तिमान् स्रुवा के रूप अस्त्रों को मुख में दाँतों की तरह अपने चार हाथों में धारण किये रुद्र के द्वारा सृष्टि रूपी हव्य से हवन करने का भाव इस चित्र में दिखाया गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि को काल के वशीभूत अथवा अनित्य होने का भाव दर्शाया गया है।

इस अरिपन के नीचे का पाँच शंखों वाला चित्र जो तुलसी पूजा के अवसर पर उस पौधे के चारों तरफ मण्डलाकार लिखा जाता है, रुद्र के गले के नाग के पञ्च फणाओं के रूप पञ्चतत्त्वों का द्योतक बनाया गया है। यह चित्र मिथिला में पञ्चशङ्ख के नाम से प्रसिद्ध है।

इन सब बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि यह अरिपन संहारशक्ति रुद्र का बोधक बनाया गया है। यह यज्ञ के स्थण्डिलों पर सर्वतोभद्र की तरह लिखा जाता है और अरिपन के रूप मिथिला के गोबर से उपलिप्त प्राङगणों में मैथिल शैली के चित्र के रूप पर्वों के अवसर पर चित्रित होता है।





हरिसौं पूजा का चित्र



द्वितीय खण्ड

भित्ति-चित्र

२०

हरिसौं पूजा का चित्र

(चित्र संख्या १९)

चित्र संख्या १९ को हरिसौं पूजा के अवसर पर मिथिला में कुल-देवता के घर के पूरब तरफ वाली दीवाल पर प्रधान देहली के दक्खिन तरफ सिन्दूर से लिखने की परिपाटी चली आ रही है।

यह हरिसौं पूजा ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित 'गौरीव्रत' के आधार पर चली आ रही है, जो निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है -

सर्वव्रतविधानञ्च मत्तो वत्स! निशामय!

ख्यातं गौरीव्रतं नाम मार्गे मासि कृतं महत्।।

यह व्रत कार्तिक शुक्ल परीब से अग्रहण शुक्ल परीब तक रखा जाता है। इस व्रत में गौरी ने हर से मानसिक विनय-अनुष्ठा-व्रत किया कि आप ही मेरे स्वामी हों; इसीलिए तभी से यह व्रत 'हरिसौं पूजा' जिसका अब विकृत रूप हिरसौं पूजा बन गया है, प्रचलित है। रामायण की कथा से ज्ञात है कि विवाह से पूर्व यही पूजा श्री रामचन्द्रजी को वर के रूप में पाने की कामना से श्री जानकीजी ने भी किया था।

यह पूजा कुंआरी अवस्था में ही मिथिला की कन्याओं को प्रारम्भ कराया जाता है, जिसका निस्तार उसके विवाह के पश्चात् होता है। इस पूजा-व्रत में पूजा से पूर्व किसी भी दिन आहार अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है।

इस अवसर पर यहाँ एक निश्चित कहानी कहने की प्रथा चली आ रही है। यह भित्ति-चित्रि जो निम्न रेखाङ्कित और नीचे के अङ्कों से युक्त बनाया गया है, उसी कहानी से सम्बन्ध रखता है। इसके अतिरिक्त यहाँ अङ्कित सूर्य, चन्द्र आदि के चित्र पूजा के समय दीवाल पर सिन्दूर से पूर्व वर्णित बातों के आधार पर ही लिखे जाते हैं। इन निम्न रेखाङ्कित चित्रों का आशय समझाने के लिए उस कहानी का सार लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। वह इस तरह है :-

किसी नगर में दो लड़कियाँ निवास करती थीं, जिनमें एक ब्राह्मण की तथा दूसरी ग्वाले की कन्या थी और दोनों में सखी-भाव था। इस भित्ति चित्र में रेखा के नीचे १ अङ्क के ऊपर वाला चित्र उन्हीं के सखी-भाव का द्योतक है।

एक दिन ब्राह्मण-कन्या गौरी का यह व्रत प्रारम्भ करने के लिए उद्यत बैठी थी, उसे देख गोप कन्या ने भी यह व्रत रखने की इच्छा प्रगट की, इसी का भाव २ अङ्कित चित्र में चित्रित किया गया है। ब्राह्मण की लड़की ने इस बात का विरोध किया और कहा- "तुम शूद्र की कन्या हो, नित्य निराहार रह पूजा न कर सकोगी। तुम्हारी भाभी प्यार से आग्रह पूर्वक तुम्हें मखाने का फोका खिला देगी और तुम्हारा भाई दुलार से तुम्हें दुध की मलाई खिला देगा। इसलिए तुम यह पूजा-व्रत प्रारम्भ न करो।" परन्तु उस लड़की ने नहीं माना और यह पूजा-व्रत करना आरम्भ कर दिया। दो-चार दिनों के भीतर ही ब्राह्मण-कन्या का वचन सत्य निकला और गोप-कन्या की भौजाई ने आग्रह पूर्वक उसे मखाने का कोखा खिला ही दिया, जो ३ अङ्कित चित्र में चित्रित किया गया है। फिर भी उसने पूजा-व्रत जारी ही रखा। इसके बाद एक दिन उसके भाई ने भी पूजा से पूर्व उसे दुलार से मलाई खिला दी जिसका द्योतक ४ अङ्कित चित्र है। तो भी उसने यह पूजा-व्रत जारी ही रखा और व्रत भंग की बात को अपनी सखी से छिपा रखा। कुछ समय के पश्चात् दोनों का विवाह एक गाँव में ही हुआ और दोनों अपने-अपने ससुराल चली गयीं। कालान्तर में दोनों लड़कियों को सन्तान उतपन्न हुईं जिनमें ब्राह्मण-कन्या कि सन्तानें सकुशल जीती रहीं परन्तु गोप-कन्या की एक भी सन्तान जीवित नहीं बची। वर्षों के पश्चात् भाग्य-चक्र ने दोनों सखियों को आपस में फिर मिलाया। उस समय गोप-कन्या के जीवन के घटना-क्रम के वर्णन में अपनी प्रत्येक सन्तान के काल-कवलित हो जाने की बात अपनी सखी से कही।

उसी सखी ने पूछा- "सखी! हम दोनों ने तो साथ ही गौरी का व्रत रखा और पूजा की, फिर आश्चर्य है कि तुम्हारी संतान एक भी जीवित नहीं रही।" ग्वालिन ने कहा-"मैंने पूजा तो की परन्तु व्रत भंग कर दिया, और इसी कारण मुझे सन्तानें तो हुईं परन्तु जीवित नहीं बचीं और मैं दिन-रात रोती रहती हूँ।" यह बात सुनकर ब्राह्मण की लड़की को, जिसे भाग्य-चक्र ने कभी रोने का मौका नहीं दिया था, रोने की लालसा पनप उठी और उसने अपनी सखी से इस लालसा को सफल करने का मार्ग पूछा। उसकी सखी ने विरोध करते हुए कहा- "तुम कैसी अज्ञानतापूर्ण बातें पूछ रही हो, तुम तो सुखी-सम्पन्न हो, तुम्हारी संतानें तो सब जीवित हैं, फिर तुम्हें क्यों रोना आयेगा।" परन्तु ब्राह्मण-कन्या ने नहीं माना और आग्रह करते हुए कहा- "मेरी यह इच्छा प्रबल हो गयी है कि मैं इस कामना की पूर्त्ति करूँ, इसीलिए तुम्हें इसका उपाय बताना ही पड़ेगा।" बाध्य

होकर गोप-कन्या ने कहा- "सखी! इसका तो सहज उपाय है कि तुम अपने एक बच्चे को मार डालो और अपना शौक पूरा करो।" इस पर ब्राह्मण-पुत्री ने बच्चे के प्राण हरने का भी रास्ता उसी को बताने के लिए कहा जिस पर उसने बच्चे को कुम्हार के आवे में डाल देने की सलाह दी और ब्राह्मणी ने रोने की कामना की पूर्ति के लिए अपने एक बच्चे को कुम्हार के आवे में कच्चे बर्तनों के संग डाल दिया, जिसका द्योतक इसमें दिया गया निम्नाङ्कित ५ की संख्या वाला चित्र है। परन्तु माँ के अखण्ड पूजा-व्रत के प्रभाव से आवे की आग बच्चे को जला नहीं सकी और बच्चा सुरक्षित ही आवे से निकला जिससे ब्राह्मणी का शौक पूरा नहीं हुआ। इसके बाद दूसरा मारण प्रयोग बच्चे की पुस्तक में साँप को रखकर किया गया, जिसका द्योतक ६ अङ्कित चित्र है। इस बार भी बच्चा नहीं मरा और वह साँप एक गहना बन कर बच्चे के गले में लटक गया।

तब तीसरी बार लड्डू में विष डालकर बच्चे को मारने का उपाय किया गया, जिसका द्योतक ७ अङ्क वाला चित्र है। पर इस पर भी बच्चा नहीं मर सका और ब्राह्मणी का शौक अधूरा ही रहा। इसके बाद फिर दोनों सखियों में विचार हुआ और ग्वालिन ने सलाह दी- "अपनी चेरी (दाई) को जंगल से बिना रस्सी का बोझ बना लकड़ी लाने के लिए भेजो और जब वह चली जाय तो इसी बीच में चूल्हे का आग पर कड़ाही में तेल खौला दाई के लड़के को उसमें डाल दो जिससे कि वह मर जाय। दाई जब लौटकर आएगी और अपने बच्चे को मरा हुआ पायेगी तो वह दहाड़ मार कर रोने लगेगी और तुम उसी के संग रो कर अपना शौक मिटाना।" ब्राह्मणी ने ऐसा ही किया और अपनी दाई को लकड़ी के लिए भेजा। दाई बिना रस्सी के सहारे लकड़ी का बोझा लेकर लौटी, जिसका द्योतक इसमें ८ अङ्क का चित्र है। आते समय रास्ते में दाई को दो चींटी की धारियाँ अण्डों के संग जाते हुए दिखाई दीं, जिसका द्योतक ९ अङ्क वाला चित्र है। उन चींटियों को देखकर दाई कुछ देर रुक गई और उनका रास्ता छोड़ उन्हें जाने दिया। उस समय आगे-आगे जाने वाली चींटी ने कहा-"दाई, तुम घर पहुँच कर अपने बच्चे को मरा हुआ पाओगी।" परन्तु सबसे पीछे आने वाली बूढ़ी चींटी ने आशीर्वाद दिया- "नहीं, तुमने हमें पैर के नीचे नहीं कुचला है, तुम्हारा बच्चा जीवित ही कड़ाह से निकलेगा, ऐसा मैं आशीष देती हूँ।" इधर ब्राह्मणी ने अपने नौकर को कुल्हाड़ी से जलावन की लकड़ी फाड़ कर लाने के लिए कहा, जिसका द्योतक १० अङ्क वाला चित्र है। और स्वयं ११ के अङ्क से अङ्कित चित्र की तरह बैठकर चूल्हा जला कड़ाह में तेल गर्म कर दाई के बच्चे को उसमें डाल दिया। परन्तु बुढ़िया चींटी के आशीर्वाद के प्रभाव से वह बच्चा निरापद ही रहा और उस ब्राह्मणी की अभिलाषा पूरी न हो सकी। तब फिर उसने अपनी सखी को बुलाकर पूछा कि अब तो किसी भी उपाय से मेरी रोने की कामना पूरी न हो सकी, अब कहो कि कौन-सा उपाय करूँ। इस पर ग्वालिन ने कहा—"अखण्ड व्रत के प्रभाव से अशुभ कार्य में रोने का शौक तुम्हें पूरा नहीं हो सकता, इसलिए तुम अपने भैया और भाभी को न्योता भेजवाओ; फिर

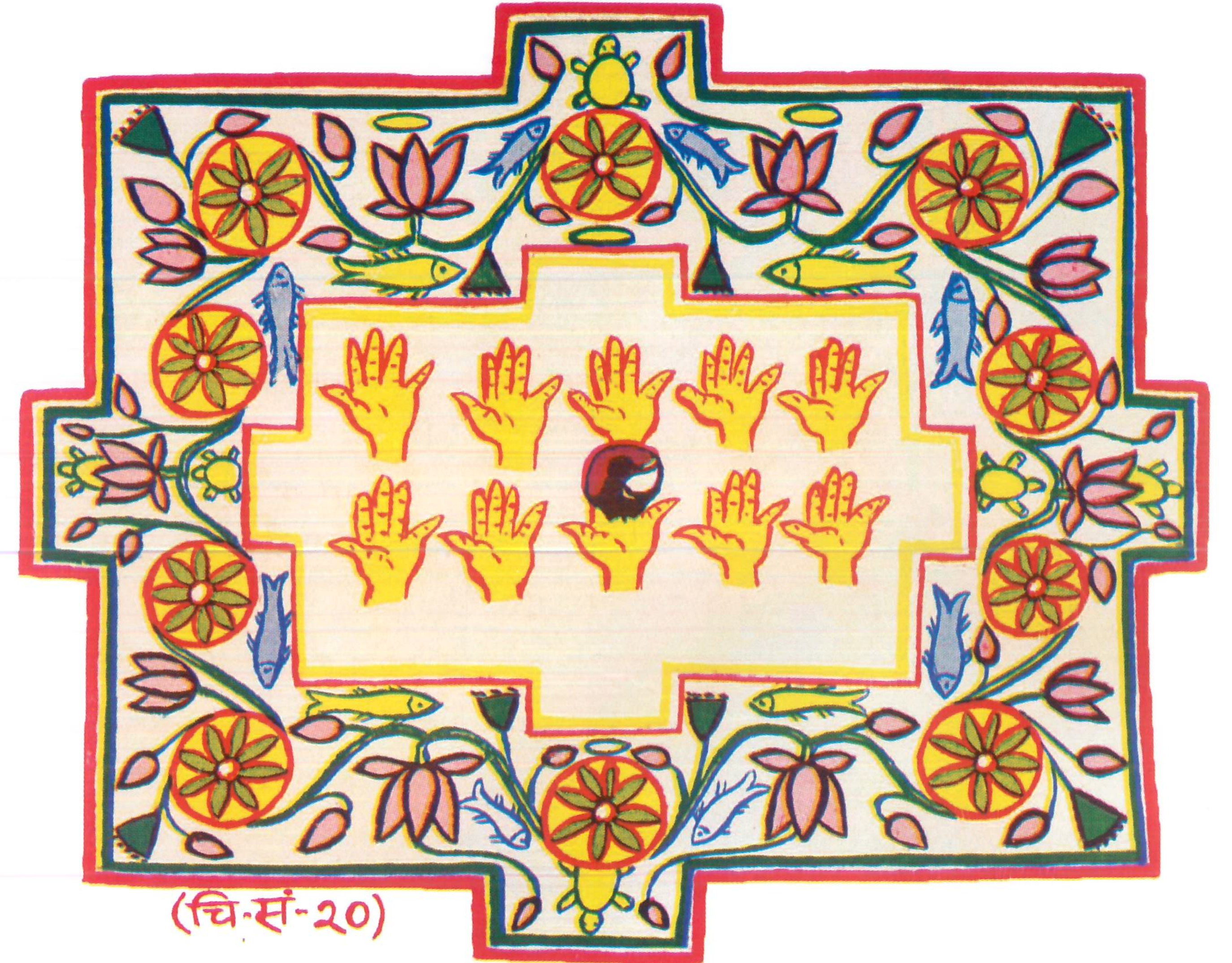
तुम्हारी भाभी डोली में और भैया घोड़े पर सवार होकर आएंगे तभी तुम भाई का पैर और भौजाई की गरदन पकड़ कर आनन्द से रोना, जिससे तुम्हारी रोने की कामना पूरी होगी। ब्राह्मणी ने वैसा ही किया और उसकी भाभी डोली में तथा उसका भैया घोड़े पर सवार होकर आया, जिसका चित्रण १२ और १३ के अङ्कों वाले चित्रों में किया गया है। ब्राह्मणी अपने भाई का पैर और भाभी की गरदन पकड़ जी भर कर रोई और अपनी रोने की कामना को पूरा किया। इन्हीं का चित्रण १४ और १५ अङ्क वाले चित्रों में किया गया है। अपने स्वजन से मिलने पर उसका पैर अथवा गरदन पकड़कर रोने की प्रथा इस समय भी मिथिला के अधिकांश वर्गों की स्त्रियों में प्रचलित है।

इस कहानी के इन चित्रों को दीवाल पर लिखने का पहला तात्पर्य यह है कि इस कहानी को चित्र के द्वारा ही वर्णित किया गया है, अर्थात् यहाँ के चित्र के भीतर कथानक छिपे हैं; इस बात का संकेत है।

कल्पना से प्रत्यक्ष रूप विशेष प्रभावोत्पादक होता है, इसीलिए दूसरे दृष्टिकोण से इन सब चित्रों को पूजा करनेवाली के सामने दीवाल पर चित्रित करने का तात्पर्य यह है कि पूजा करनेवाली लड़की पर इस कथा में वर्णन की गई बातों का विशेष प्रभाव पड़े, जिससे कि वह पूजा के बीच व्रत के रूप अनाहार रहने में विश्वास कर अपने कर्तव्य से विचलित न हो। कभी-कभी अनाहार रहना शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना जाता है तथा भारतीय प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए बचपन से ही यहाँ की कुमारियों को अनाहार रहने का अभ्यास कराना आवश्यक माना जाता है, क्योंकि विवाह के पश्चात् पति-गृह-गमन के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर लड़कियों में सहन-शक्ति का होना कई कारणों से विशिष्ट गुण माना गया है तथा भूख को सहन करने का अभ्यास रखने से जीवन में उसे कष्ट का भी विशेष अनुभव नहीं होता, ऐसी भावना है। क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहने पर जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं कि रसोई बन जाने के बाद कभी-कभी अतिथि घर में आ जाते हैं और उनको भोजन करा उनका सत्कार करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे समय गृहिणी के रूप भारत-रमणियाँ कुल की मर्यादा के रक्षार्थ अपने हिस्से का भोजन अपने अतिथि को खिला स्वयं भूखी रह जाती हैं और अपने कर्तव्य का पालन करती हैं। अथवा किसी कारणवश पति के घर लौटने में देर होने के कारण अपनी मनोवृत्ति के अनुसार अथवा स्त्री-धर्म-पालन के निमित्त बिना भोजन किए इन्हें घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि बिना पति को भोजन कराए स्वयं भोजन कर लेना हिन्दू संस्कृति के विरुद्ध है। यह प्रथा अब भी मिथिला के घर-घर में प्रचलित है।

इन्हीं सब कारणों से हरिसौं पूजा के अवसर पर इन चित्रों को कुल-देवता के घर, जिसे शुभ कार्यों के सम्पादनार्थ सुरक्षित माना जाता है, मिथिला में दीवाल पर लिखने की परिपाटी चली आ रही है।





सरोवर



२१
सरोवर
(चित्र संख्या २०)

चित्र संख्या २० मिथिला में आँगन के पश्चिम तरफ वाले कुल-देवता के घर में, जो 'गोसाउनि घर' कहलाता है, पश्चिम तरफ वाले दीवाल पर मध्य में पूर्वी दीवाल की प्रधान देहली के ठीक सामने सुहागिनों के द्वारा काले को छोड़ दूसरे रंगों से लिखे जाने की परिपाटी चली आ रही है।

यहाँ यह 'सरोवर' के नाम से प्रसिद्ध है, जो चारों तरफ के घाट से युक्त एक सुरक्षित तालाब के रूप लिखा जाता है और जिसके भीतर चारों तरफ नाल, पत्ते, कली, फूल और वराटिका फल से युक्त कमल की लताएँ बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त मछली, कछुए आदि भी जल-जीव इसमें लिखे जाते हैं तथा इन सबों के बीच पोखरे के मध्य में शास्त्रीय दश कर्मों के द्योतक दश हाथ के पञ्ञों के चित्र भी चित्रित किये जाते हैं। जिन सबों के मध्य सफेद चादर में धब्बा के रूप आरत का पत्ता, गोबर और डोका (बड़ा घोंघा) से बना एक गोलाकार चित्र भी इसमें चित्रित किया गया है जो वर के द्वारा चिपकवाया जाता है।

मिथिला में, कुल-देवता की वन्दना कर विवाह के लिए भावी ससुराल की यात्रा करते समय वर के द्वारा, कई एक लौकिक विधियाँ घर की वयोवृद्धा स्त्रियों के द्वारा सम्पादित करायी जाती हैं। जिनमें इस सरोवर के चित्र के साथ भी कुछ प्रक्रियायें की जाती हैं। उस समय इसमें लिखे गए पञ्ञों पर पिठारलेपित वर के दाहिने हाथ के पञ्ञों को बारी-बारी से रखवाया जाता है, जैसे पञ्ञा का निशान लिया जाता हो। इसके बाद इन पञ्ञों के बीच आरत का पत्ता, गोबर और डोका उसी के हाथ से चिपकवाया जाता है।

इन प्रक्रियाओं का यह तात्पर्य है कि वर जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा से विवाह करने के निमित्त जाता रहता है उससे अपने दश कर्मों पर आरूढ़ रह गृहस्थाश्रम-धर्म के पालन



करने की थाती के रूप पञ्जों का थाप लेकर प्रतिज्ञा कराई जाती है। इस सुन्दर चित्र के बीच देहली के ठीक सामने इस काले धब्बे के बनाने का तात्पर्य यह रहता है कि विवाह के लिए जाते हुए वर के ऊपर किसी की बुरी दृष्टि का असर न पड़े, क्योंकि किसी दृष्टि-दोष-पूर्ण व्यक्ति की पहली निगाह में ही दोष छिपा माना जाता है और इसीलिए यह चित्र पहली निगाह पर पड़ने के लिए ही देहली के सामने लिखा जाता है, ताकि किसी बाहर से आने वाले व्यक्ति की पहली निगाह का दोष उसी धब्बे पर पड़कर नष्ट हो जाए। (आरत का पत्ता, डोका और गोबर के इकट्‌ठे रूप में दृष्टि-दोष के निवारण की शक्ति 'शाबर-तन्त्र' के अनुसार मानी जाती है।)

भारतीय संस्कृति में दृष्टिदोष को बहुत ही महत्त्व दिया गया है। इसीलिए दृष्टिदोष से बचने की नीयत से ही बड़े-बड़े मकानों के बनते समय किसी मनुष्य अथवा किसी अन्य वस्तु की विचित्र आकृति बनाकर बाँस के सहारे सबसे ऊपर और सबसे आगे आकाश में लटकाने की प्रथा चली आ रही है ताकि उस सुन्दर मकान पर कोई नजर न लगाये और व्यक्ति की पहली निगाह उस विचित्र आकृति पर ही पड़े तथा उसका दोष वहीं पर नष्ट हो जाय।

दूसरे दृष्टिकोण से यह सरोवर का चित्र चार वर्णाश्रमों के प्रतीक चारों तरफ के चार घाटों से युक्त गृहस्थाश्रम का द्योतक बनाया गया है। जिसके भीतर जल में पनपने वाली कमल की लताएं, मछली आदि जलजीव गृहस्थी में निवास करनेवाले व्यक्ति अथवा जीवों के रूप बनायी गयी हैं। जिसका तात्पर्य वर को इस बात की शिक्षा देने से है कि जिस तरह सरोवर अपने आश्रित जलजीवों को अपने पानी का आवरण दे हिंसकों की दृष्टि से छिपा कर उनकी रक्षा की चेष्टा करता है तथा पङ्क से निकली कमल की लता को शीतल जल का आश्रय दे पनपने, विकसित होने, और फलने में सहारा देता है-उसी तरह तुम भी अपनी गृहस्थी के बीच बसने वाले अपने आश्रित परिवार को सरोवर रूपी उदार हृदय से पालन का सहारा दे दयाशील बन उनके अपराधों को क्षमा का आवरण देना और शीतल जल रूपी सदुपदेश प्रदान कर उनमें सद्बुद्धि उपजाना ताकि वे उन्नति के पथ पर अगसर हों जिससे गुणवान् सन्तति से युक्त तुम्हारी गृहस्थी इसी सरोवर की तरह सर्वगुण सम्पन्न बन सुशोभित हो।

इस चित्र के बीच में काला धब्बा वर के हाथ से दिलाने का दूसरा तात्पर्य यह रहता है कि जिस तरह यह काला धब्बा इस सुन्दर चित्र के बीच अशोभनीय प्रतीत होता है, उसी तरह पूर्व वर्णित कर्त्तव्य पर आरूढ़ न रहने पर तुम्हारा जीवन भी कलंकित माना जायेगा और तुम्हारे हाथ सुयश रूपी फल प्राप्ति के लिए इन पञ्जों की तरह ही पसारे रह जायेंगे।

इस चित्र को सुहागिनों से ही लिखवाने का तात्पर्य यह रहता है कि उस घर में आने वाली



वधू सदा सुहागिन बनी रहे। और, शुभकार्य में यात्रा के समय दृष्टि पर रहने के कारण ही इस चित्र में काले रंग का व्यवहार नहीं किया जाता है, सिर्फ शुभप्रद रंग ही व्यवहार में लाया जाता है क्योंकि प्राय: इस संसार के प्रत्येक देश में यह काला रंग अशुभ सूचक माना जाता है।

मिथिला में कुलदेवता के घर में लिखे जानेवाले किसी भी चित्र में दश-पन्द्रह वर्ष पूर्व तक काले रंग का व्यवहार नहीं किया जाता था, जिसका कारण यह था कि किसी भी सांस्कृतिक कार्यों का प्रारम्भ उसी घर से किया जाता था और यात्रा के समय काले रंग पर दृष्टि पड़ना शास्त्रों में अशुभ सूचक माना गया है। परन्तु नये युग की लड़कियाँ इन बातों पर विशेष ध्यान न देने के कारण कहीं-कहीं काले रंग का भी व्यवहार करने लगी हैं।

इसी तरह का चित्र और इसी तरह की प्रतिक्रितियाँ पति-गृह आते समय वधू के पितृ-गृह में भी लिखा और सम्पादित कराया जाता है। जिसका तात्पर्य वधू रूपी कन्या से पूर्व वर्णित बातों की प्रतिज्ञा से ही रहता है।

इन्हीं सब कारणों से मिथिला में यह सरोवर का चित्र लिखे जाने की परिपाटी लोककला के रूप स्त्रियों के संग प्राचीन काल से चली आ रही है ताकि मनुष्य अपने कर्त्तव्य रूपी बन्धन से बँधा रहे।



22

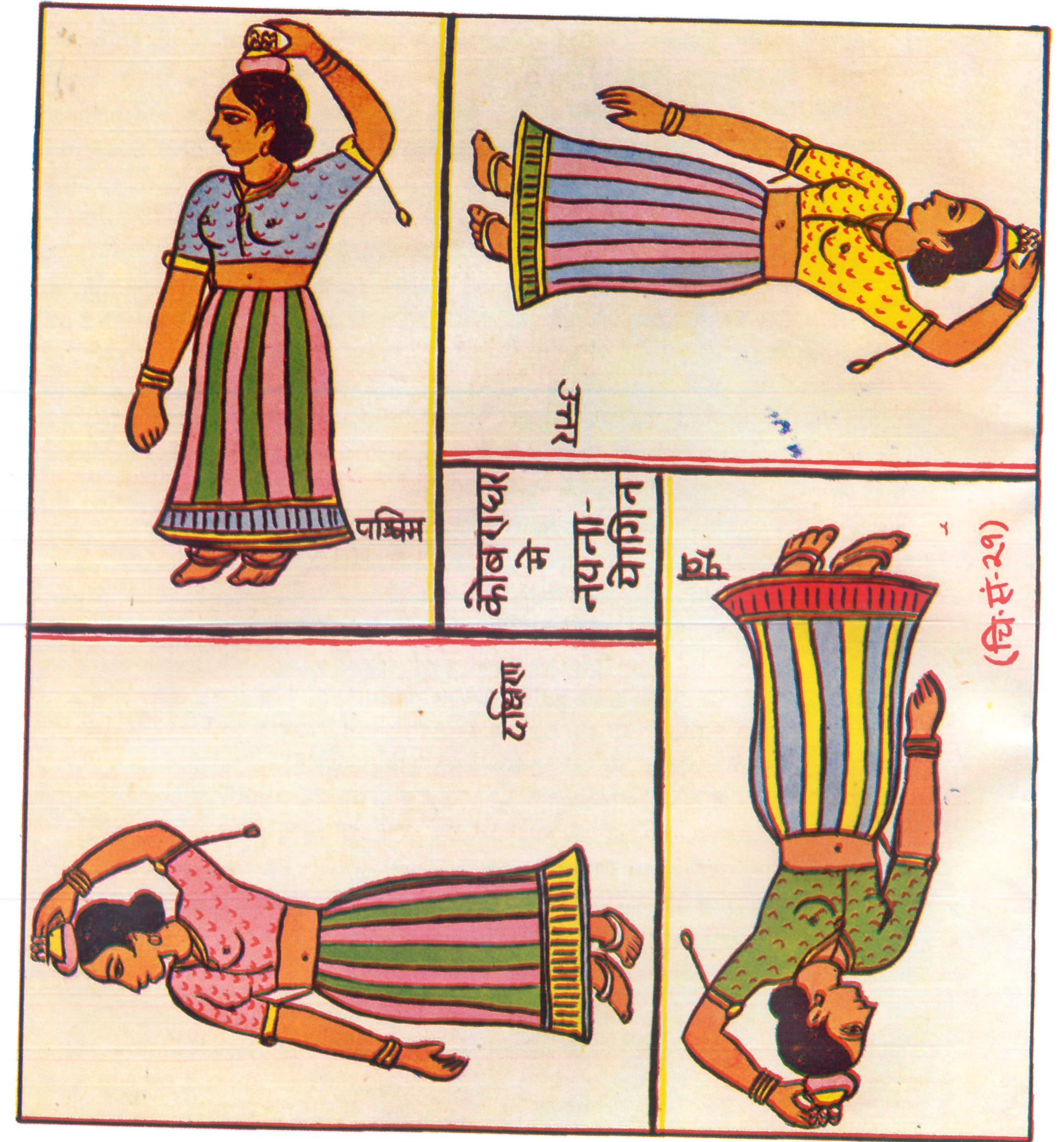
नयना योगिन

(चित्र संख्या २१)

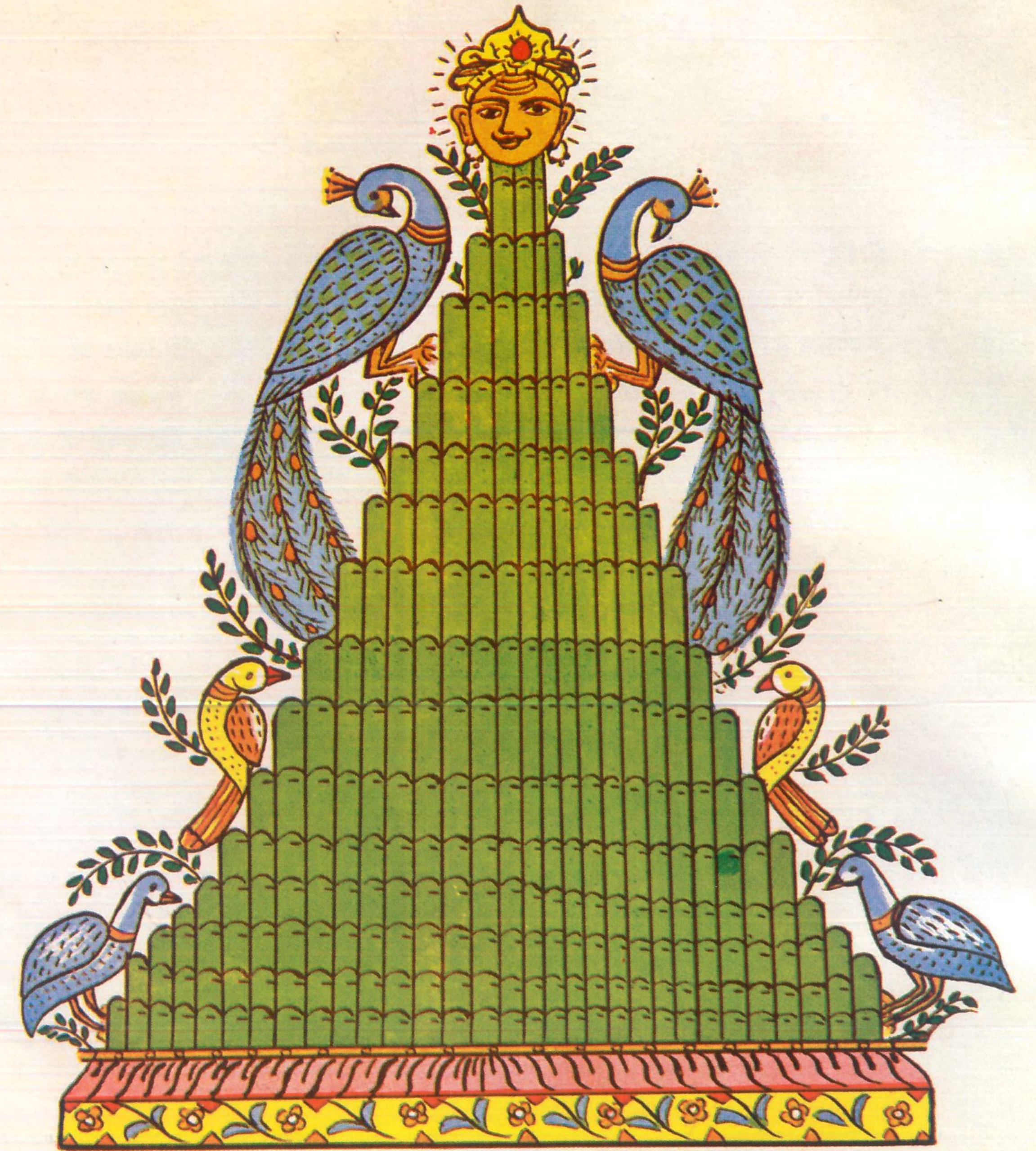
चित्र संख्या २१ को मिथिला में कोहवर घर, जो 'कोवरा घर' के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें घर के भीतर चारों कोने पर दीवाल में चित्रित करने की प्रथा चली आ रही है, जो स्त्रियों के द्वारा लोकचित्रकला के रूप में अनेक रंगों से लिखी जाती है। कोहवर घर नव विवाहित वर-वधू के व्यवहार में लाए जाने वाले घर को कहते हैं, जो अनेक तरह के चित्र तथा अन्यान्य साधनों से युक्त नव विवाहित वर बधू के निवास तथा व्यावहारिक क्रियाओं के लिए सुन्दर तथा सुरक्षित बनाया गया रहता है। ये चित्र चार स्त्रियों के रूप में चारों कोने में बनाए जाते हैं जिसे 'नयना योगिन' कहते हैं। इन चित्रों के माथे पर, कन्या को विवाहार्थ मण्डप पर संग ले जाने के लिए कोहवर घर में आए हुए वर के द्वारा, कच्ची मिट्टी का सरवा, आरत का पत्ता और सीरी सामा जिसका वर्णन आगे 'सामा' के चित्र में दिया जाएगा आदि बेसन के सहारे बारी-बारी से सटवाते हैं। इस समय स्त्रियाँ एक निश्चित मन्त्र के रूप लोकगीत गाया करती हैं और एक नव विवाहिता कन्या नयना योगिन का प्रतिनिधि रूप बन ऊपर कही सामग्रियों को बाँस की कमचियों से बनी एक डाला में लिए वर के संग चला करती है। विवाह की लौकिक विधियों में यह एक आवश्यक विधि मानी जाती है। इस प्रक्रिया से वर पर वशीकरण प्रयोग का तात्पर्य रहता है जो ब्रह्मचर्य आश्रम से निकल सहसा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए उद्यत हो आया रहता है और जिसके मन में संसार से विरक्त होने की भावना के जागरण होने की सम्भावना रहती है। इसीलिए माया के रूप चारों कोने में चार स्त्रियाँ लिखी जाती हैं जिनका तात्पर्य वर को अपनी माया के वशीभूत रखना रहता है तथा उनके माथे पर ऊपर कही गई सामग्रियों के सटवाने का तात्पर्य यह रहता है कि उसकी गृहस्थी का भार उसकी वधू अपने माथे पर धारण करेगी अर्थात् गृहकार्य का भार वह सम्भालेगी यह बात वर के दृष्टिपथ में रहे।

दूसरे रूप में ये नयना योगिन किसी के अनिष्टकारक मन्त्र प्रयोग अथवा दृष्टिदोष से विवाहित वर-वधू को बचाने के लिए चारों दिशा की चार योगिनियों के रूप लिखी जाती हैं जिससे वर-बधू का कोई घातक दृष्टि द्वारा अनिष्ट न कर सके और उनका अग्रिम जीवन सुखमय हो।





नयना योगिन



(चि.सं-२२)

बाँस



23
बाँस
(चित्र संख्या २२)

चित्र संख्या २२ के चित्र को मिथिला की स्त्रियों के द्वारा कोहवर घर के भीतर दक्षिण तरफ वाले दीवाल पर पूर्वी कोने के निकट कई तरह के रंगों से चित्रित करने की परिपाटी परम्परा से चली आ रही है। यह 'बाँस' के नाम से विख्यात है। यह चित्र अनेक बाँस के पेड़ों से युक्त बाँस के एक बीट के रूप लिखा जाता है, जिसके ऊपर सूर्य भगवान की मुखाकृति बनाई जाती है और दोनों तरफ बाँस पर बैठे कई तरह के पक्षियों के चित्र चित्रित किये जाते हैं। इस चित्र को वर-वधू के रहने की जगह कोहवर घर में लिखने का कारण यह है कि बाँस का पेड़ मिथिला में वंश-वृद्धि का द्योतक माना जाता है और इसी अभिप्राय से यह यहाँ लिखा जाता है कि जिस तह एक बाँस से ही सैकड़ों बाँस उत्पन्न हो अपनी लम्बाई तथा मोटाई में उत्तरोत्तर वृद्धि करते आकाश को चूमते रहते हैं, उसी तरह उस विवाहित वर-वधू का वंश दिनानुदिन पीढ़ी दर पीढ़ी तक बढ़ता रहे तथा उसमें उत्पन्न संतान और वंशजों का कीर्तिध्वज बाँस की ऊँचाई के सदृश ऊपर उठ सूर्य के समान चमकता रहे और उनका सुयश पक्षियों के समान उड़कर दूर-दूर तक प्रसारित होता रहे जिससे कि उस वर वधू का नाम युग-युगान्त तक अमर रहे।

इस चित्र को मिथिला में केवल हल्दी के पीले रंग से रेखा चित्र की तरह और भी कई एक शुभ अवसरों पर लिखे जाने की प्रथा चली आ रही है। यथा उपनयन संस्कार से पूर्व आभ्युदयिक के समय कुल-देवता के घर में प्रधान देहली से दक्खिन, कन्या की षष्ठिका पूजा के समय अथवा द्विरागमन (वधू के पति गृह गमन) के पश्चात् देहली के उत्तर भाग में, जिसका वर्णन पूर्व ही किया जा चुका है। इन्हीं कारणों से यह चित्र मिथिला में वैवाहिक संस्कार के अवसर पर चित्रित करना आवश्यक समझा जाता है जिसकी प्रथा प्राचीन काल से ही परम्परागत चली आ रही है।



२४
पुरैन
(चित्र संख्या २३)

चित्र संख्या २३ मिथिला में स्त्रियों के द्वारा कोहबर घर में गौरी-पूजा की जगह पूर्वी दीवाल पर वर-वधू के बैठने के स्थान के ठीक सामने लिखा जाता है। यह प्रथा परम्परा से चली आ रही है।

यह चित्र दीवाल के सजाने और सुन्दर बनाने की नीयत से अनेक तरह के रंगीन बेल-बूटों से युक्त कमल-नाल, फूल, पत्ते, तथा फल के साथ मृणाल के पेड़ का बनाया जाता है, जिसमें सबसे ऊपर चन्द्रमा की मुखाकृति का द्योतक एक सिर की रूप रेखा अंकित की जाती है तथा उसके दोनों तरफ दो मोर भी लिखे जाते हैं। इस चित्र के बीच कहीं-कहीं मछली, कछुए, घोंघे इत्यादि जल जीवों के भी चित्र चित्रित किये जाते हैं। इन सबों से युक्त मैथिल शैली का यह रंगीन चित्र मिथिला में 'पुरैन' के नाम से प्रसिद्ध है। पुरैन कमल के वृक्ष को कहते हैं और इस चित्र में कमल की प्रधानता होने के कारण ही यह पुरैन के नाम से विख्यात है। इस चित्र को गौरी-पूजा की जगह दीवाल पर चित्रित करने का तात्पर्य यह है कि कमल फूलों में सर्वश्रेष्ठ है तथा भगवती को चढ़ाने के लिए बहुत ही प्रशस्त माना जाता है। यही कारण है कि भगवती गौरी, जो सुहाग की देवी होने के नाते स्त्रियों को अत्यन्त प्रिय हैं, उनकी पूजा की जगह उनके प्रसन्नतार्थ चित्रित की जाती है।

इस चित्र को वर-वधू के बैठने की जगह दीवाल पर चित्रित करने का दूसरा तात्पर्य यह रहता है कि जिस तरह एक कमल के पेड़े को लगाने से समस्त जलाशय कमल के पेड़ से कुछ ही दिनों में व्याप्त हो जाता है और उनमें कमल के फूल विकसित हो अपनी सुगन्धि से आस-पास के स्थानों को सुवासित करते हैं, उसी तरह उन विवाहित वर-वधू का वंश प्रसारित और विकसित हो तथा उसमें उत्पन्न सन्तान कमल फूल के सदृश गुणवान हों जिससे उनका सुवास रूपी सुयश चारों तरफ फैलता और दिगदिगन्त को व्याप्त करता रहे।



पुरैन



इस चित्र में चित्रित किये गये जल जीवों से यह तात्पर्य है कि जिस तरह मछली, कछुए, आदि जल जीव कमल नाल से आच्छादित जलाशय में घातकों से निडर हो स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं, उसी तरह वधू अपने वर के मृणाल रूपी भुजाओं की छाया तले जलाशय रूपी संसार क्षेत्र में सानन्द विहार करती रहे।

इस चित्र में लिखे गये चन्द्रमा की मुखाकृति से यह तात्पर्य है कि जिस तरह चन्द्रमा की ज्योत्सना समुद्र के जल को अपने तरफ खींचती है और धारा आगे को बढ़ने लगती है उसी तरह वधू का प्रेम वर के हृदय में ज्वार का सृजन कर प्रेम की लहरें उत्पन्न करे और उसे अपनी ओर खींचे अथवा जिस तरह चन्द्रमा की कला धीरे-धीरे बढ़कर पूर्णता को प्राप्त करती है और चन्द्रमा को पूर्ण चन्द्र के रूप में परिणत करती है उसी तरह वर-बधू का प्रेम धीरे-धीरे विकसित हो पूर्ण प्रेम का रूप धारण करे और प्रेम की प्रतिमूर्ति बन जाय।

इस जगह मोर के चित्र से यह तात्पर्य रहता है कि मोरनी के प्रति मोर की तरह बधू के प्रति वर का प्रेम जागरित हो और जिस तरह मयूर मयूरनी के प्रेम में लीन हो नाचता रहता है उसी तरह वर भी बधू के प्रेम में विह्वल हो आनन्द-मग्न रहा करे।

मिथिला में ऐसे भावपूर्ण चित्र को दीवाल पर लिखने का तात्पर्य यह रहता है कि इन पर दृष्टि पड़ते रहने से वर-बधू के मन में ऊपर वर्णित बातें घूमती रहकर अपना प्रभाव डालती रहें ताकि उन पर मनोवैज्ञानिक असर हो और ये बातें आगे चलकर फलीभूत हों। इसीलिए कई एक तरह के भाव युक्त चित्र कोहवर घर की दीवालों पर चित्रित किये जाते हैं ताकि उस घर में निवास करने वाले वर-बधू उनको ध्यान से देखें और उनमें छिपे भावों का अध्ययन कर उनसे शिक्षा भी ग्रहण करें कि उनका एक-दूसरे के प्रति क्या कर्त्तव्य है।





२५
देहली पर का चित्र
(चित्र संख्या २४)

चित्र संख्या २४ को मिथिला में घर की देहलियों पर तीनों ओर दाएं, बाएं तथा ऊपर दीवाल में स्त्रियों के द्वारा लिखने की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

ये चित्र गोसाउनि घर की देहली पर काले को छोड़ केवल शुभप्रद रंगों से ही लिखे जाते हैं। परन्तु कोहवर घर की देहली पर काली लकीरों के संग भी लिखे जाने की परिपाटी है।

इस चित्र में चित्रित देहली के ऊपरी भाग में दीवाल पर लिखे जाने वाले चित्र में कमल का पेड़ अर्धविकसित तथा पूर्णविकसित पत्तों के संग कली और अर्धविकसित कली तथा पूर्णविकसित फूलों से युक्त बनाया जाता है। इसके नीचे देहली के दाएं या बायें वाले चित्र भी कलिका तथा प्रफुल्लित पुष्पों से युक्त बेले, गुलाब तथा कामिनी आदि सुगन्धित पुष्पों के पेड़ चित्रित किये जाते हैं।

सुगन्धियुक्त पुष्पों को दर्शन शास्त्रों में शुभप्रद कहा गया है; इसीलिए घर में प्रवेश करते समय शुभप्रद वस्तुओं पर दृष्टि पड़ने के लिए ही ये चित्र देहली पर चित्रित किए जाते हैं और यात्रा के समय काला रंग अशुभ होने के कारण ही कुलदेवता के घर में अङ्कित चित्र में नहीं व्यवहृत होता है।

ये चित्र वर के बैठने की जगह कोहवर घर के बरामदे पर, जिसे मिथिला में 'कोबरा घरक कोनियाँ' कहते हैं, प्रवेश द्वार कि भित्ति पर भी लिखे जाते हैं। यह 'कोबरा घरक कोनियाँ' विवाह के पश्चात् वर को अपने समवयस्क युवकों के संग बैठकर हास्य-विनोद करने के निमित्त व्यवहार के लिए दिए गए कोहवर घर के बरामदे को कहते हैं, जो विशेषत: मिथिला में उस घर का पूर्वीय बरामदा ही होता है। यह बरामदा अनेक तरह के सुन्दर और भावपूर्ण चित्रों से चित्रित कर



(चि·सं-२४)

देहली पर का चित्र



सुन्दरतापूर्वक सजाया गया रहता है, जिसमें यह चित्र भी लिखा जाता है। इस चित्र को इस जगह लिखने का यह तात्पर्य रहता है कि नवविवाहित वर का मन उस बरामदे पर बैठे-बैठे उन चित्रित फूलों की सुन्दरता पर आकृष्ट हो,उसकी वास्तविक सुगन्धि का स्मरण कर प्रफुल्लित होता रहे जिससे उसे अपनी बधू की सुन्दरता का स्मरण आए तथा उसकी तरफ चित्त आकृष्ट होता रहे। फिर बधू से मिलने कौतुकागार में प्रवेश करते समय उन पेड़ों में चित्रित किसलय तथा प्रस्फुटित पुष्पों से वह शिक्षा ग्रहण करे कि प्रत्येक कलिका एक दिन विकसित पुष्पका रूप धारण करती है। जो माली पूर्णविकसित होने से पूर्व ही फूल को कलिका-अवस्था में ही तोड़ लेता है उसे पुष्प की यथार्थ सुगन्धि, जो पूर्णविकसित होने पर ही उसमें आती है, का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए वर को भी धैर्य धारण कर समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए और युवती होने से पूर्व बधू के संग निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए, ताकि दाम्पत्य-जीवन के पूर्ण आनन्द का अनुभव प्राप्त हो सके। मिथिला की प्राचीन प्रथा में शास्त्रानुसार आठ से दस वर्ष की अवस्था में ही कन्या का विवाह करना कुछ वर्ष पूर्व तक प्रचलित था। इसीलिए यहाँ की विदुषी स्त्रियों को, अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन कर ब्रह्मचर्याश्रम से आये, परन्तु प्रणय की शिक्षा से अनभिज्ञ वर को इन साङ्केतिक चित्रों के द्वारा सब विषयों का ज्ञान कराना आवश्यक प्रतीत होता था। अपनी आदर्शरूपा श्री जानकी की तरह किशोरावस्था में ही विवाह मिथिला में इसलिए प्रचलित था कि उस समय तक कन्याओं के मन में कामवासना का स्पर्शमात्र भी नहीं रहता था और ऐसे समय उनके विवाह से यह तात्पर्य रहता था कि पत्नी अपने पति को ईश्वर का रूप मान उस पर भक्तिभाव से प्रेम करे और भाग्यवशात् सुन्दर कन्या को यदि कुरूप वर भी मिले तो वधू के हृदय में वर के प्रति अश्रद्धा का भाव जागरित न हो सके। क्योंकि युवती होने के समय तक वह भक्ति-भाव प्रेम का रूप धारण कर लेगा और तब रूप का कोई विशेष महत्त्व न रह जायेगा। क्योंकि प्रेम का रूप से कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि संसार में अपनी कुरूप-से-कुरूप सन्तान के प्रति माँ-बाप को अथवा बहन के प्रति भाई को वैसा ही स्नेह रहता है जैसा रूपवान् से रूपवान् सन्तान अथवा बहन के प्रति उसके माँ बाप अथवा भाई को रहता है या पिता के प्रति सन्तान को भाई के प्रति बहन को श्रद्धा के भाव में रहता है। जिसका कारण यह है कि बचपन से ही एक दूसरे के प्रति पारस्परिक सम्बन्ध होने की भावना उनकी आत्मा पर प्रभाव डालती रहती है। परन्तु यह भावना युवती होने पर किसी भी लड़की के मन में अपने अयोग्य अथवा कुरूप पति के सम्बन्ध में स्वाभाविक रूप से कार्य नहीं कर सकती, क्योंकि उसकी बुद्धि पूर्ण विकसित हो गयी रहती है, उसमें अपने अनुरूप अथवा अपने से भी रूपवान् और योग्य वर मिलने की अभिलाषा बलवती हो


उठती है। ऐसी परिस्थिति में वह इच्छा फलीभूत न होने पर दूसरे पुरुष की तरफ आकृष्ट होने के लिए उसका मन उसे बाध्य करता रहता है और उसके लिए अपने कुरूप पति के साथ यथार्थ प्रेम करना कठिन हो जाता है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण नई रोशनी की किन्हीं-किन्हीं लड़कियों से मिलती है जो पथभ्रष्ट हो आत्मघात तक कर लिया करती हैं। इन्हीं सब कारणों से मिथिला में ये चित्र ऐसी जगहों पर लिखने की परिपाटी चली आ रही है ताकि वर और बधू अपने-अपने कर्त्तव्य पर स्थिर रह सकें और यथार्थ दाम्पत्य-प्रेम का अनुभव कर सकें जिससे भारत की रमणियों में सतीत्व की भावना अमर रह सके।





दही का भरिया



२६
दहीं का भरिया
(चित्र संख्या २५)

चित्र संख्या २५ दही की कड़ाही को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोने वाले व्यक्ति का है, जो मिथिला में 'दहीक भरिया' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ भरिया की प्रथा युगों से चली आ रही है। इनका कार्य अपनी जिम्मेदारी में दी गई किसी वस्तु को अपने कन्धे पर ढोकर सुरक्षित रूप से एक स्थान से दूसरे निश्चित स्थान तक पहुँचाना माना जाता है। ये इन्हें एक लम्बी लकड़ी, जिसे 'पटई' कहते हैं और जो बहुधा बाँस को ही दो हिस्सों में चीर कर बनायी जाती हैं, की दोनों तरफ के छोरों पर बँधी दो रस्सी के बने सीकों के सहारे उन वस्तुओं को लटका कर तथा पटई को अपने कन्धे पर डाल बड़ी सावधानी से अपना रास्ता तय करते हैं। मिथिला में मुण्डन, उपनयन, विवाह आदि सांस्कृतिक कार्य के अवसर पर उस कार्य को, जिसे यहाँ 'करतेवता' अर्थात् कर्तव्यता कहते हैं, सम्पादित करने वाले व्यक्ति के यहाँ उसके रिश्तेदारों के यहाँ से विविध सामग्रियों को सौगात के रूप इन भरियों के ही द्वारा भेजने की परिपाटी चली आ रही है। ये भरिये निम्न वर्गों के ही लोग हुआ करते हैं। इन सामग्रियों को खास कर भरियों के द्वारा ही भेजने में एक रहस्य छिपा हुआ है, वह यह कि इस बहाने से उन गरीबों को जिन्हें कभी पेटभर अच्छा भोजन नसीब नहीं होता, सन्तुष्ट भोजन कराना। क्योंकि यहाँ की प्रथा ऐसी है कि इन भरियों को आदरपूर्वक नाना सामग्रियों द्वारा सन्तुष्ट भोजन करा 'विदाई' के रूप में उनका पारिश्रमिक दे उन्हें विदा किया जाता है। इसके अतिरिक्त भार देने का तात्पर्य उस सांस्कृतिक कार्य में कुटुम्बों के द्वारा आर्थिक साहाय्य अथवा पारस्परिक सामाजिक सहयोग से रहता है। भार पर भेजी जानेवाली सामग्रियों को ढकने की प्रथा यहाँ प्रचलित नहीं है। जिसका कारण यह है कि भार पर जानेवाली वस्तुओं को देख गाँव के सभी व्यक्ति यह समझ सकें कि सागत में कौन-कौन सी चीज किस-किस के यहाँ से मदद में भेजी जा रही है और कर्तव्यता करने वाले व्यक्ति को किस चीज की कमी रह गई है जिसकी पूर्ति करना आवश्यक होगा। मिथिला में गाँव के किसी भी व्यक्ति के यहाँ कोई सांस्कृतिक कार्य का अवसर प्राप्त होने से वहाँ के समाज का यह कर्तव्य हो जाता है कि उस कार्य को सुचारुपूर्वक सम्पन्न



करावे। इसी दृष्टिकोण से वे सामग्रियाँ इस तरह भेजी जाती हैं ताकि उस व्यक्ति को किसी वस्तु की कमी न रहने पावे और समाज उसकी पूर्ति कर दे। इस समय भी कन्या अथवा वर की विदाई के अवसर पर दही, चूरा, चावल, दाल तथा मछली, मिष्ठान्न और वस्त्र आदि सामग्रियाँ भरियों के द्वारा उनके संग भेजने की प्रथा प्रचुर रूप से देखने को मिलती है। जिसका तात्पर्य यह रहता है कि विवाह के पश्चात् कम-से-कम कुछ समय तक के लिए भी वर और बधू अपने भोजन अथवा छाजन की चिन्ताओं से निवृत्त रहें और सुखपूर्वक निश्चिन्त हो दिन बितावें।

मिथिला में यह चित्र कौतुकागार के बरामदे पर वर के बैठने की जगह सामने दीवाल पर चित्रित करने की प्रथा चली आ रही है। इस जगह इस चित्र के लिखने का आशय कौतुकागार के बरामदे की दीवाल को सजाकर सुन्दर बनाने के अतिरिक्त यह रहता है कि इस चित्र में चित्रित भाव से नव विवाहित वर यह शिक्षा ग्रहण करे कि इसी तरह उसके कन्धों पर भी सांसारिक और सामाजिक व्यवस्था के रूप गृहस्थाश्रम का बोझ डाला गया है। इसलिए उसे भी अपने कर्तव्य का ध्यान रख इस भरिए की तरह इस बोझ को वहन कर सावधानी से कदम बढ़ाते गृहास्थाश्रम-धर्म के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचना चाहिये, ताकि समाज में अपने कुल की प्रतिष्ठा उज्ज्वल रह सके। मिथिला में दही की प्रसिद्धि बहुत है। यह गाय या भैंस के दूध को उबाल कर मिट्टी के बरतन अथवा बाँस की कमचियों से बनी 'ताई' जो एक प्रकार की चँगेरे की तरह होती है, में अनेक तरह से जमाए जाते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न स्वाद होते हैं। यहाँ की यह प्रसिद्ध भोजन सामग्रियों में है और उत्तम भोजन में इसका रहना अत्यावश्यक माना जाता है।

दूसरे रूप में मिट्टी की बनी गोलाकार कड़ाही अथवा बाँस की कमचियों से बनी गोल 'ताई, जो कुछ दिन पूर्व यहाँ विशेष रूप से प्रचलित थी, में जमा श्वेत गोल तथा शीतल पदार्थ होने के नाते यह दही पूर्ण चन्द्र का प्रतीक माना जाता है जिसकी चन्द्रिका में शीतलता के अतिरिक्त संजीवनी सुधा का भी अंश है। इसीलिए शास्त्र में दही को बहुत ही शुभप्रद माना जाता है और मिथिला में यात्रा अथवा शुभकार्य के प्रारम्भ में दही से भरी कड़ाही को सामने दृष्टिपथ पर रखने की प्रथा प्रचलित है तथा भार भेजते समय दही के भरियों को सबसे आगे रखने की प्रथा चली आ रही है।

इन्हीं सब तात्पर्यों से युक्त रहने के कारण यह चित्र कोहवर घर के कोनियाँ पर चित्रित करने की प्रथा लोककला के रूप परम्परागत चली आ रही है, ताकि पुरुष अपना कर्तव्य समझ सके।





मछली का भरिया



२७
मछ्ली का भरिया
(चित्र संख्या २६)

चित्र संख्या २६ को वर के बैठने की जगह कौतुकागार के बरामदे पर दीवाल में परंपरा से स्त्रियों के द्वारा लिखने की प्रथा चली आ रही है।

यह चित्र दो मछलियों को दोनों तरफ पटई के दोनों छोरों पर लटकाये एक मनुष्य का है, जो मिथिला में 'माछक भरिया' के नाम से प्रसिद्ध है। मछली एक स्वादिष्ट भोजन-सामग्री होने के अतरिक्त शास्त्रानुसार बहुत ही शुभप्रद मानी गयी है। मिथिला में किसी भी व्यावहारिक अवसर पर इसका दर्शन अत्यावश्यक माना जाता है, इसीलिए प्रत्येक सांस्कृतिक अवसर पर दही के साथ इसका भी प्रदर्शन अवश्य ही किया जाता है। और, भार भेजते समय दही के बाद इसको स्थान दिया जाता है।

यह चित्र वर के सामने दीवाल पर लिखने की प्रथा पूर्ववर्णित तात्पर्य से ही है। मिथिला में विवाह से पूर्व कन्या के पिता पर कन्या का भार बहुत ही गुरुतर माना जाता है और किसी सुयोग्य वर के हाथ में अपनी कन्या का हाथ दे देने के बाद वह उस भार से मुक्त माना जाता है। इसीलिए यह चित्र लिखकर वर को यह आशय समझाया जाता है कि अब कन्या का भार पिता के कन्धों से अलग हो उसके कन्धों पर आया है। इसलिए उसे चाहिए कि पत्नी रूप उसके ऊपर दी गयी उस कन्या के लालन-पालन रूपी भार को ग्रहण कर संसार-यात्रा के पथ पर अग्रसर हो और दाम्पत्यजीवन के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचे।





२८

केला का भरिया

(चित्र संख्या २७)

चित्र संख्या २७ केला के भरिये का है। यह भी पूर्व वर्णित भाव युक्त होने के कारण ही कोहवर घर के कोनियाँ पर स्त्रियों के द्वारा लिखा जाता है।

केला एक बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट फल है तथा वर्ष के प्रत्येक महीने में फलता है और हर समय ताजा उपलब्ध हो सकता है। इसलिए मिथिला में प्रत्येक पर्व अथवा सांस्कृतिक त्यौहार के अवसर पर इसका रहना आवश्यक माना जाता है तथा रिश्तेदारों के यहाँ भार के रूप भेजने की प्रथा प्रचुर रूप से इस समय भी अत्यावश्यक मानी जाती है। यह चित्र मिथिला में 'केराक भरिया' के नाम से प्रसिद्ध है।





केला का भरिया



कटहल का भरिया



२९

कटहल का भरिया

(चित्र संख्या २८)

चित्र संख्या २८ के चित्र को भी वर के समक्ष कोहवर घर के बरामदे की दीवाल पर चित्रित करने की परिपाटी चली आ रही है। इसे मिथिला में 'कटहरक भरिया' कहते हैं।

कटहल बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट फल होता है तथा इसका आकार फलों में काफी बड़ा होता है जिसका वजन एक मन तक भी चला जाता है। एक पके हुए कटहल से कई मनुष्यों को पेट भर सन्तुष्ट भोजन कराया जा सकता है। इसके प्रत्येक अवयव से पच्चीस-तीस प्रकार की नमकीन तथा मीठी खाद्य-सामग्रियाँ मिथिला में तैयार की जाती हैं जो भिन्न-भिन्न स्वादों में बहुत ही स्वादिष्ट होती हैं। यह फल बहुतायत से मिलता है इसलिए यहाँ इसका व्यवहार प्रचुर रूप से किया जाता है। इस चित्र को उस जगह चित्रित करने का तात्पर्य पूर्व वर्णित ही है। इसके अतिरिक्त इस चित्र को उस जगह चित्रित करने का यह आशय भी रहता है कि वर को इस बात का उपदेश मिले कि जीवन-यात्रा के समय बड़ा-से-बड़ा संकट अथवा भीड़ उपस्थित होने पर भी वह धैर्यपूर्वक पैर को स्थिर रख इस भरिये की तरह आगे बढ़े जिससे कि अपने लक्ष्य तक पहुँच सके।





३०

मोर का चित्र

(चित्र संख्या २९)

चित्र संख्या २९ नाचते हुए मोर का है, जिसे मिथिला में 'मयूरक चित्र' कहते हैं। इसे भी वर के समक्ष कौतुकागार के बरामदे पर दीवाल में अङ्कित करने की प्रथा चली आ रही है।

यहाँ की स्त्रियों के द्वारा कपड़े की बनी तूलिका से इस सुन्दर चित्र को उस जगह चित्रित करने का कारण यह है कि पक्षियों में मोर बहुत ही सुन्दर होता है और प्रेमी का प्रतीक माना जाता है। इसलिए दीवाल को सजाने के अतिरिक्त इस चित्र का आशय यह रहता है कि जिस तरह मोर सावन की काली घटाओं को देख मोरनी के प्रेम में विह्वल हो नाचा करता है और तरह-तरह की क्रीड़ाओं द्वारा मोरनी रूपी अपनी प्रेमिका को रिझाने की चेष्टा करता है उसी तरह नव-विवाहित वर का भी मन मयूर वधू रूपी अपनी प्रेयसी की अलकावलियों को देख प्रेमविभोर हो नाचने लगे तथा नाना प्रणय-क्रीडाओं द्वारा उसे प्रसन्न कर सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करे, ताकि दोनों का जीवन सुखमय बीते और दोनों पक्षियों की तरह संसार में स्वच्छन्दतापूर्वक रमण और विचरण कर सकें।

इन्हीं कारणों से लोक-चित्र-कला के रूप इस चित्र को उस जगह की दीवाल पर चित्रित करने की प्रथा चली आ रही है।





मोर का चित्र



आम का पेड़



३१

आम का पेड़

(चित्र संख्या ३०)

चित्र संख्या ३० पके हुए फलों से भरे आम के वृक्ष का है। इसे कोहवर घर के बरामदे पर वर के बैठने की जगह के सामने दीवाल पर चित्रित करने की प्रथा चली आ रही है।

आम एक अति स्वादिष्ट और मीठा फल है। यह मिथिला का एक प्रधान फल माना जाता है। यह फल अपने मौसम में यहाँ काफी संख्या में फलता है तथा इसे खाकर यहाँ के निवासी कुछ दिनों तक अपना निर्वाह तथा पोषण सुखपूर्वक कर लेते हैं। क्योंकि उस समय किसी न किसी रूप में यह फल गरीब से अमीर सभी को अर्थात् यहाँ की आम जनता को प्राप्त होता है। इसीलिए इस फल का नाम भी आम ही कहा जाता है। इस चित्र को उस जगह चित्रित करने का तात्पर्य यह है कि उस बरामदे पर बैठनेवाले वर को इस बात का संकेत मिलता रहे कि जैसे वृक्ष की शोभा मीठे फल लगने से ही है, उसी तरह दम्पति की शोभा गुणवान सन्तान उत्पन्न करने में ही है। जिस तरह यह आम का पेड़ मीठे और सुस्वादु फलों के रूप आम को उत्पन्न कर तथा संसार के मनुष्यों को प्रदान कर उन्हें तृप्त करता है उसी तरह वे भी ऐसी सन्तान उत्पन्न करें जो समाज और देश को अपनी सेवा प्रदान कर सन्तुष्ट कर सकें। उस बरामदे पर लिखे जाने वाले मीठे और स्वादिष्ट फलों से भरे इस पेड़ का दूसरा तात्पर्य यह भी रहता है कि वर और बधू के प्रेम में इन्हीं फलों की तरह माधुर्य उत्पन्न हो। शास्त्रों ने मीठे फलों के दर्शन से मीठे फल की प्राप्ति होना बतलाया है; इस कारण भी फलों के चित्र सामने दीवाल पर चित्रित करने की परम्परा से प्रथा चली आ रही है। इन्हीं सब कारणों से मैथिल शैली के ये चित्र वर के सामने चित्रित किये जाते हैं।



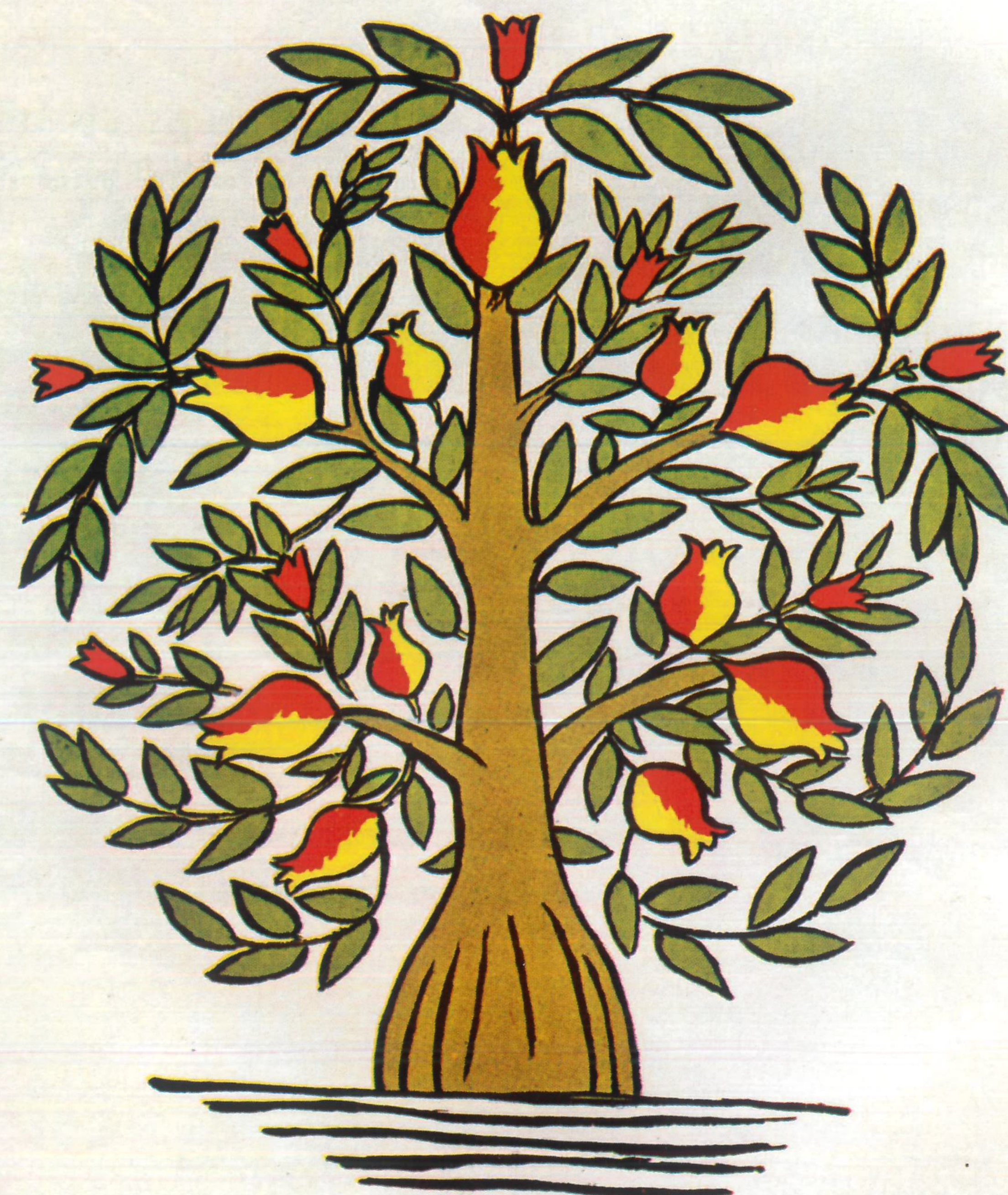


32
अनार का पेड़
(चित्र संख्या ३१)

चित्र संख्या ३१ फलों से युक्त अनार के पेड़ का है। मिथिला में अनार 'दारिम' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पेड़ के चित्र को यहाँ 'दारिमक गाछक चित्र' कहते हैं। यह चित्र भी यहाँ की स्त्रियों के द्वारा वर के बैठने की जगह कौतुकागार के बरामदे पर चित्रित करने की प्रथा चली आ रही है। इसके चित्रण का भी आशय पूर्व वर्णित ही है। उसके संग इसका दूसरा तात्पर्य यह भी है कि जिस तरह अनार अपने रस से पूर्ण होने पर आनन्द से अपनी बीज रूपी दन्त-पंक्तियों को निकाल कर विहुँस उठता है उसी तरह वर-वधू का प्रणय पूर्णता को प्राप्त कर खिल उठे। तथा जिस तरह अनार रस से पूर्ण होने पर आनन्द से विहुँस अपने रसास्वादन करने वालों को आह्लादित कर आह्वान करता है उसी तरह पूर्णयुवत्व को प्राप्त करने पर लड़कियाँ स्वयं उपभोग के लिए आह्लादित हो पुरुषों का आह्वान करेंगी; इसलिए अभिज्ञों की तरह वर को भी समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए अन्यथा दाम्पत्य की पूर्ण आनन्द प्राप्ति से वह वञ्चित रहेगा। इसके अतिरिक्त इस पेड़ के काष्ठ में सावर तन्त्र के मत से वशीकरण शक्ति भी मानी जाती है जिसके कारण वशीकरण प्रयोग करने वाले इसकी छड़ी को बहुधा हाथ में रखते हैं।

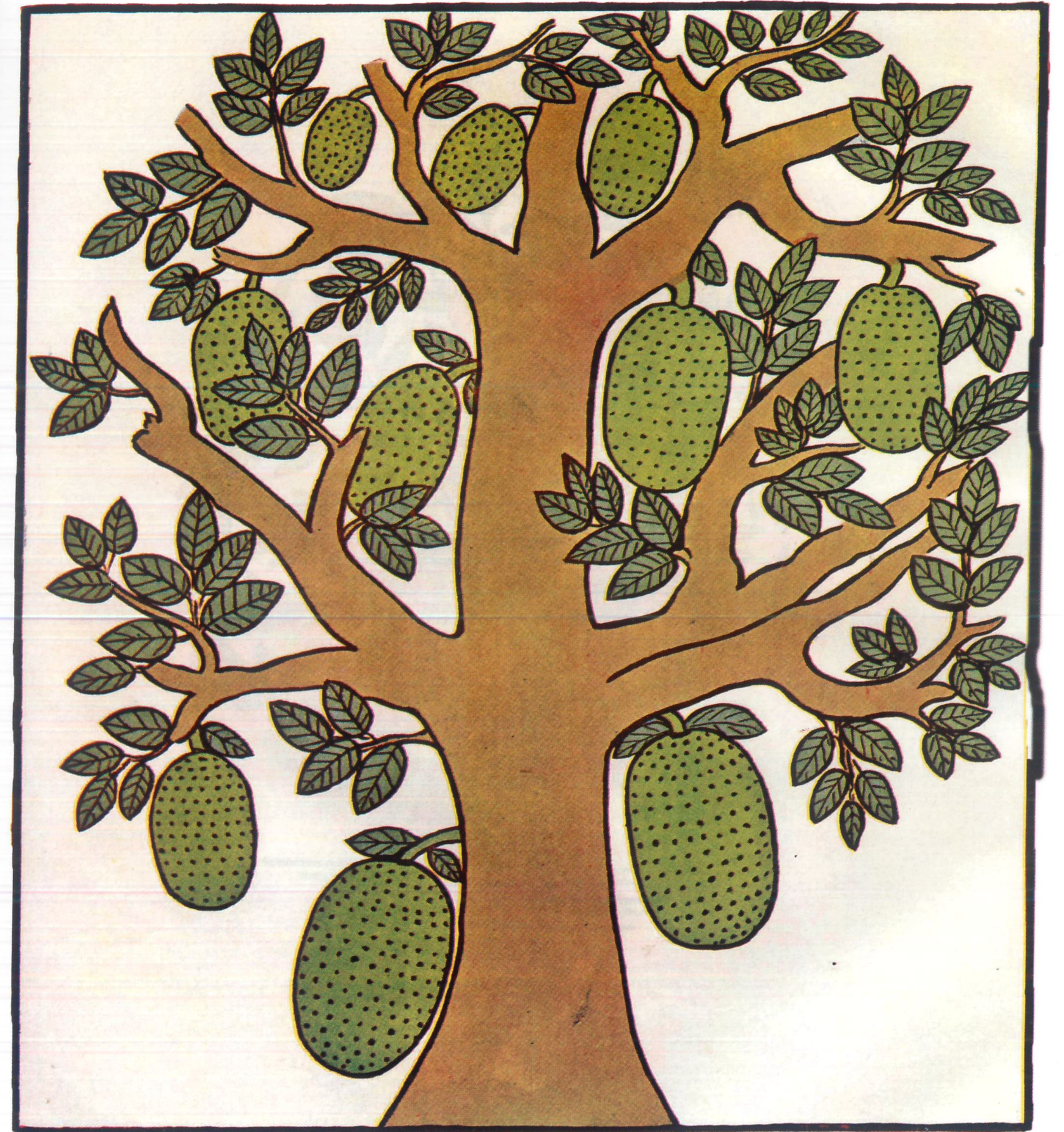
इन्हीं सब तात्पर्यों से युक्त रहने के कारण यह चित्र यहाँ की विदुषियों के द्वारा वर-वधू की कल्याण-कामना से इन दीवालों पर चित्रित किये जाते हैं।





(चि.सं- ३१)

अनार का पेड़



(चि·सं· ३२)

कटहल का पेड़



33

कटहल का पेड़

(चित्र संख्या ३२)

चित्र संख्या ३२ कटहल के पेड़ का है। कटहल का पेड़ बहुत ही उपयोगी होता है। इस पेड़ की लकड़ी जिसका रंग सूखने पर हलका पीला हो जाता है काष्ठ की सामग्रियाँ बनाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस लकड़ी से बनी सामग्रियों को आकर्षक बनाने के निमित्त ऊपर से लेप करने के लिए वार्निश के संग किसी रंग को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि इसका रंग स्वयं ही आकर्षक तथा स्थायी होता है जिस कारण मिथिला में इसकी आलमारी, चौकी आदि अनेक व्यावहारिक सामग्रियाँ बनायी जाती हैं।

मिथिला में इस पेड़ के पत्ते का भी उपयोग किया जाता है। मोटे और चिकने गाढ़े हरे रंग के ये पत्ते पितरों के निमित्त पार्वण तथा वार्षिक एकोद्दिष्ट के समय मधु, घृत आदि तरल पदार्थों को रखने के निमित्त दोना बनाने के काम में आते हैं। शास्त्र ने भी पितरों के इन कर्मों में इस पत्ते का ही व्यवहार करना लिखा है।

यह चित्र भी लोककला की तरह कोहवर घर के बरामदे पर ही पूर्व के चित्र में वर्णित तात्पर्यों से ही लिखा जाता है जिसका फिर वर्णन करना पाठकों का समय नष्ट करना है। उन बातों के अतिरिक्त प्रत्येक कटहल फल के भीतर रहने वाले कोए में सिर्फ एक कोआ सर्प-दंश के विष को नष्ट करने की शक्ति रखता है। जिसका कारण सर्प-दंश के विष से पीड़ित मनुष्य को एक छोटे से कटहल के पूरे कोए को खिलाने की प्रथा चली आ रही है, क्योंकि विषनाशक कोए को पहचानना कठिन होता है। इस चित्र को मिथिला में 'कटहरक गाछक चित्र' कहते हैं।





३४
गोपी चीरहरण लीला
(चित्र संख्या ३३)

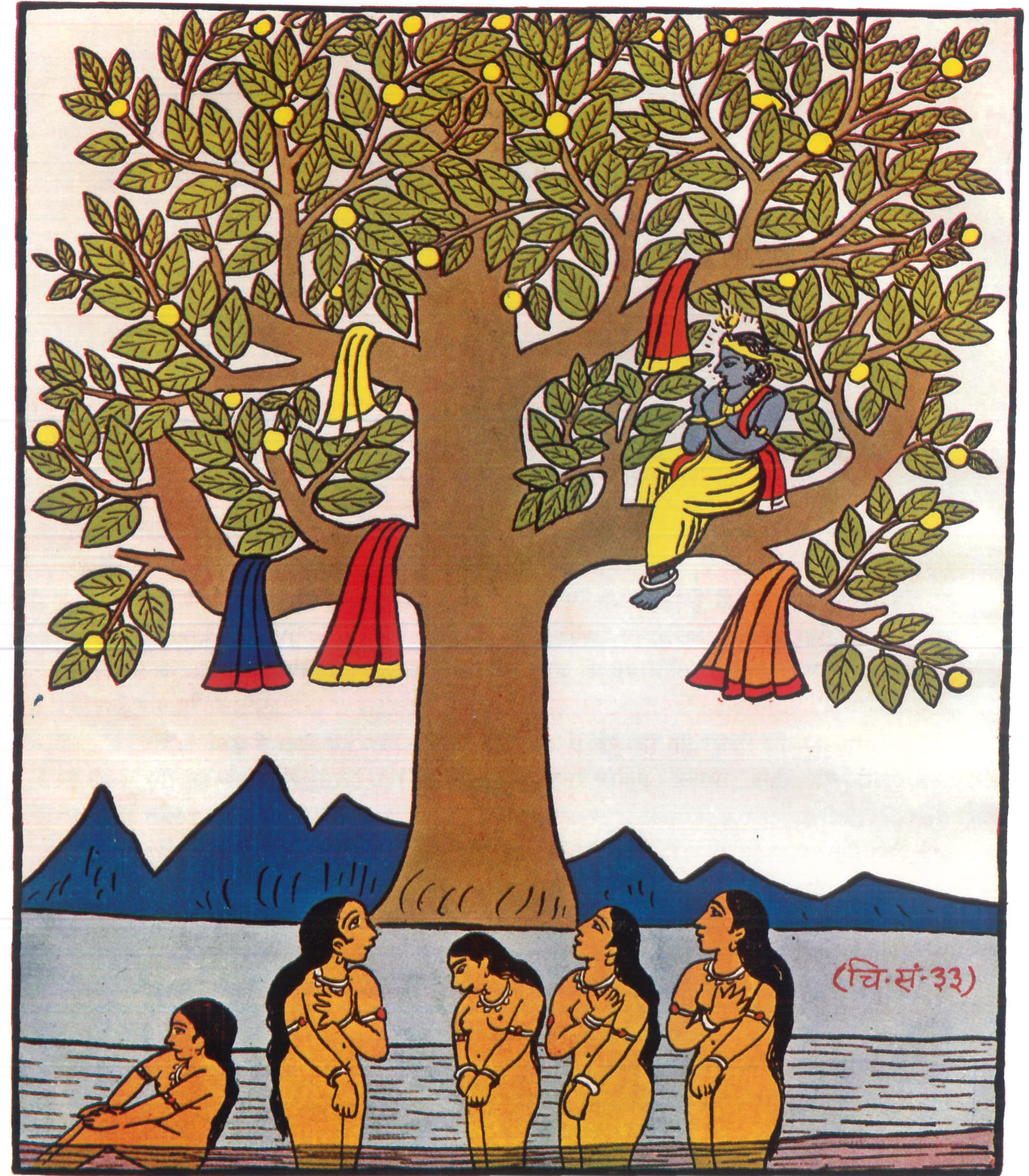
चित्र संख्या ३३ का चित्र भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा गोपियों के चीरहरण का है, जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण में आया है। इस चित्र में दिखाया गया है कि अपने वस्त्रों को उतार नग्न हो यमुना नदी में नहाती हुई गोपियों के वस्त्रों को प्रेमलीला करने वाले श्रीकृष्ण ने चोरी से उठाकर कदम्ब के पेड़ की डालों पर लटका दिया तथा स्वयं उसी पेड़ की डाल पर बैठ उन गोपियों के जल से निकलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, और गोपियाँ जल से निकलने पर वस्त्र के अभाव में सलज्ज भाव से खड़ी हैं।

यह चित्र कौतुकागार के बरामदे पर नव विवाहित वर के बैठने के स्थान के सामने दीवाल पर चित्रित करने की प्रथा मिथिला में चली आ रही है।

इस जगह इस चित्र को चित्रित करने का तात्पर्य यह रहता है कि ब्रह्मचर्याश्रम से आए हुए प्रणय की शिक्षाओं से अनभिज्ञ वर को प्रेमी तथा प्रेमिका की सांसारिक प्रणय-क्रीड़ाओं का ज्ञान प्राप्त हो जिससे वह संकोच रहित हो अपनी प्रेमिका रूपी वधू के संग प्रेमालाप तथा अन्य प्रणय-सम्बन्धी क्रीड़ायें कर सके।

सलज्ज भाव से खड़ी इन नग्न गोपियों के चित्रण से वधू को यह शिक्षा देने का तात्पर्य रहता है कि स्त्रियों को संसार के समक्ष सदा संकोच बनाये रहना चाहिये अन्यथा इन्हीं गोपियों की तरह उन्हें भी लज्जित होना पड़ेगा।

इस चित्र का दूसरा तात्पर्य यह भी है कि गोपियाँ रूपी स्त्रियों को यमुना नदी रूपी प्रेमसागर में स्नान कर वस्त्र रूपी लज्जा से मुक्त हो श्रीकृष्ण रूपी अपने स्वामी के चरणों में रत रहना चाहिए ताकि पर्वत रूपी संसार के कदम्ब वृक्ष रूपी गृहस्थाश्रम में सुगन्धित कदम्ब फूल रूपी सुन्दर सुबुद्धि युक्त सन्तानें प्राप्त हो सकें जिससे जीवन सुखमय तथा सम्पन्न बीते।



गोपी चीरहरण लीला



इस चित्र का तीसरा तथा सबसे गूढ़ तात्पर्य यह है कि ये पाँचों नग्न मूर्तियाँ पञ्चतत्त्वों के रूप बनाई गई हैं और जल से भरी यमुना भक्ति-सागर के रूप में। ये छह शिखरों से युक्त पहाड़ षट् ऋतुओं से युक्त पृथिवी के रूप में तथा यह वृक्ष संसार के रूप में और कदम्ब फूल सांसारिक कर्म-फलों के रूप में बनाए गए हैं। इस चित्र में चित्रित वस्त्र लज्जा आदि पञ्च माया के रूप में बने हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर के रूप में बनाए गए हैं। जिन सबों का यह तात्पर्य है कि पञ्च मूर्तियों के रूप पञ्च तत्त्वों से बना यह भौतिक शरीर यमुना रूपी भक्ति-सागर में स्नान कर वस्त्र रूपी माया से मुक्त हो पर्वत रूपी पृथिवी पर इस वृक्ष रूपी संसार के कदम्ब-फूल रूपी आनन्दप्रद फलों का उपभोग कर श्रीकृष्ण रूपी परब्रह्म में लीन हो जाता है।

इन्हीं सब आशयों से युक्त रहने के कारण यह चित्र मिथिला में लोक चित्रकला के रूप स्त्रियों के द्वारा वैवाहिक अवसरों पर उस जगह चित्रित करने की परम्परा से प्रथा चली आ रही है। जो यहाँ 'कदम्ब लीला का चित्र' के नाम से प्रसिद्ध है।





तृतीय खण्ड
चलपदार्थों पर चित्र
३५
कुमारियों का प्रसाधन
(चित्र संख्या ३४)

चित्र संख्या ३४ में मिथिला की कुँआरियों के भाल पर चित्रित किए जाने वाले प्रसाधन का चित्र दिखाया गया है, जो यहाँ 'कुमारिक पसाहनि' के नाम से प्रसिद्ध है। यह चित्र बचपन से लेकर विवाह के समय वर के हाथ से माँग में, जो मिथिला में 'सौंथि' के नाम से प्रसिद्ध है, सिन्दूर भरे जाने के समय तक कन्याओं के कपाल पर लिखे जाने की प्रथा परम्परागत चली आ रही है।

प्राचीन समय में मिथिला में चित्रकला इतने ऊँचे स्तर तक पहुँची हुई थी कि यहाँ की प्राय: प्रत्येक वस्तु में इस कला का समावेश रहता था, यहाँ तक कि मनुष्य के शरीर पर भी अनेक रंगों से चित्र चित्रित किए जाते थे, जो अभी तक चली आ रही है और मिथिला की बालाओं तथा ललनाओं के कपाल पर अब भी देखने को मिलती है। यद्यपि नई रोशनी के लोग इसका रहस्य न समझने के कारण इसे उपहास की दृष्टि से देखने लगे हैं, परन्तु भाल को सजा कर सुन्दर बनाने के अतिरिक्त इसमें बहुत ही गूढ़ वैज्ञानिक रहस्य है। यह चित्र केवल उजला, पीला, नीला और लाल रंग से ही लिखने की प्रथा चली आ रही है। जिसमें कुमारियों के प्रसाधन में लाल रंग केवल नासिका के मूल भाग दोनों आँखों के बीच में ही दिया जाता है तथा उजला पीला और नीला का व्यवहार भाल पर विशेष रूप से किया जाता है जिसमें उजला के स्थान पर खली का व्यवहार करना प्रचलित है। भाल से शरीर की प्राय: सभी शिराओं का सम्बन्ध है, जहाँ से उनके द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग में उष्णता अथवा शीतलता पहुँचाई जा सकती है। इन रंगों का द्रव्यगुण आयुर्वेद के मत से शीतल है तथा 'आयुर्वेद संग्रह' और 'निघण्टु' के मत से खली और नील में रुधिर-विकार, विषव्रण तथा शिरोरोग के विनाश की शक्ति है। 'खटिका दाहजिच्छीता मधुरा विषशोथजित्'। नीले रंग में ठण्डापन रहने के कारण ही दीवाल तथा ऐनक में विशेष रूप से अमीरों के घर तथा आँखों पर व्यवहृत होता है।



(चि॰सं॰३४)

कुमारियों का प्रसाधन



यह शरीर में ठण्डक पहुँचाने के लिए औषधि के रूप में भी गाँवों में व्यवहार किया जाता है। यथा गर्मी के कारण पेशाब रुक जाने पर नील रंग को पानी में घोल कर पेड़ू पर इसका लेप करते हैं, जिससे शीघ्र ही पेशाब उतर आता है। इन्हीं सब कारणों से विवाह से पूर्व कुमारियों के शरीर तथा चित्त को शीतल तथा शान्त रखने के लिए यह चित्र उनके भाल पर लिखने की प्रथा चली आ रही है। इस चित्र में लाल रंग की जगह सिन्दूर का व्यवहार किया जाता है, जो कुमारियों के लिए विवाह से पूर्व भाल पर धारण करना शास्त्रों में निषिद्ध माना गया है। इसीलिए इसका व्यवहार इस चित्र में भाल पर नहीं कर नासिका-मूल पर ही किया जाता है।





३६

सुहागिनों का प्रसाधन

(चित्र संख्या ३५)

चित्र संख्या ३५ में विवाह हो जाने के पश्चात् सुहागिनों के भाल पर लिखे जाने वाले चित्र का चित्रण किया गया है। यह मिथिला में 'सुहागिनक पसाहनि' के नाम से प्रसिद्ध है। इस चित्र में भी पूर्व वर्णित चित्र की तरह केवल उजला, नीला, पीला और लाल का ही व्यवहार किया जाता है, जिसमें उजले के स्थान खली, पीले के स्थान 'पियौरी' (पीतचन्दन) तथा लाल के स्थान में सिंदूर का ही व्यवहार किया जाता है। पीत चन्दन का द्रव्यगुण शीतल है, इसलिए यह भाल को शीतल रखने के लिए कपाल में लगाना आवश्यक माना जाता है। इस चित्र में सिन्दूर का ही विशेष रूप से व्यवहार किया जाता है। ऊपरी भाग में सिन्दूर की रेखायें देना अत्यावश्यक माना जाता है। जैसा कि इस चित्र में दिखाया गया है। लाल रंग प्रेम का द्योतक माना जाता है तथा इसमें गौरी-शंकर की शक्ति भी मानी जाती है क्योंकि लाल सिमरिफ से बने सिन्दूर में श्वेत पारे का अंश रहता है जो शक्ति और शिव का प्रतीक है। इन्हीं तत्त्वों से युक्त रहने के कारण यह शरीर के उत्तम अंग माथे पर और ललाट पर विवाह के पश्चात् धारण करने की प्रथा चली आ रही है। 'कुमारीतन्त्र' के अनुसार भी भाल पर सिन्दूर धारण करना स्त्रियों के लिए अत्यावश्यक है।

'ततः स्त्रीवेशधारी स्यात् सिन्दूराङ्कितभालकः।

शृङ्गारोज्ज्वलवेशाढ्यास्ताम्बूलपूरिताननः।।'

जिसका तात्पर्य यह है कि स्त्री का वेश धारण करने में भी भाल पर सिन्दूर का होना आवश्यक माना गया है। इसी कारण शक्ति-उपासक जो मिथला में अधिकांश लोग हैं, स्त्री का अनुकरण करने के लिए ही अपने-अपने भाल पर सिन्दूर-बिन्दु अथवा उसकी जगह रक्त चन्दन का बिन्दु धारण करते आये हैं। मिथिला में कपाल को शीतल रखने के लिए ही पुरुषों के भाल पर



(चि.सं.३५)

सुहागिनों का प्रसाधन



श्रीखंड चन्दन के तिलक लगाने की परिपाटी चली आ रही है। उसी प्रकार स्त्रियों के भाल को भी शीतल रखने के लिए इन रंगों से चित्रित करने की प्रथा प्रचलित है। इसके अतिरिक्त 'रसराज सुन्दर' के निम्नलिखित श्लोक के अनुसार सिन्दूर में कुष्ठ आदि विष-व्रण-रोगों के विनाश की शक्ति है इसीलिए कपाल में जहाँ से शरीर की सब शिराओं का सम्बन्ध है इस चित्र में इसका विशेष रूप में प्रयोग किया जाता है ताकि किसी संक्रामक रोग का आक्रमण न हो सके।

'सिन्दूरमुष्णं विसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम्।
भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम्।।'

इन चार रंगों को भाल पर धारण करने का दूसरा तात्पर्य यह भी है कि सृष्टि के प्रभावशाली ग्रह प्रसन्न रह कल्याणकारक फल प्रदान करें। क्योंकि लाल रंग का सिन्दूर रत्नों के राजा माणिक का प्रतीक होने से रवि ग्रह को प्रिय है, जो आरोग्य रखने वाले हैं। उजला हीरा का प्रतीक होने के नाते शुक्रग्रह को पसन्द है जो सर्वसिद्धिप्रद हैं। पीला पोषराज का प्रतीक होने के कारण गुरुग्रह अर्थात् बृहस्पति को प्रिय है, जो धन प्रदान करने वाले हैं और नीला नीलम का प्रतीक होने से शनि-ग्रह को प्रिय है जो वय:स्थापक हैं।

ये प्रसाधन रूपी चित्र तिनकों के सहारे इन रंगों से यहाँ की स्त्रियों के द्वारा चित्रित किए जाते हैं। उस समय भाल पर चित्रित करानेवाली लड़की को करीब घण्टा भर निश्चल मूर्तिवत् बैठना पड़ता है। इस क्रिया के द्वारा यहाँ की चञ्चलचित्त बालिकाओं को दाम्पत्य जीवन के समय पतिभक्ति में एकाग्रता तथा गृहस्थी के कार्यों में स्थिरचित्त रहने की शिक्षा भी दी जाती है; जिससे कि उनका अग्रिम जीवन सुखमय हो।

मिथिला के प्रत्येक व्यावहारिक कार्य में सामाजिकता के संग धर्म के रूप आध्यात्मिक भाव छिपे हैं जिनका आधार वैज्ञानिक तत्त्वों पर है।

इन्हीं सब कारणों से मिथिला में प्रसाधन के रूप मैथिल शैली का यह चित्र लिखने की परिपाटी चली आ रही है।





३७

चान डाला

(चित्र संख्या ३६)

चित्र संख्या ३६ मिथिला में वैवाहिक अवसर पर व्यवहार में लाये जानेवाले 'चान डाला', जिसे कहीं-कहीं 'जान डाला' भी कहते हैं, का है जो बाँस की कमचियों से बने गोलाकार थाल की तरह डलिए में मिट्टी पोत पिठार की सफेदी लगा अनेक प्रकार के रंगों से चित्रित कर बनाया गया रहता है। इसके ऊपर मिट्टी की बनी 'ठग' और 'बगुले' की दो मूर्तियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें मिथिला में 'ठक' और 'बक' कहते हैं। यह चान डाला विवाह करने के निमित्त पालकी पर सवार आए हुए वर को, मण्डप के पूर्व उत्तर कोने पर रुकते ही सर्वप्रथम दिखाया जाता है। इसके बाद अन्य विधियाँ सम्पादित की जाती हैं। इस डाला को सर्वप्रथम दिखाने का तात्पर्य यह रहता है कि वर जो ब्रह्मचर्याश्रम को छोड़ गृहस्थाश्रम रूपी संसार में प्रवेश करने की इच्छा से विवाह करने के निमित्त उद्यत हो आया रहता है, इस डाला को ध्यान से देख इस बात की शिक्षा ग्रहण करे कि वह अब उस विचित्र संसार में प्रवेश करने जा रहा है जहाँ अनेकों प्रकार के ठग रंग-बिरंगा माया-जाल फैलाए मछलियों को निगलने के लिए बगुले की तरह ध्यान लगाए बैठे रहते हैं, जो उसे अपने जाल में फँसा पथभ्रष्ट करने की चेष्ट करेंगे। इसलिए उसे उन ठगों से होशियार हो बुगुले की तरह ही सावधानी से अपना कदम आगे बढ़ाना चाहिए ताकि निर्विघ्न अपने लक्ष्य तक पहुँच सके।

इन्हीं कारणों से संसार रूपी गोलाकार डाला को मायाजाल रूपी रंग-बिरंगे चित्रों से चित्रित कर और उस पर ठग तथा बगुले की मूर्ति रख इस समय भी मिथिला में विवाह के अवसर पर वर को दिखाने की परिपाटी व्यावहारिक रूप से चली आ रही है। इस चानडाला का निर्माण यहाँ की स्त्रियों के द्वारा ही होता आया है, जो इस विधि का सम्पादन कराना भी अत्यावश्यक मानती हैं।





चान डाला



मण्डप पर का हाथी



३८

मण्डप पर का हाथी

(चित्र संख्या ३७)

चित्र संख्या ३७ मिथिला में बालकों के उपनयन अथवा कन्याओं के विवाह के अवसर पर मण्डप, जिसे 'चौकी' अथवा 'मण्डप' कहते हैं, उस पर बरुआ अथवा वर-वधू के बैठने के स्थान के ठीक सामने आचार्य के आगे अथवा कन्यादाता के पीछे पूरब तरफ रखे जाने वाले पीठ पर के ऊपर की एक पार्थिव आकृति के संग दो चित्रित कलशों से युक्त, मिट्टी के हाथी का है, जिसे यहाँ 'माड़व परहक हाथी' कहते हैं। इसकी बायीं तरफ नीचे दो भिन्न-भिन्न आकृतियों के मिट्टी के बर्तनों के चित्र अनेक रंगों से चित्रित बनाये गये हैं, जिसका उस स्थान में रखना अत्यावश्यक माना जाता है। यह मिथिला में 'पुरहर-पातिल' के नाम से विख्यात है।

मण्डप पर इन सबों के रखने का तात्पर्य यह रहता है कि किसी भी शुभ अवसर में श्री गणेशजी की उपस्थिति मिथिला की संस्कृति में अत्यावश्यक मानी जाती है और गजानन होने के नाते यह हाथी उन्हीं का प्रतीक माना जाता है; इसीलिए उपनयन अथवा विवाह के शुभ अवसर पर इसका सामने रखा जाना अत्यावश्यक माना जाता है।

दूसरे दृष्टिकोण से इन कलशों से युक्त हाथी के रखने का यह भी तात्पर्य है कि जिस तरह हाथी तनिक भी असावधानी के कारण किसी क्षण में नीचे गिर कर टूटने वाले बोझे को पीठ पर धारण किये सीना ताने अपने मार्ग पर अग्रसर हो स्थिरतापूर्वक अपना रास्ता तय करता है और अपने लक्ष्य तक पहुँचता है, उसी तरह यह यज्ञोपवीत धारण करने वाला बालक ब्रह्मचर्याश्रम के नियम तथा गुरु की आज्ञा के पालन का गुरुतर भार अपने ऊपर धारण कर अडिग रह अपने कर्त्तव्य का पालन करता ब्रह्मचर्याश्रम के लक्ष्य तक पहुँचे, जिससे सर्वशास्त्रों का ज्ञाता बन वह प्रकाण्ड पण्डित हो सके तथा वर और वधू उस विपुल गृहस्थी का बोझ जिसे वे विवाह के द्वारा ग्रहण करने जा रहे हैं, अनायास सुखपूर्वक वहन करते हुए संसार के कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ें और गृहस्थाश्रम के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचें। इस चित्र में सबसे ऊपर त्रिकोणाकार एक पार्थिव आकृति भी है जो श्री शक्ति की परिचायिका है और गृहलक्ष्मी का भी गृहस्थी में सर्वोपरि स्थान का द्योतक



है, तथा उसके नीचे वाले पक्षियों की आकृति गृहस्थी के परिवार के रूप दी जाती है।

हाथी के बगल में रखे जाने वाले 'पुरहर' जो आम्र पल्लव से युक्त और 'पातिल', जिसके भीतर दीप जलता रहता है तथा जिसका मुँह एक ढक्कन के द्वारा ढका रहता है, गौरी-शंकर के प्रतीक माने जाते हैं। क्योंकि 'पुरहर' आदि देव शंकर का नाम है और 'पातिल' शब्द पतिला शब्द का विकृत रूप है। अत्यन्त कठोर तपस्या के पश्चात् शंकर को पति रूप में प्राप्त करने के कारण गौरी का नाम 'पतिला' पड़ा। इस तरह पातिल गौरी का प्रतीक है। इसीलिए पुरहर (वर का प्रतीक) दाहिनी ओर और पातिल (वधू का प्रतीक) बाँयीं ओर रखा जाता है। अत: 'पुरहर पातिल' का संयुक्त रूप पार्वती-परमेश्वर के संयुक्त रूप का द्योतक है। शंकर कल्याण करने वाले हैं, पार्वती जन्मदाता हैं तथा भारतीय सती नारियों का आदर्श हैं। अतएव 'पुरहर-पातिल' अटल सौभाग्य, जन्मजन्मान्तरिक प्रेम, अनन्त कल्याण, अद्वितीय सतीत्व और अपूर्व वात्सल्य का प्रतीक है।

इन दोनों पात्रों का चित्रित होना "कृष्ण जन्म खण्ड" के निम्नलिखित वचन के अनुसार विहित है-

'रत्नेन चित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः।
अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रैश्च चित्रितैः।।'

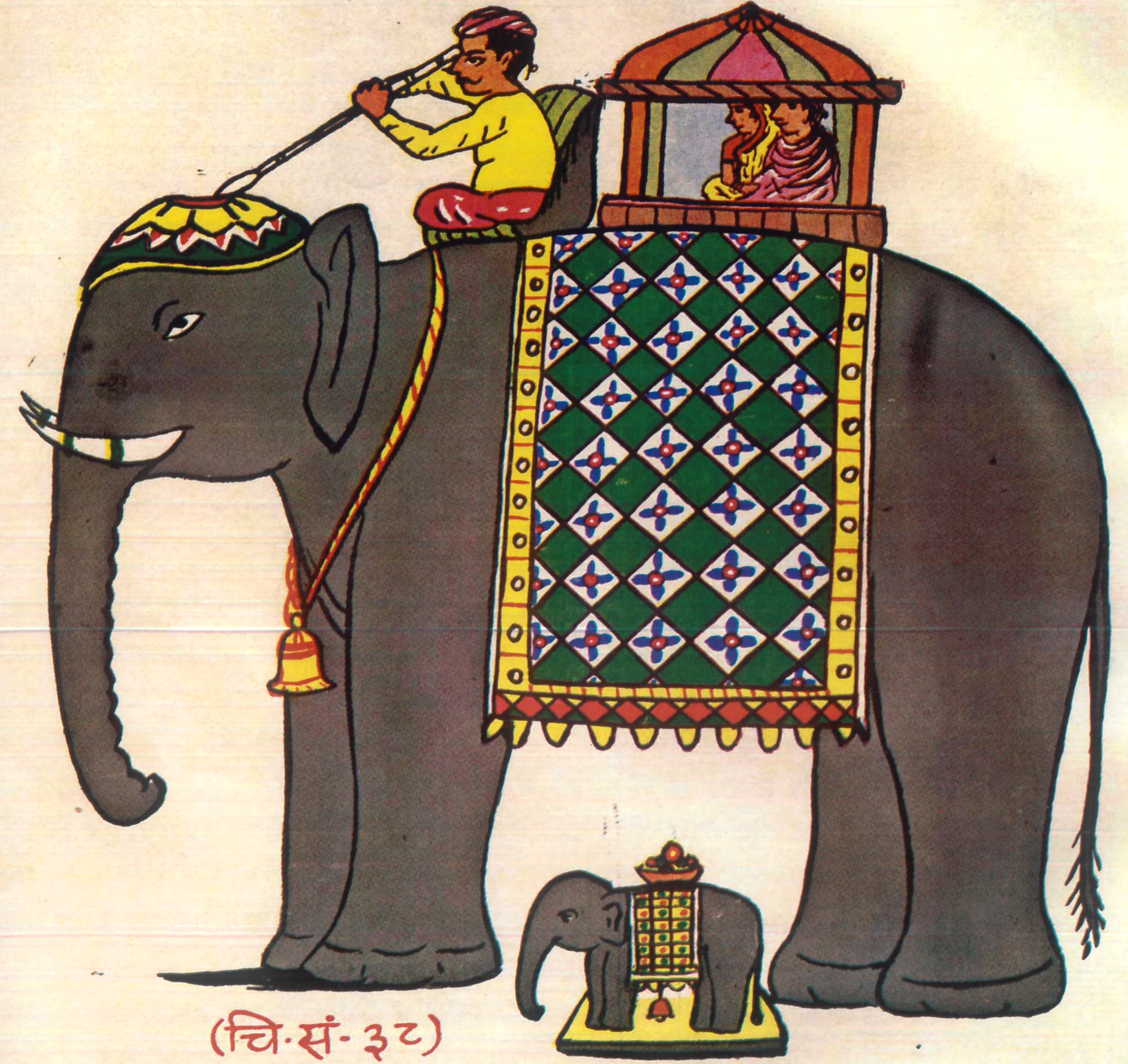
पुरहर में पल्लव रखना शास्त्रों में वर्णित पल्लवयुक्त कलश के शुभप्रद होने के साथ दूसरे तात्पर्य से वर के हृदय में वधू का प्रेम हमेशा पल्लवित रहे इस बात का भी द्योतक है और पातिल का दीप जो 'रातिम' अथवा चतुर्थी कर्म के चार दिनों तक अनवरत दीप्त ही रखा जाता है 'बरुआ' के हृदय में दिव्य ज्ञान को उद्दीप्त अथवा वधू के हृदय में वर के प्रति एकाङ्गी प्रीति को उज्जवल रखने का बोधक है। इस दीप के अखण्ड रखने का तात्पर्य यह भी है कि वधू का सुहाग हमेशा अखण्ड बना रहे।



पातिल के ऊपर का ढक्कन सामान्य दृष्टि से तो दीप की रक्षा का साधन है ही, किन्तु इसका विशेष तात्पर्य भी है। मिथिला की नारियों की लज्जा का आवरण ही उसके शील, एकाङ्गी प्रेम और उसकी मर्यादा का रक्षक होता है। इस लज्जा के आवरण का प्रतीक है पातिल पर के ढक्कन का आवरण।

इस 'पुरहर पातिल' को और भी अनेकों शुभ अवसर पर सामने रखने की प्रथा यहाँ प्रचलित है। इन्हीं सब कारणों से अनेक रंगों से चित्रित कर इन पर कलशयुक्त हाथी और पुरहर-पातिल को सामने उस जगह रखना मिथिला में अत्यावश्यक माना जाता है।

❖❖



(चि·सं·३८)

कोहवर घर के भीतर का हाथी



३९

कोहवर घर के भीतर का हाथी

(चित्र संख्या ३८)

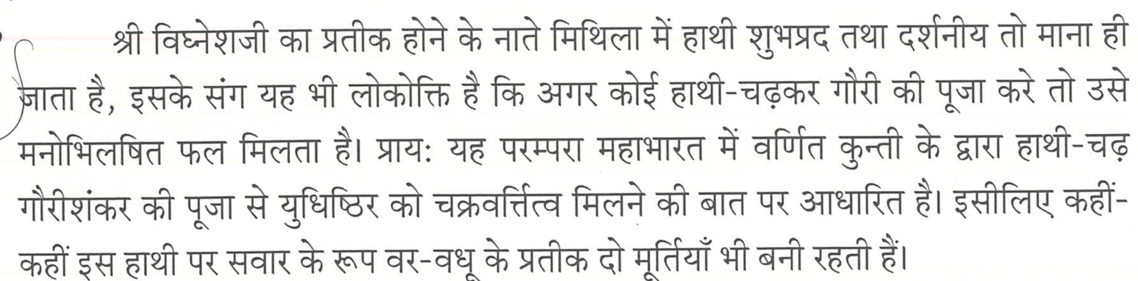
चित्र संख्या ३८ में चित्रित हाथी मिथिला में विवाह के पश्चात् सम्पादित होने वाली गौरी-पूजा के नजदीक रखे जाने वाले मिट्टी के हाथी का है जो अनेक रंगों से चित्रित कर कोहवर-घर में उसकी पूर्वी दीवाल के समीप रखा जाता है।

मिथिला में भगवती गौरी सुहाग की इष्ट देवी मानी जाती हैं। विदेहतनया मैथिली श्रीजानकी ने भी विवाह से पूर्व श्रीरामचन्द्र जैसे गुणवान् पति मिलने की कामना से गिरिजा-पूजा अर्थात् गौरी-पूजा की थी, जिसका वर्णन 'तुलसीकृत रामायण' के बालकाण्ड में धनुष-यज्ञ के पूर्व प्रकरण में आया है :-

''तेहि अवसर तँह जानकि आबा,

गिरिजा पूजन जननि पठाबा।''

इसलिए मैथिली को अपना आदर्श माननेवाली मिथिला में ही विवाह के पश्चात् चतुर्थी कर्म के दिन तक विधिपूर्वक गौरी-पूजा करने की प्रथा अब तक चली आ रही है। यह पूजा प्रात: तथा सन्ध्या समय वर के साथ वधू को बैठा कर बड़े समारोह में यहाँ की स्त्रियों के द्वारा सम्पादित कराई जाती है, जिसमें वधू को आगे और उसकी पीठ पर दाहिना हाथ रखे वर को पीछे बैठाया जाता है। यह पूजा कौतुकागार की पूर्वी दीवाल के समीप की जाती है। इस जगह मिट्टी का एक छोटा आकार का दूसरा हाथी भी रखा जाता है। जिसका भी इस चित्र में चित्रण किया गया है। इस हाथी पर मिट्टी के सरवे में गौरी की स्थापना रहती है जिस पर वधू मासस्नान के दिन तक शुभेच्छा से नित्य पूजा करती है। पूजा के समय वधू की पीठ पर वर के हाथ रखने का तात्पर्य यह रहता है कि वर हमेशा वधू को सहारा और सत्कार्यों में प्रोत्साहन देता रहेगा।

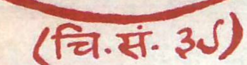


श्री विघ्नेशजी का प्रतीक होने के नाते मिथिला में हाथी शुभप्रद तथा दर्शनीय तो माना ही जाता है, इसके संग यह भी लोकोक्ति है कि अगर कोई हाथी-चढ़कर गौरी की पूजा करे तो उसे मनोभिलषित फल मिलता है। प्राय: यह परम्परा महाभारत में वर्णित कुन्ती के द्वारा हाथी-चढ़ गौरीशंकर की पूजा से युधिष्ठिर को चक्रवर्त्तित्व मिलने की बात पर आधारित है। इसीलिए कहीं-कहीं इस हाथी पर सवार के रूप वर-वधू के प्रतीक दो मूर्तियाँ भी बनी रहती हैं।

इस हाथी के आगे पुरहर पातिल भी रखने की प्रथा चली आ रही है, जिसमें पातिल के भीतर जलने वाले दीप से काजल बना वर की आँखों पर लगाया जाता है, जिसका अभिप्राय यह रहता है कि जिस तरह काजल आँखों की शोभा बढ़ाता है, यह वधू भी उसी तरह वर के संग रह शोभा बढ़ाए और जिस तरह काजल के सदृश कुरूप वस्तु भी आँखों का संग पा सुशोभित हो जाती है तथा दोनों का सम्मिलित रूप दर्शकों को मुग्ध करता है उसी तरह वधू भी वर के संग रह सुशोभित हो तथा यह युगल जोड़ी आपस में मिल अपने गुणों से जनसाधारण को मुग्ध करें। तन्त्र के मत से इस काजल में वशीकरण-शक्ति भी मानी जाती है। इन्हीं सब कारणों से यह हाथी और पुरहर पातिल गौरी-पूजा की जगह कोहबर घर में रखने की प्रथा चली आ रही है जो अनेक रंगों से चित्रित रहते हैं।

❖❖




(चि.सं. ३८)

भार पर की हँड़िया


(चि.सं. ४०)

सामा



४०

भार पर की हँड़िया

(चित्र संख्या ३९)

चित्र संख्या ३९ मिथिला में सांस्कृतिक पर्व अथवा त्यौहार के अवसर पर कार्य में लाए जाने वाले मिट्टी की हँड़िया का है, जो मिथिला की स्त्रियों के द्वारा अनेक रंगों से चित्रित कर इन अवसरों पर व्यवहार में लायी जाती है। विशेषत: अपने रिश्तेदारों के यहाँ साहाय्य रूप में भार पर सामग्रियाँ भेजते समय इसका उपयोग किया जाता है। इनमें उन खाद्य पदार्थों को भर कर भेजने की प्रथा चली आ रही है जो उसमें सुरक्षित रूप से भेजी जा सकती है। यह मिथिला में 'भारक तौला' के नाम से प्रसिद्ध है।

जब इन चित्रित हँड़ियों से युक्त भार को अपने कन्धों पर लिए पटई पर दोनों तरफ दोनों हाथ रखे बहुसंख्यक भरिए एक कतार में हो एक गाँव से दूसरे गाँव तक जाने वाली पगडण्डी पर अबाध गति से चलते रहते हैं तो ऐसा आकर्षक दृश्य मालूम पड़ता है मानो विहगावलियाँ पंक्तिबद्ध हो पंख पसार अपने घोसलों की तरफ उड़ी जाती हों, अथवा अनेकों तैराक आपस में होड़ लगाये नदी के दूसरे किनारे तक पहुँचने की चेष्टा में दोनों तरफ हाथ फैलाये अबाध गति से बढ़े चले जा रहे हों।



४१

सामा

(चित्र संख्या ४०)

चित्र संख्या ४० चङ्गेरे में सजे हुए 'सामा' के त्यौहार के समय बनायी जाने वाली मूर्तियों का है। मिथिला का यह सामा त्यौहार बड़ा ही रमणीक होता है। यह कार्तिक शुकल द्वितीया से प्रारम्भ और कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा की रात पर्यन्त चलता है। यह खासकर यहाँ के स्त्री-समाज का ही पर्व हे, जो 'स्कन्द पुराण' के इस निम्नाङ्कित श्लोक के आधार पर मनाया जाता है -

द्वारकायाञ्च कृष्णस्य पुत्री सामातिसुन्दरी।

साम्बस्य भगिनी ''सामा'' माता जाम्बवती शुभा।।

इति कृष्णेन संशप्ता सामाऽभूत् क्षितिपक्षिणी।

चक्रवाक इति ख्यातः प्रियया सहितो वने।।

उक्त पुराण में वर्णित सामा की कथा का संक्षिप्त वर्णन इस तरह है कि सामा नाम की द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की एक लड़की थी, जिसकी माता का नाम जाम्बवती था और भाई का नाम साम्ब तथा उसके पति का नाम चक्रवाक था। चूड़क नामक एक शूद्र ने उस लड़की पर वृन्दावन में ऋषियों के संग रमण करने का अनुचित आरोप श्रीकृष्ण के समक्ष उपस्थित किया, जिससे उन्होंने क्रुद्ध हो सामा को पक्षिणी बन जाने का शाप दे दिया और दिव्याङ्गना सामा पक्षिणी बन उड़ चली। उसके प्रेम में अनुरक्त उसका पति चक्रवाक स्वेच्छा से ही पक्षी का रूप धारण कर भूमण्डल में उसके साथ विचरण और रमण करने लगा। शाप के कारण उन ऋषियों को भी पक्षी का रूप धारण करना पड़ा। सामा का भाई साम्ब जो इस अवसर पर कहीं अन्यत्र रहने के कारण अनुपस्थित था, लौट कर आया और इस समाचार को सुन बहन के विछोह का अनुभव कर अत्यन्त दु:खी हुआ। परन्तु श्रीकृष्ण का शाप तो व्यर्थ होने वाला नहीं था; इसलिए उसने कठोर तपस्या कर अपने पिता श्रीकृष्ण को फिर से प्रसन्न किया और उनके वरदान के प्रभाव से इन पक्षियों ने फिर से अपने दिव्य शरीर को धारण कर अपने धाम को प्राप्त किया। इसी अवसर के निम्नलिखित आगे दिये जाने वाले वरदान के रूप वचन के अनुसार स्वजन के अल्पायु होने की आशंका तथा उनकी आयु-वृद्धि की कामना से मिथिला में स्त्रियों के द्वारा इस सामा की पूजा तथा अर्चना का प्रचार हुआ जो अब तक चली आ रही है।

वर्षे वर्षे तु या नारी न करोति महोत्सवम्।

पुत्रपौत्रविनिर्मुक्ता भर्ता नैव च जीवति।।

तथा

भर्त्तुर्वियोगं नाप्नोति सुभगा च भविष्यति।

पुत्रपौत्रयुता नारी भ्रातॄणां जीवनप्रदा।।

सामा त्यौहार यहाँ खासकर अपने भाई तथा स्वामी के दीर्घायु होने की कामना से मनाया जाता है। इस अवसर पर मिथिला की प्राय: प्रत्येक नारी अदम्य उत्साह के साथ स्त्री तथा पुरुष प्रभेद के पक्षियों की मिट्टी की मूर्तियाँ अपने हाथों से तैयार करती हैं जो 'सामा-चकेवा' के नाम से विख्यात है। यह सामा श्रीकृष्ण-पुत्री सामा तथा चकेवा उसके स्वामी चक्रवाक का ही द्योतक है। चक्रवाक का अपभ्रंश ही चकेवा बन गया है। इस अवसर पर निम्नलिखित वचन के आधार पर एक पंक्ति में बैठे सात पक्षियों की मूर्तियाँ भी बनाई जाती हैं जो 'सतभैया' कहलाते हैं। ये सप्तर्षि के बोधक हैं। इस समय तीन-तीन कर दो पंक्तियों में बैठी छ: पार्थिव आकृतियों की मूर्तियाँ भी बनाई जाती हैं जिन्हें सीरी सामा कहते हैं। वे षड्ऋतुओं के प्रतीक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त नये खढ़ के तिनकों से वृन्दावन तथा लम्बी-लम्बी सन की मूछों से युक्त चूड़क का प्रतीक उसकी प्रतिमा भी बनायी जाती है, जो 'वृन्दावन' और 'चुगला' कहलाते हैं। सब के अन्त में दो विपरीत दिशाओं की ओर मुखातिब दो पक्षियों की मूर्तियाँ एक ही जगह बैठी बनायी जाती हैं जो 'बाटो बहिनों' कहलाती हैं। यह सामा और उसके भाई का प्रतीक माना जाता है जिन्हें भाग्यचक्र ने विमुख कर दिया था। इसके अतिरिक्त 'सामा-चकेवा' की भोजन-सामग्री को रखने के लिए ऊपर के एक ढक्कन के संग मिट्टी की एक छोटी हण्डी के आकार का बर्तन भी बनाया जाता है, जिसे 'सामाक पौती' कहते हैं। इन सब मूर्तियों का चित्रण निम्नाङ्कित नामों के संग इस सामा के चित्र में किया गया है, जिन्हें स्त्रियाँ अपने हाथों से अनेक रंगों के द्वारा निम्नलिखित श्लोक के अनुसार चित्रित करती हैं और जो बड़े ही आकर्षक दृष्टिगोचर होते हैं-

चूडकस्यापि प्रतिमां तथा वृन्दावनस्य च।

सप्तर्षीणान्तथा कृत्वा नाना वर्णैर्विचित्रिताम्।।



इस अवसर पर यहाँ की स्त्रियाँ दश दिनों में कुल मूर्तियों को तैयार कर और उन्हें बाँस की कमचियों से निर्मित एक प्रकार के डलिए जिसे 'चङगेरा' कहते हैं उसमें सजाकर पक्षियों का दाना (भोजन) नया धान का शीस उनके भोजन के लिए डाल देती हैं। इसके बाद एकादशी से, जब चन्द्र की चाँदनी कुछ प्रकाशयुक्त हो जाती है, आगे दिए जाने वाले वचन के अनुसार अपने-अपने चङगेरा को माथे पर रख जोते हुए खेतों में हर रात अपनी सखियों के संग जा और चङगेरों को रख समयानुकूल लोकगीत तथा अनेक तरह के हास्य और क्रीड़ाओं द्वारा विनोदपूर्वक सामा की अर्चना करती हैं-

'क्षेत्रे क्षेत्रे तथा नार्य्यः कृतकौतुकमङ्गलाः।

तत् सर्वं वंशपात्रे तु कृत्वा धृत्वा तु मस्तके।।'

सामा त्यौहार के समय आपस में अपनी-अपनी रिश्तेदारिनों के घर सौगात के रूप में कुछ सामा-चकेवा की मूर्तियाँ, चुगला, वृन्दावन और चूड़ा तथा गुड़ चङगेरों में रख नौकरानियों के द्वारा भेजना यहाँ की स्त्रियाँ आवश्यक मानती आई हैं, जिसमें निम्न वर्गों की स्त्रियों के पोषण और स्वजनों के संग आपस में प्रीति बढ़ाने की भावना निहित है। इस त्यौहार की अन्तिम रात्रि पूर्णमासी को मिथिला में जब स्त्रियाँ अपने-अपने आँगन से अर्धरात्रि के समय चौमुख दीप से प्रकाशित और मिट्टी की मूर्ति तथा अन्य वस्तुओं से सुसज्जित चङगेरों को माथे पर धारण किए मधुर स्वर से लोकगीत गाते पंक्ति-बद्ध हो निकलती हैं और जोते हुए खेतों में पहुँच अपने-अपने चङगेरों को आगे रख मण्डलाकार बैठकर विनोदयुक्त हँसी की किलकारियों से आकाश को गुञ्जित करने लगती हैं तो उस समय ऐसा रमणीक दृश्य मालूम पड़ता है मानो चन्द्रमा अनेक रूप धारण कर पृथिवी पर उतर आया हो और मधुर कण्ठों से निनादित वह लोकगीत सुन आनन्द के मारे अपनी पूर्ण कलाओं से युक्त हो प्रसन्नता से हँस रहा हो जिसकी हँसी प्रकाशित चाँदनी के रूप में पृथिवी पर बिखर गई हो, अथवा परब्रह्म रूपी शून्य आकाश अपनी पृथिवी पर की माया में लिप्त उल्लसित हो नाचते और गाते इन स्त्रियों को देख अपने मुखचन्द्र के तारा रूपी चमकते दाँतों को बिखेर कर हँस रहा हो, जिससे चाँदनी रूपी प्रकाश फूट कर चाँदनी रात बन पृथिवी पर फैल गया हो तथा टूटे हुए ताराओं की तरह वे चौमुख दीप पृथिवी पर चमक रहे हों। इस समय सामा खेल के अवसर पर प्रत्येक स्त्री एक निश्चित मन्त्रोच्चारण के संग सीरी-सामा को अपने-अपने आँचल के छोरों पर रख आपस में एक दूसरे से बदलती हैं जिसका तात्पर्य अपने प्रियजनों की आयु को परस्पर आदान-प्रदान कर प्रत्येक पुरुष को दीर्घजीवी बनाने का रहता है। इस बदलौअल का दूसरा तात्पर्य यह भी रहता है कि प्रत्येक पुरुष आपस में एक दूसरे का भाई बना रहे। इस तरह इस कार्य



में एकता की भावना छिपायी गयी है। इसीलिए बिना भाई के बहन के संग यह बदलौअल करना स्त्रियाँ श्रेयस्कर नहीं मानती हैं।

काफी देर तक विनोदपूर्ण लोकगीत के संग हास्ययुक्त क्रीडायें करने के पश्चात् अन्त में ये ललनायें चुगला की मूर्ति की मूछों में तथा वृन्दावन के तिनकों में आग लगा कर एक निश्चित मन्त्रोच्चारण के संग उन्हें अच्छी तरह जलाती हैं और इसके बाद उन अधजली मूछों वाली मूर्तियों को उनके नीचे की लकड़ी के सहारे उन जोते हुए खेतों में खड़ा कर गाड़ देती हैं ताकि इनकी दुर्दशा दुनिया के लोग देख सकें और चुगली करने की आदत छोड़ दें। इसके बाद ये स्त्रियाँ अपने-अपने सामा-चकेवा की मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर उन खेतों में डाल अपने-अपने घर की ओर रवाना हो जाती हैं और रास्ते पर 'बाटो-बहिनों' की मूर्तियों को रखते हुए अपने निवास स्थान को पहुँच विश्राम लेती हैं। इन सब बातों में यह तात्पर्य रहता है कि इन सब मूर्तियों के रूप में श्रीकृष्ण-पुत्री सामा शापमुक्त हो तथा दिव्य शरीर धारण कर बाट जोहते हुए अपने भाई के पास फिर से अपने धाम को पहुँच गई। और चूडक जिसने चुगली खा सामा पर अपवाद लगाया था, वृन्दावन के संग जलाकर राख बना दिया गया, ताकि उस अपवाद का नामोनिशान मिट जाय और कभी इस बात की चर्चा न हो कि सामा असती थी।

मिथिला के इस सामा-खेल में कुछ आध्यात्मिक तात्पर्य भी छिपे हैं, वह यह कि जैसे ये स्त्रियाँ सामा खेलने के लिए इतने परिश्रम और लगन से तरह-तरह की सुन्दर मूर्तियों का अपने हाथों से निर्माण तथा चित्रण कर खेल के अन्त में उन्हें अपने ही हाथों से तोड़-फोड़ नष्ट कर मिट्टी में मिला देती हैं और दूसरे वर्ष फिर से निर्माण करती हैं, उसी तरह परमेश्वर अपने मनोरञ्जन के निमित्त अपने हाथों से सुन्दर-से-सुन्दर वस्तुओं का निर्माण कर पृथिवी पर सृष्टि की रचना करता है और अपनी ही इच्छानुसार अपने ही हाथों से उन्हें तोड़-फोड़ कर मटिया-मेट कर देता है। यह कार्य नित्यप्रति चलता रहता है। अर्थात् यह सृष्टि अनित्य है। इसीलिए इस अनित्य संसार में लोभाविष्ट हो किसी को भी अन्याय-पथ पर अग्रसर होने के लिए नहीं कहा गया है और हमेशा न्याय-पथ का अवलम्बन कर जन-कल्याण करने के लिए कहा गया है। इन सब कारणों से युक्त यह सामा का त्यौहार मिथिला में प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। इसी से ज्ञात होता है कि पौराणिक युग से ही मूर्तियों पर चित्रण करने की कला यहाँ की स्त्रियों के संग चली आ रही है, जो इस समय भी लोक-चित्रकला के रूप में प्रचलित है।





४२

सलहेस अथवा अन्य मूर्तियाँ

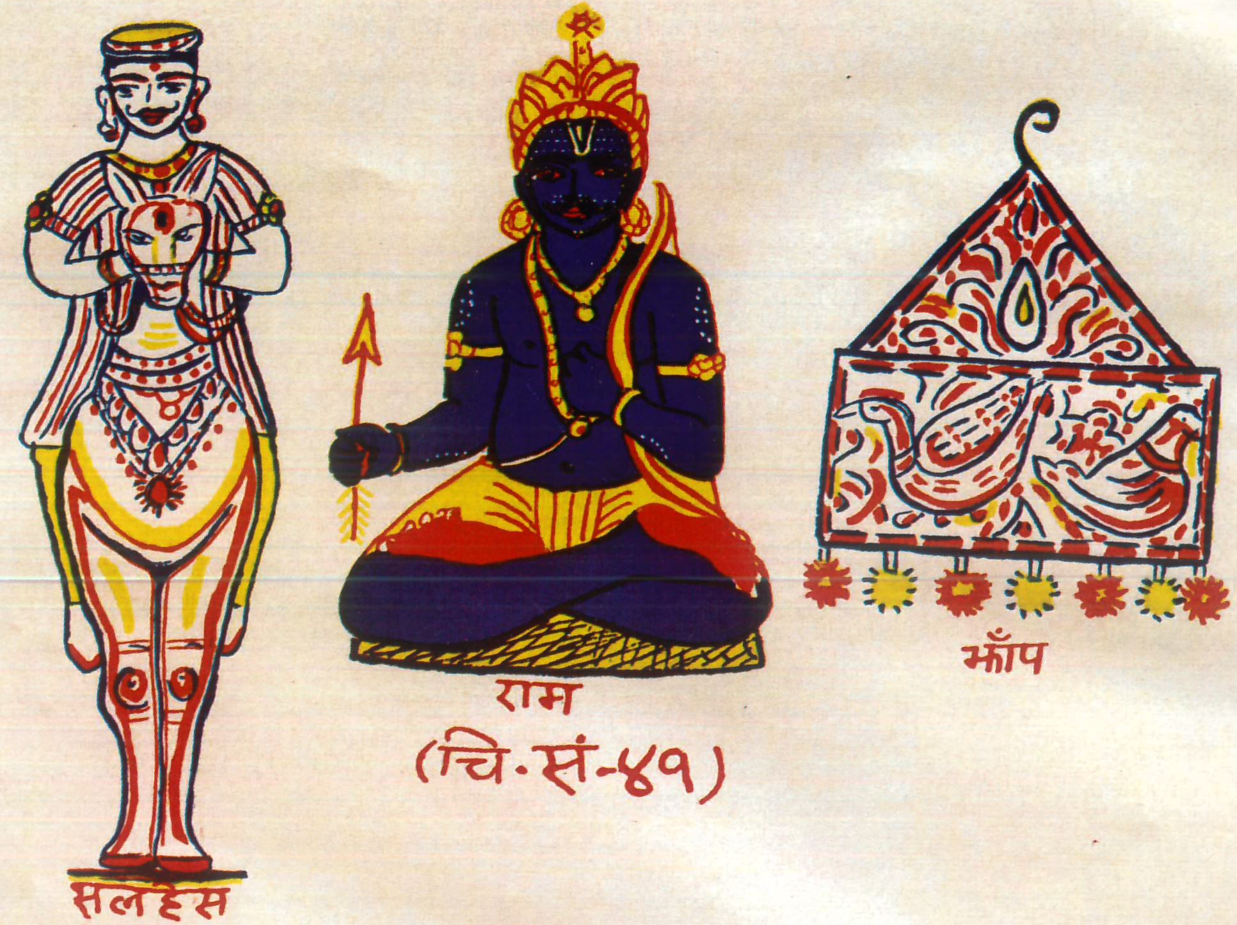
(चित्र संख्या ४१)

चित्र सं–४१ में बाएं तरफ वाला पहला चित्र 'सलहेस' की मूर्ति का है, जो मिथिला में निम्न वर्गों के 'ग्राम्य–देवता' के रूप माने जाते हैं। इनकी पूजा के अवसर पर इस वर्ग के लोग रात–रात भर जागकर इनकी अर्चना झाल मृदंग बजा अनेकों लोकगीत के संग किया करते हैं, जिसमें अपने मनोरथ की सिद्धिप्राप्ति की भावना रहती है। इनकी मूर्ति को यहाँ के कुम्भकार की स्त्रियों के द्वारा अनेक रंगों से चित्रित कर बनाने की प्रथा युगों से चली आ रही है। मिट्टी की यह मूर्ति एक घोड़सवार के रूप में बनाई जाती है जिसकी स्थापना गाँव के किसी निर्जन स्थान में किसी बड़े वट–वृक्ष अथवा पीपल–वृक्ष के नीचे रहती है। इनके एक खास पुजारी होते हैं जो 'भगता' कहलाते हैं। इस 'भगता' के मुँह से निकली बातों पर उस वर्ग के सभी लोग विश्वास करते हैं और उसकी वाणी को अपने देवता की वाणी ही समझते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत में प्रचलित अनेक शास्त्रीय पूजा के रूप पर्वों, यथा रामनवमी, जानकी–नवमी, शिवरात्रि, कृष्णाष्टमी आदि के अवसर पर मिथिला में बनाई जाने वाली उन देवताओं की मिट्टी की मूर्तियों पर यहाँ के कुम्भकारों की स्त्रियों के द्वारा अनेक रंगों से चित्रण करने की प्रथा चली आ रही है जो बिना शिक्षा के परम्परागत ही है। उन्हीं मूर्तियों में से 'रामनवमी' पर्व के अवसर पर बनाए जाने वाले 'राम' की मूर्ति का चित्रण इस जगह बीच में किया गया है, जो नीलकान्ति वाले कपाल पर तिलक धारण किए किरीट–मुकुट–कुण्डल आदि आभूषणों से सुशोभित पीताम्बर पहने हाथों में धनुष बाण लिए पद्मासन लगाए बैठे हैं। इसी तरह और भी अनेक मूर्तियों इस अवसर पर बनाई जाती हैं जो साधारणत: स्त्रियों के द्वारा ही चित्रित रहती हैं।

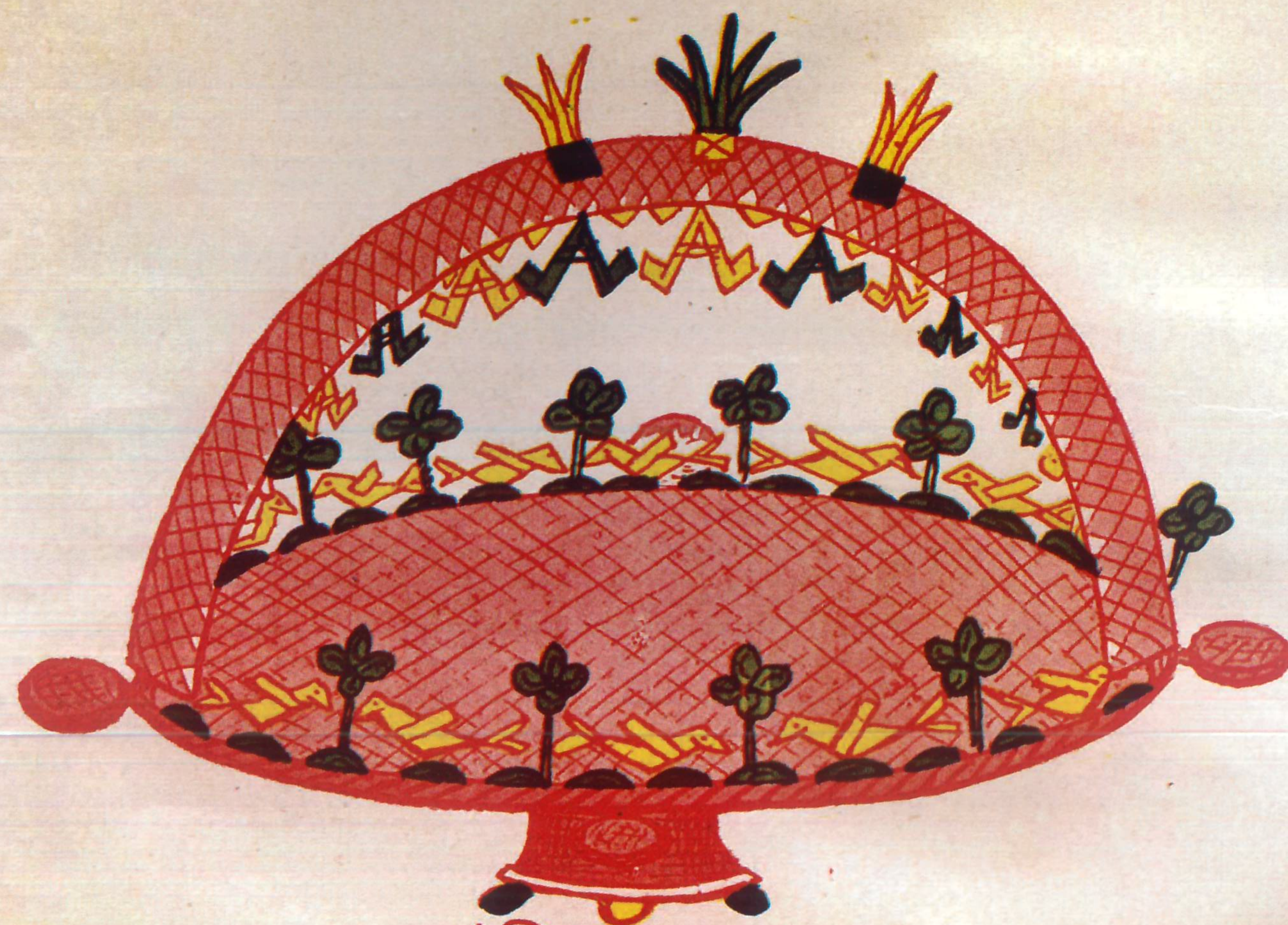
'राम' के बाईं तरफ दिया गया चित्र 'झाँप' का है जो घर के रूप तम्बू की तरह कोढ़िला का पटवा तथा माली के द्वारा बनाया गया रहता है। 'कोढ़िला' कम पानी में उगने वाला एक तरह का पौधा है जिसके मटमैले लाल छिलकों के भीतर रूई की तरह सफेद और मुलायम पदार्थ भरा रहता है। इसे छील और कतर कर यहाँ के लोग कागज की तरह चिपटा अथवा गेंद की तरह गोल फूल की नाईं अनेकों तरह की सामग्रियाँ तैयार करते हैं। जो मिथिला में अनेकों सांस्कृतिक तथा धार्मिक अवसरों पर मण्डप पर बनता है। साधारणत: शिवालय में शिव–लिंग के ऊपर घर बनाकर देवता पर अर्पण करने की भावना से चढ़ाने अथवा सलहेस सदृश देवस्थानों में मूर्ति के ऊपर टाँगने के काम में आता है।





सलहेस अथवा अन्य मूर्तियाँ

तथा



चुमाओन का डाला



४३

चुमाओन का डाला

(चित्र संख्या ४२)

चित्र संख्या ४२ 'चुमाओन', जो मिथिला में किसी भी शुभ अवसर पर यहाँ की स्त्रियों के द्वारा उस अवसर के सर्वप्रधान व्यक्ति को आशीष देने के निमित्त सम्पादित की जाने वाली एक विधि है, उसी के डाला का है जिसे अनेक रंगों से चित्रित बाँस की कमचियों से खासकर हरिजनों (अन्त्यजों) के द्वारा ही बनाए जाने की प्रथा चली आ रही है। इसे 'चुमाओनक डाला' कहते हैं।

मिथिला की संस्कृति में समाज के प्रत्येक वर्ग को समुचित स्थान तथा आदर ही दिया गया है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह डाला है जो प्रत्येक शुभ अवसर पर उस अवसर के सर्वप्रधान व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के यथा उपनयन-संस्कार के बाद यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्रह्मचारी के रूप 'बरुआ' अथवा विवाह से पूर्व 'वर' या विवाह के पश्चात् 'वर-वधू' दोनों के माथे पर वयोवृद्धाओं के द्वारा तीन बार घुमाया जाता है। यह विधि यहाँ की संस्कृति में अत्यावश्यक समझी जाती है। यहाँ के प्रत्येक शुभ अवसर में बाजे वालों को भी स्थान दिया जाता है, जो खासकर हरिजन ही हुआ करते हैं। यहाँ का खास बाजा ढोल, पिपही, सिंगा आदि बजाने का कार्य परम्परा से उन्हीं के जिम्मे चला आ रहा है। इसके उपरान्त और भी व्यावहारिक विधियों में धोबी, हजाम, सोनार आदि के कार्य निर्धारित हैं और उस अवसर पर वे ही अपने-अपने महत्व रखते हैं, बिना उनकी सहायता से वह कार्य पूर्णतया सम्पादित नहीं किया माना जाता है। किसी समय वर्ण-व्यवस्था कर समाज का निर्माण इसी कारण किया गया था कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित रहे। इसीलिए अपनी-अपनी बुद्धि और क्षमता के अनुसार प्रत्येक वर्ग का कार्य निर्धारित कर उस कार्य का अधिकारी केवल उसी वर्ग को बनाया गया था जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग को दूसरे पर अवलम्बित रहना पड़े और पारस्परिक सहयोग के कारण एकता की भावना अमर रहे तथा समाज के प्रत्येक वर्ग का भरणपोषण उसी समाज से चलता रहे। इसीलिए किसी भी सांस्कृतिक अथवा सामाजिक कार्य के अवसर पर प्रत्येक वर्ग के कार्यों का उसके भीतर समावेश रखा गया जिससे कि उसकी आय से उन व्यक्तियों का पालन हो और प्रत्येक व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से कार्य लेकर



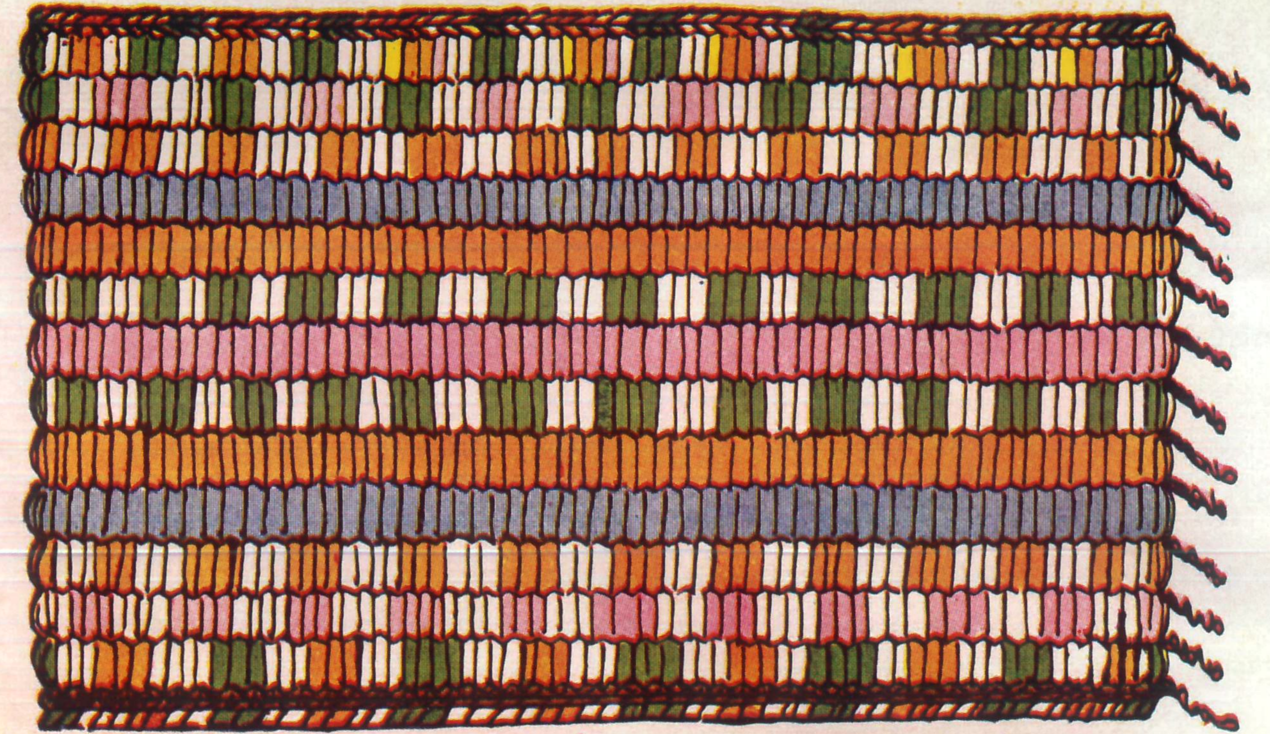
उसका आभारी बना रहे जिससे परस्पर प्रेम अक्षुण्ण रहे और कोई किसी से घृणा न कर सके। इस तरह इस सुव्यवस्था के द्वारा सबको एक डोर में बाँध माला के रूप एकाकार कर एक सुदृढ़ समाज बनाया गया था, क्योंकि दुनिया का कोई भी कार्य अव्यवस्थित रूप में सुचारु नहीं चल सकता।

मिथिला के हरिजनों के बनाए इस चुमाओन के डाले में भी आध्यात्मिक भाव छिपा है। बाँस का बना यह डाला वृत्ताकार पृथिवी के रूप बनाया गया है, जिसके चारों तरफ बने बाँस की कमचियों के १० फूल दशों दिशाओं के दश दिग्पालों के बोधक हैं तथा चारों तरफ की चार छोटी-छोटी दौरियाँ चार वर्णाश्रमों की द्योतक मानी जाती हैं। इस डाले में सबसे ऊपर कमचियों के ३ लम्बे फूल बनाए गए हैं जो त्रिमूर्ति के द्योतक हैं जिनका स्थान पृथिवी पर सर्वोपरि माना जाता है। इन फूलों के आधारस्वरूप नीचे अर्द्धवृत्ताकार कमचियों की पालकी से यह पृथ्वी रूपी डाला घेरा गया है जैसे त्रिमूर्ति की आधारशक्ति से पृथिवी व्याप्त बनायी गयी हो, जैसा कि शास्त्रज्ञ मानते हैं। इस शक्ति रूपी अर्द्धवृत्ताकार के नीचे आपस में दो-दो कमचियों की पताकाओं के रूप, जुड़े पालकी से लटकते अनेक चित्र दिखाये गये हैं जो त्रिशक्ति की मायाओं के रूप में दिए जाते हैं, जिनकी विजयपताका नाना रूप में हमेशा पृथिवी पर फहराती रहती है। इसके बाद डाले के चारों तरफ आपस में मिलने का भाव दर्शाते आमने-सामने चोंच मिलाते कई एक कमचियों से बने पक्षियों के जोड़े के चित्र दिखाए गए हैं जो प्रकृति और पुरुष के रूप प्रेमिका तथा प्रेमी की तरह इस पृथिवी पर विचरते माने जाते हैं। ये वधू और वर के प्रतीक हैं। इस डाले की पेंदी पृथिवी के भार धारण करने वाले कच्छप के रूप में दी गयी है।

इन्हीं सब कारणों से युक्त रहने के निमित्त मिथिला में इस डाले को माथे पर चढ़ाने की प्रथा चली आ रही है जो अब तक प्रचलित है।

चुमाओन करते समय इस डाला पर धान बिखेरकर बीच में दही से पूर्ण कड़ाही रख उसके चारों तरफ केले के अयुग्म हत्थे और छिलके से युक्त एक नारियल तथा पान की एक ढोली भी रखी जाती है और डाले के चारों तरफ वाली दौरियों में दूर्बादल सहित अक्षत, पिठार, सीरी सामा और धूमन दिया जाता है ताकि पिठार से अरिपन चित्र लिखकर उस व्यक्ति को उस पर बैठा दूर्बादल सहित अक्षत से उसे आशीष दिया जाय। चुमाओन-विधि के पश्चात् डाले पर के धान का चावल कूट दूध के संग खीर बना कुलदेवता को चढ़ाया जाता है तथा धूमन के धूप से उस स्थान को सुवासित किया जाता है। इस डाले पर की अन्य वस्तुओं को अपने कुटुम्ब की महिलाओं में वितरित कर दिया जाता है; जिसमें पारस्परिक सहयोग के संग प्रत्येक को फलभागी बनाने की





(चि·सं·४३)

सबरंग पटिया



४४

सबरंग पटिया

(चित्र संख्या ४३)

चित्र संख्या ४३ मिथिला में मुण्डन, विवाह, उपनयन आदि सांस्कृतिक अवसरों पर व्यवहार में लायी जाने वाली एक तरह की चटाई का है जो 'सबरंग पटिया' के नाम से यहाँ प्रसिद्ध है। यह पटिया, मोथी जो पानी में उपजने वाला एक विशिष्ट प्रकार का खढ़ है, उसी से बनाया जाता है और मिथिला में प्राय: सभी के यहाँ बैठने के लिए साधारणतया व्यवहार में लाया जाता है। खासकर ग्रीष्म ऋतु में यह बहुत ही सुखकर प्रतीत होता है, क्योंकि यह बड़ा ही शीतल रहता है।

इसी पटिया को विशिष्ट अवसरों में व्यवहृत करने के लिए अनेक रंगों से चित्रित कर बनाने की परिपाटी चली आ रही है, जिसका व्यवहार उस अवसर पर अत्यावश्यक माना जाता है तथा जिसका उल्लेख कई एक अवसरों पर पूर्व ही किया जा चुका है।

पटिया का निर्माण यहाँ के अल्प बुद्धि वाले निम्नवर्गों के द्वारा ही होता आया है और उन्हीं के द्वारा यह चित्रित भी किया जाता है। ये श्रमजीवी इस कार्य को परम्परा से करते आए हैं और इसी के द्वारा अपना निर्वाह भी करते आये हैं।





४५

पंखा

(चित्र संख्या ४४)

चित्र संख्या ४४ ताल के पत्ते से बने पंखे का है, जिसे अनेक रंगों से चित्रित कर यहाँ के निम्नवर्गों के द्वारा बनाए जाने की परिपाटी चली आ रही है। यह विवाह, द्विरागमन (गौना) आदि अवसरों पर व्यवहार में लाया जाता है। यह पंखा ग्रीष्म-काल में यहाँ के लोगों का बहुत ही प्रिय-पात्र बना रहता है, क्योंकि इस ताल के पत्ते से निकली ठण्डी हवा का आनन्द प्राप्त करने के लिए मनुष्य लालायित रहता है। इससे निकली हवा में विद्युत्शक्ति द्वारा निकाली गयी हवा की तरह उष्णता नहीं रहती है। इन पंखों को इनकी सुन्दरता तथा गुणों पर मुग्ध हो अनेक विदेशी भ्रमणकारी भी मिथिला से सौगात के रूप अपने साथ अपने देश ले जाने लगे हैं। यह छोटे-बड़े सभी आकार का बनाया जाता है, जिसमें एक ही बड़े आकार के पंखे को झलकर पचासों की संख्या में बैठे मनुष्यों को शीतल वयु के द्वारा तृप्त किया जा सकता है।





(चि॰ सं॰ ४४)

पंखा







(चि॰ सं॰ ४५)

सीकी की सामग्रियाँ



४६

सीकी की सामग्रियाँ

(चित्र संख्या ४५)

चित्र संख्या ४५ में चित्रित आकारों की सामग्रियाँ मिथिला में खास कर स्त्रियों के द्वारा ही एक प्रकार के तिनकों से जिसे 'सिक्की' कहते हैं, बनाई जाती हैं। ये अनेक रंगों में सीकियों को रंग कर बड़े परिश्रम से चित्रित कर तैयार की जाती हैं, जो बड़ी ही आकर्षक प्रतीत होती हैं। इसमें नाना प्रकार के डब्बे, चंगेरे, डलिए आदि के रूप बनाए जाते हैं। ये काफी मजबूत और व्यावहारिक सूखी वस्तुओं को रखने के लिए उपयोगी होते हैं। मिथिला में विवाहादि अवसरों पर इनमें वस्तुओं को भर कर भार में भेजने की प्रथा प्रचुर रूप से प्रचलित है। इन चित्रों के 'क' अंकित चित्र डलिए की पेंदी के रूप बना है जो इस जमाने में बैठकखाना के टेबुल अथवा दीवालों को सजाने के काम में भी लाए जाने लगे हैं। इसमें का 'ख' अंकित चित्र पनबट्टे के रूप बनाया गया है जिसमें सिन्दूर, टिकुली, बिन्दी आदि सामग्रियाँ भर कर कन्या को सौगात के रूप दी जाती हैं। यह 'सिक्कीक पनबट्टी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाद इसमें का 'ग' अंकित चित्र भी डब्बा के रूप ही बनाया गया हे, जिसमें ऐना, कंघी, नील, पियौरी (पीत चन्दन), खली आदि शृंगार की सामग्रियाँ भर कर विवाह के अवसर पर लड़कियों को दी जाती हैं। इसे 'पसाहनिक पौती' कहते हैं। मिथिला की सीकी से बनी इन सामग्रियों की ख्याति विदेशों में भी हो चुकी है। वहाँ के लोग भी इनमें निहित कला पर मुग्ध हो यथोचित व्यवहार में लाने लगे हैं। इस जगह के इन चित्रित आकारों के अतिरिक्त भी विभिन्न रूप की सामग्रियाँ बनायी जाती हैं जो इस युग में 'ग्रामोद्योग' संस्थाओं में देखने को मिलती हैं।

इस पुस्तक में चित्रित किये गये चित्रों के अतिरिक्त और भी अनेकों तरह के चित्र भूमि अथवा दीवाल या अन्य पदार्थों पर मिथिला में बनाये जाते हैं।

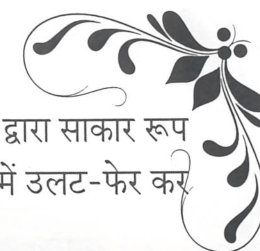




राजनीतिक दृष्टिकोण से यह भी सम्भव है कि स्त्रियों की लोककला के रूप इन चित्रों के प्रचार में राजनीति के मर्मज्ञ और काल के द्रष्टा महाराज जनक का यह गूढ़ तात्पर्य भी रहा हो कि श्री जानकी मिथिला के आदर्श रूप में प्राचीन संस्कृति के रूप मैथिल संस्कृति के संग सदा अमर रहें, जिससे प्राचीन भारतीय संस्कृति का कभी विनाश न हो सके। क्योंकि राजा का कर्तव्य अपने देश की संस्कृति उज्ज्वल रखना तथा अमर बनाना कहा गया है। इसीलिए महाराज जनक के दृष्टि-पथ में यह बात आई होगी कि कालान्तर में युग परिवर्तन के बाद विदेशी आक्रमणकारियों तथा विजेताओं के द्वारा किसी देश की संस्कृति का रूप उसके प्रमाणों को समूल नष्ट कर बदल दिया जा सकता है और उसकी जगह अपना धर्म तथा संस्कृति स्थापित करने की चेष्टा की जा सकती है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण भारत के अतीत इतिहास के पन्ने उलट उस पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि यवन साम्राज्य के समय किस तरह यहाँ की प्राचीन संस्कृति को समूल नष्ट करने की चेष्टा उसके लिपिबद्ध प्राचीन ग्रन्थों तथा मन्दिर और मूर्ति आदि प्रत्यक्ष प्रमाणों को मटियामेट कर की गई तथा अपने धर्म की सभ्यता स्थापित करने की चेष्टा की गयी।

अथवा श्री जनक महाराज का यह भी दृष्टिकोण रहा हो, कि हिमाचल के सदृश पहाड़ों के नजदीक रहने के कारण, भूकम्प आदि प्रकृति के प्रकोपों द्वारा इस देश की अन्य सभी साकार चीजें नष्ट हो सकती हैं और उसके संग यहाँ के साकार सांस्कृतिक प्रमाण भी मिट सकते हैं जिससे यहाँ की प्राचीन संस्कृति की रूपरेखा बदल सकती है। इन्हीं सब बातों के कारण दूरदर्शी महाराज जनक ने मिथिला के शासक होने के नाते 'मैथिल लोक-चित्रकला' के भीतर पुराण और शास्त्रों के गूढ़ तत्वों को अदृश्य रूप में सुरक्षित रख स्त्रिों के द्वारा सांस्कृतिक चित्रों के रूप में प्रचारित करवाया, जिससे किसी विदेशी की दृष्टि अथवा प्राकृतिक प्रकोप का प्रभाव इस पर न पड़ सके और प्राचीन संस्कृति सदा अक्षुण्ण रहे। क्योंकि कोई भी आक्रमणकारी किसी धर्म पर आधारित संस्कृति के साकार प्रमाणों को ही मिटा सकता है न कि किसी नारी के हृदय में निवास करती निराकार भावना को नष्ट कर सकता है।

इसीलिए ये पौराणिक तथा शास्त्रीय गूढ़ बातें चित्रकला, जिसके यथार्थ भावों को समझना उसके विशेषज्ञों को छोड़ साधारण व्यक्तियों के लिए अत्यन्त कठिन है, की रेखा तथा बिन्दुओं में भावान्वित कर सुरक्षित रखी गयी। क्योंकि यह चित्रकला ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हजारों वर्ष की बीती बातों का भी प्रतिनिधित्व कराया जा सकता है। किसी राष्ट्र के उत्थान और पतन में इसी चित्रकला और साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है; क्योंकि थोड़ी-सी जगहों के भीतर ही चित्रकला अपनी रेखा और बिन्दु में छिपाई युग-युगान्तर की बीती बातों का भी साहित्यिकों की लेखनी द्वारा जनता को ज्ञान करा सकती है और जनसाधारण के दृष्टि-पथ से लोप



हो गई वस्तु तथा विषयों को भी फिर से अपने पुराने कुशल चित्रकारों की तूलिका द्वारा साकार रूप में परिणत करवा, प्रत्यक्ष दृश्य दिखा जनता में क्रान्ति उत्पन्न कर देश के शासन में उलट-फेर कर सकती है।

इन चित्रों का प्रचार भी राजनीतिक दृष्टिकोण से ही केवल भूमि अथवा दीवालों पर ही सीमित रखा गया, जिससे इनका प्रचार जनसाधारण के प्रत्येक घरों में सुलभता से हो सके; परन्तु कोई बुद्धि-कुशल आक्रमणकारी भी इनमें निहित भावपूर्ण तथ्यों का अध्ययन करने की चेष्टा न कर सके और इन्हें भूमि या भित्ति को सजाने का साधन ही समझता रहे।

इन अरिपन चित्रों का प्रचार अजमेर, आगरा, अलीगढ़ आदि जगहों में व्रजस्थ मैथिलों के घर में भी अब तक प्रचलित है जो वहाँ 'स्वस्तिक' अथवा 'अईफण' के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की स्त्रियाँ भी चावल के चूर्ण अथवा पिठार से ही इन भूमि-चित्रों का निर्माण किसी पूजा अथवा सांस्कृतिक त्यौहार के अवसर पर किया करती हैं।

भारत के दूसरे प्रान्तों में भी अरिपन चित्र लिखने की प्रथा अब तक प्रचलित है जो भिन्न-भिन्न रूप और भिन्न-भिन्न नामों से देखने को मिलती है। यथा बंगाल में इसे 'अल्पना' के नाम से पुकारते हैं और वहाँ की स्त्रियों के द्वारा गेहूँ के आँटे अथवा चावल के आँटे से भी इन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में किसी पूजा या विवाहादि खास-खास सांस्कृतिक अवसरों पर अथवा किसी महान व्यक्ति के स्वागतार्थ उनके मार्ग पर चित्रित करने की प्रथा अब भी पाई जाती है। यद्यपि इन चित्रों की रेखा और बिन्दुओं में मिथिला के चित्रों से कुछ अन्तर आ गया है, परन्तु उनकी रूप-रेखा कुछ अंशों में अब भी मिलती-जुलती है। जैसे कमल के फूल तथा उनके अन्य अवयवों का इन चित्रों में विशेष रूप से प्रचार बंगीय भूमि-चित्र में अब भी मौजूद है जो मिथिला का प्रतीक चिह्न माना जाता है।

महाराष्ट्र में यह अरिपन चित्र 'रंगोड़' के नाम से प्रसिद्ध है और एक प्रकार के पत्थर के महीन चूर्ण में कई तरह के रंगों को मिलाकर, जिसे 'रँगोड़ी' कहते हैं, स्त्रियों के द्वारा खास अवसरों पर चित्रित किए जाते हैं। वहाँ के रंग-गिरंगे ये चित्र देखने में बड़े ही सुन्दर और आकर्षक होते हैं। इनका प्रचार खास कर विवाहादि अवसरों में मण्डप के चारों तरफ या वर-वधू के गठ-बन्धन के पश्चात् अग्नि-कुण्ड के चारों तरफ फेरे लगाने के लिए उनके आगमन के मार्ग पर अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति की जयन्ती मनाने के अवसर पर उस स्थान को सुसज्जित करने के निमित्त बनाने की परिपाटी इस समय भी प्रचलित है। वहाँ की स्त्रियाँ अपने घरों के द्वार पर दर्शन के निमित्त प्रायः नित्य ही प्रत्यूष के समय उठकर रंगोड़ बनाया करती हैं। इसके अतिरिक्त गुजरात, मेरठ, राजस्थान, नेपाल आदि प्रान्तों में विभिन्न रूप-रेखाओं के संग इस चित्र का प्रचार अब तक मौजूद



है। अपने को अग्निहोत्री कहने वाले पारस के निवासी पारसियों के घर में दीपस्थान अथवा अग्निस्थान में भी इस श्वेत भूमिचित्र को लिखने की प्रथा चली आ रही है।

सारांश यह कि समस्त भारत में यह चित्र इस समय भी किसी-न-किसी रूप में वहाँ की संस्कृति के संग विद्यमान है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में एक ही धर्म तथा एक ही संस्कृति समस्त भारत में विद्यमान थी, जो देश, काल, पात्र के अनुकूल आक्रमणकारियों के प्रभाव में पड़ अनेक रूपों में परिणत हो गयी है। फिर भी निकटस्थ प्रान्तों की संस्कृति में बहुत कुछ समानता मौजूद है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण बंग देश की भाषा तथा वहाँ के प्राचीन घरों की रहन-सहन, रीति-रिवाज और चित्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ के लोग भी विशेषत: शक्ति के ही उपासक हैं, जैसे कि मिथिला के लोग हैं।

मिथिला में इस समय भी शास्त्रानुकूल उस समय की प्राचीन संस्कृति ही विद्यमान है, जो कुछ वर्षों के भीतर ही आज के समय के प्रभाव में पड़ अब कहीं-कहीं धीरे-धीरे बदलने लगी है। परन्तु यहाँ के अधिकांश घरों में अब तक अक्षुण्ण है।

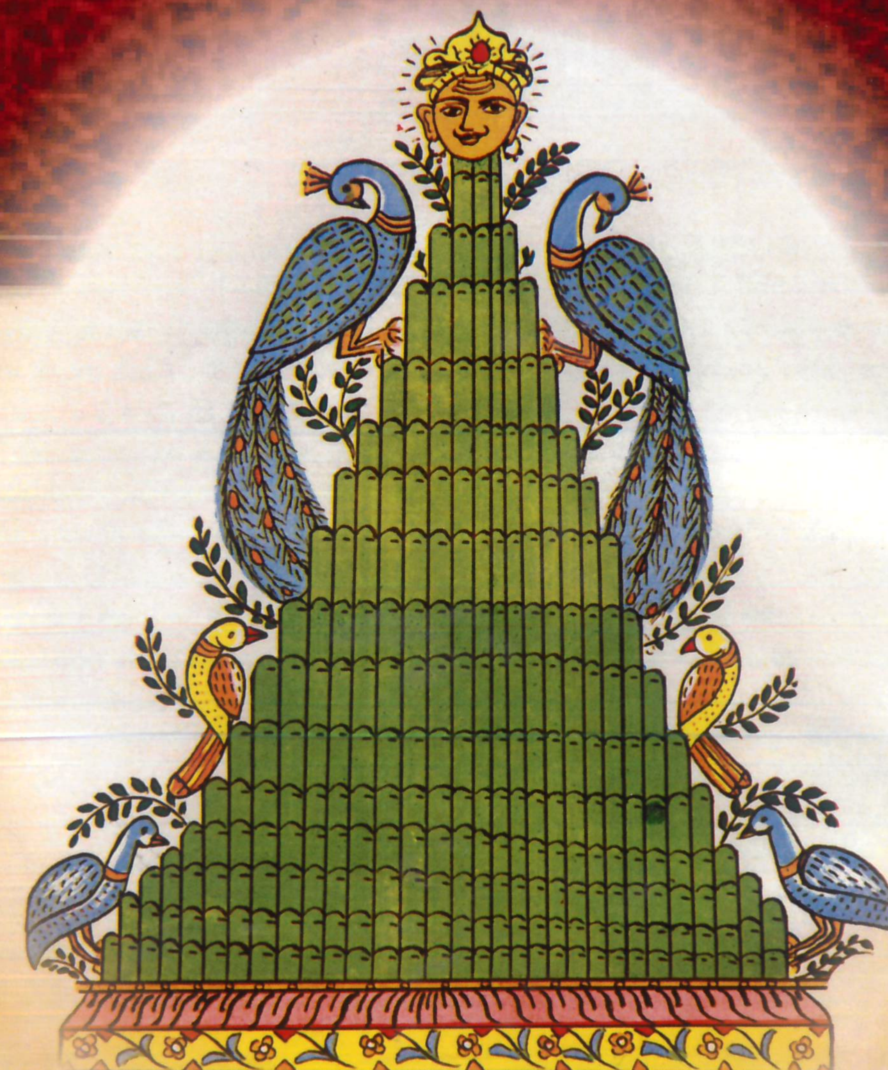
इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि मिथिला की प्राचीन संस्कृति के संग आने वाले ये रहस्यपूर्ण अरिपन तथा भित्ति-चित्र अथवा अन्य प्रकार की लोक-चित्रकला के रूप आते हुए चित्र प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। जिनमें 'स्वस्तिक अरिपन' के अतिरिक्त अधिकांश चित्र महाराज जनक के ही समय से जो रामायणयुग से पूर्व हुए थे, चले आ रहे हैं तथा उसके अतिरिक्त इस पुस्तक में चित्रित अन्य चित्र समय-समय पर मिथिला की विदुषियों के द्वारा, भारत के महापुरुषों से सम्बद्ध तथ्ययुक्त बातों का यथास्थान चित्रण कर समयानुकूल प्रचार में लाये गये हैं, जो इस समय भी 'मैथिल-शैली' के चित्रों के रूप, जिनमें रहस्यपूर्ण तथ्यों की ही प्रधानता है, मिथिला में प्रचलित हैं, जैसे भगवान कृष्ण की 'गोपी-चीरहरण-लीला' का चित्र अथवा 'सामा' की मूत्तियों पर चित्रण आदि।

इन सब बातों से सिद्ध है कि मिथिला में प्रचलित 'मैथिल-शैली के चित्र' अति प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं जिनमें सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक दृष्टिकोण भी छिपे हैं।

इन चित्रों का यथा संकलन और चित्रण कर प्रथम बार मैंने जन-साधारण के दृष्टि-पथ में लाने की चेष्टा की है। मुझे आशा और विश्वास है कि भारत की जनता फिर से इसे अपनाकर प्राचीन गौरव का अनुभव करेगी।

इति शुभम्


मिथिला की सांस्कृतिक
लोक चित्रकला
लक्ष्मीनाथ झा



Year : 2021

sjrg
services & suppliers
house No. 5B, Lane no. 5A,
Vivekanandpuram, Aditya Nagar,
Karundi, Varanasi- 221005
+91-9415996512
Email : sjrgsevices@gmail.com

₹ 1500/-

978-81-951235-4-4

